ॐ ह्रीँ

'कौल-कल्पतरु'

चण्डी

आश्विन-कार्तिक-मार्गशीर्ष, २०४७ वि० : : अक्टूबर-नवम्बर-दिसम्बर, ९०

वर्ष ४९ : : अङ्क ७-८-९

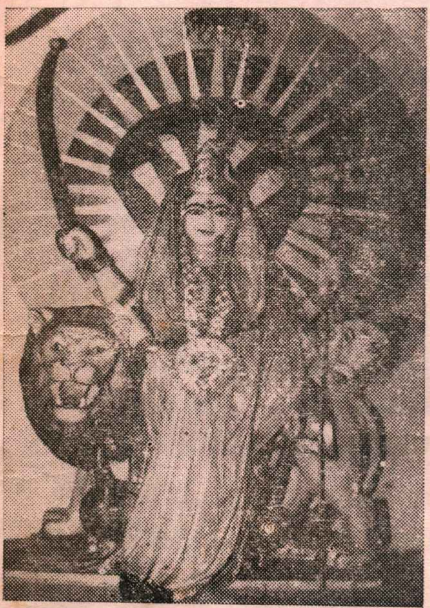

सीहोर (म० प्र०)
के
शिवाराध्या श्रीपीताम्बरा-धाम
में
स्थापित
भगवती-विग्रह

'शास्त्र-गुरु' परम पूज्य स्वामी जी महाराज की पुण्य स्मृति में :

विशिष्ट लेख-माला—दीक्षा-प्रकाश

('चण्डी' वर्ष ४९, अङ्क ४ के आगे का अंश—पृष्ठ ४९ से ८८)

शाक्त-धर्म क्या है ?

('चण्डी' वर्ष ४८, अङ्क ७-८ के आगे का अंश—पृष्ठ ४१-७२)

वार्षिक मूल्य ५०-००रु०

चण्डी कार्यालय, अलोपीबाग मार्ग, इलाहाबाद-२११००६

'चण्डी' पत्रिका के सदस्यों के लिए विशेष रियायती मूल्य पर महत्त्वपूर्ण तन्त्र-ग्रन्थ

१ महाकाल-संहिता (मूल मात्र : संस्कृत में)

	मूल्य		रियायती मूल्य
काम-कला-काली-खण्ड	९६)	काम-कला-काली-खण्ड	८०)
गुह्य-काली-खण्ड—१	७०)	गुह्य-काली-खण्ड—१	६०)
गुह्य-काली-खण्ड—२	६०)	गुह्य-काली-खण्ड—२	५०)
गुह्य-काली-खण्ड—३	४८)	गुह्य-काली-खण्ड—३	४०)

	मूल्य	रियायती मूल्य
२ हिन्दी मन्त्र-महार्णव : देवी खण्ड	२००)	१६०)
" : देवता खण्ड	२००)	१६०)
३ सप्तशती-सर्वस्व, मूल-मात्र	६०)	५०)
४ हिन्दी मन्त्र-महोदधि	२००)	१६०)
५ श्री श्रीविद्यार्णव तन्त्र, तीन भाग मूल	४५०)	३६०)
६ बृहत् तन्त्रसार, मूल-मात्र	१००)	८०)
७ नारद पञ्चरात्र, (हिन्दी अर्थ सहित)	१००)	८०)
८ सांख्यायन तन्त्र (हिन्दी अर्थ सहित)	२५)	२०)
९ प्राण-तोषिणी तन्त्र, दो भाग, मूल-मात्र	७५)	५०)
१० प्रपञ्चसार तन्त्र, मूल-मात्र	९५)	८५)
११ तन्त्रराज तन्त्र, मूल-मात्र	१००)	९०)
१२ शारदा तिलक तन्त्र, मूल-मात्र	१२०)	११०)
१३ दुर्गा सप्तशती, संस्कृत की सप्त टीकाएँ	८०)	७०)
१४ शाक्त-प्रमोद (संस्कृत)	६०)	५५)

१५ श्रीमद्देवी-भागवत (हिन्दी पद्यानुवाद)

'श्रीमद्-देवी-भागवत' १८ पुराणों में अपना विशिष्ट महत्त्व रखता है। 'महा-शक्ति' की उपासना और महा-शक्ति के प्रादुर्भाव से सम्बन्धित आख्यानों का जितना विशद वर्णन इसमें मिलता है, उतना अन्यत्र कहीं नहीं मिलता।

'चण्डी' के पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि जाग्रत 'महा-शक्ति-पीठ विन्ध्याचल' के प्रख्यात तन्त्र-साधक स्वामी अक्षोभ्यानन्द सरस्वती के शिष्य और सुपुत्र श्री यमुनाप्रसाद जी ब्रह्मचारी ने अनेक वर्षों की साधना-स्वरूप शाक्तों के इस सर्वस्व 'श्रीमद्-देवी-भागवत' महा-पुराण का हिन्दी-पद्यानुवाद पहले पहल प्रस्तुत किया है।

आपका यह अनुवाद सरस और सहज है तथा इसके द्वारा 'श्रीमद्-देवी-भागवत' के बहुत से कठिन अंशों का अर्थ स्पष्ट हो जाता है। इस हिन्दी-पद्यानुवाद से देवी के उपासकों को संस्कृत का ज्ञान न होते हुए भी विशेष ज्ञान प्राप्त होगा, इसमें सन्देह नहीं।

अतः आज ही इस ग्रन्थ को मँगाकर नित्य पाठ, श्रवणादि से कृतार्थ हों।

(दो भागों में, मूल्य ३५०-०० रु०। चण्डी-सदस्यों के लिए रियायती मूल्य २८०-०० रु०)

प्राप्ति-स्थान—चण्डी कार्यालय, अलोपीबाग, प्रयाग—२११००६ दूर-भाष : ५१४८३

'कौल-कल्पतरु' चण्डी

वर्ष ४६] आश्विन-कार्तिक-मार्गशीर्ष, २०४७ वि०—अक्टूबर-नवम्बर-दिसम्बर, ६० [संख्या ७-८-६

१ सम्पादकीय २

२ बिहार-शाक्त-सम्मेलन की ऐतिहासिक उपलब्धि : 'कुल-रत्न' श्री विजयकुमार वत्स, पटना ४

३ चण्डी त्रि-सूत्र ८

४ श्री गर्भ-चण्डी (गौड़-मतेन लघु-चण्डी-पाठ-क्रमः) ६

५ जिज्ञासु के पत्र १३

६ महा-शक्ति-स्वरूपा महा-काली : डा० श्री रञ्जन सूरिदेव, पटना (बिहार) १४

७ आपदुद्धारक-बटुक-भैरव-स्तोत्र घटित चण्डी-विधानम् १६

८ वेदों में शाक्त-मत : 'तन्त्र-शास्त्री' पण्डित अनन्तदेव जोशी, साबरकांठा २१

६ सप्तशती-सार-स्तोत्र १७

१० सीहोर (म० प्र०) का शिवाराध्या श्री पीताम्बरा-धाम : पं० शारदाप्रसाद दीक्षित, सीहोर २३

'राष्ट्र-गुरु' परम पूज्य स्वामी जी महाराज की पुण्य स्मृति में :

विशिष्ट लेख-माला—दीक्षा-प्रकाश

[आषाढ़ २०४७ वि०—जुलाई, १६६० तक प्रकाशित ४८ पृष्ठों के आगे का अंश]

११ सनातनी दीक्षा-क्रम : श्री धन शमशेर जङ्गबहादुर राणा ४६-७८

- १ 'दक्षिणाम्नाय' क्रम की 'काली' और 'तारा' मन्त्र विद्याएँ …४६
- २ 'ऊर्ध्वाम्नाय' क्रम की बाला विद्या …५६
- ३ 'उत्तराम्नाय' के पञ्च-क्रम …६२
- ४ 'पूर्वाम्नाय' के पञ्च-क्रम …६५
- ५ 'पश्चिमाम्नाय' के पञ्च-क्रम …६७
- ६ पञ्च-लक्ष्मी-क्रम …७४
- ७ चक्रेश्वरी की १५ विद्याएँ …७५
- ८ भगवती दुर्गा के पञ्च-क्रम …७७

१२ पूर्णाभिषेक-विधान ('महा-निर्वाण तन्त्र' के आधार पर) ७६-८४

१३ दीक्षा अर्थात् 'मुक्ति-साधन' की विवेचना : श्री धन शमशेर जङ्गबहादुर राणा ८५

शाक्त-धर्म क्या है ?

['चण्डी' वर्ष ४८, अङ्क ७-८ द्वारा 'शाक्त-धर्म क्या है ?' नामक लेख-माला के ४० पृष्ठ प्रकाशित हुए थे। इस लेख-माला के शेष अंश के रूप में प्रस्तुत अङ्क में ४१-७२ पृष्ठ हैं]

१४ परमहंस पूर्णानन्द गिरि विरचित 'शाक्त-क्रम' ४१-६८

- प्रातः-कृत्य …४१
- गुरु-स्तुति …४१
- अन्तर्यजन …४६
- ब्रह्मात्मकं महा-यज्ञ …५२
- भावना परि-निर्णयम् …५३
- कुलाचार-वर्णनम् …६०
- समयाचार-वर्णनम् …६४

१५ शाक्त-धर्म (राजाधिराज-योग) : 'कुल-मार्तण्ड' पं० योगीन्द्रकृष्ण दौर्गादत्ति जी शास्त्री ६६

सम्पादकीय

१. 'शाक्त' अर्थात् अपने में विद्यमान् महा-शक्ति का उपासक

'सर्वे शाक्ता द्विजाः' के अनुसार गायत्री की उपासना करनेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य— सभी 'द्विज' वास्तव में 'शाक्त' ही हैं। तथापि कोई अपने को वैष्णव, कोई शैव, कोई सौर, कोई गाणपत आदि मान कर तत्तद्-देवता की 'दीक्षा' ग्रहण करते हैं। इस प्रकार हिन्दू-धर्म के अन्तर्गत तीनों वर्णों में विविध मतावलम्बी लोग लोचन-गोचर होते हैं।

'शाक्त' वह उपासक है, जो अपने में विद्यमान् 'महा-शक्ति' का अन्वेषण करता है। 'महा-शक्ति' प्राणि-मात्र में रहती है। यदि प्राणियों में 'शक्ति' न हो, तो कोई भी किञ्चिदपि कार्य करने में समर्थ नहीं हो सकता। हम लोगों के भीतर जो 'शक्ति' विद्यमान है, उसको हम यथार्थता में नहीं जानते। उदाहरण के लिए, जैसे एक मनुष्य में 'लिखने की शक्ति' विद्यमान है, किन्तु जब तक उसको लिखने की रीति का बोध न होगा, तब तक वह लिख नहीं सकता। इसी प्रकार हम लोगों में जो भी 'शक्ति' विद्यमान है, वह वही 'महती शक्ति' है, जिसके द्वारा इस ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, पालन और प्रलय यथा-समय होता चला जा रहा है, किन्तु हम लोग अन्य विचारों में निमग्न होकर, इस 'महा-शक्ति' का निश्चय नहीं कर पाते। 'महा-शक्ति' के निश्चय करने का जो उपाय है, वही 'शाक्त-धर्म' है।

२. 'शाक्त-धर्म' में 'गुरु' और 'दीक्षा' की प्रधानता

'महा-शक्ति' को विदित करानेवाला 'गुरु' है। अतः 'शाक्त-धर्म' में सबसे पहले 'गुरु का ध्यान' और 'चिन्तन' करना पड़ता है। सूक्ष्म विचार से देखने पर यह विदित हो जायगा कि बोध-रूप 'गुरु' और बुद्धि-रूपिणी 'शक्ति' एक ही हैं, किन्तु दोनों के एक होने पर भी 'गुरु-रूप' का सर्व-प्रथम स्मरण करना नितान्त आवश्यक है। स्मरण करने के लिए 'गुरु' से 'दीक्षा' लेना आवश्यक है क्योंकि 'दीक्षा' ग्रहण करने से ही प्रातः-काल तथा पूजा में सबसे पहले करणीय 'गुरु-स्मरण' का ज्ञान हो पाता है।

एक बालक जन्म लेते ही अपनी माता का स्तन-पान करता है। स्तन-पान बालकों को किसने सिखाया? इस प्रश्न के उत्तर से विदित होता है कि बालकों के स्तन-पान के तरीके का बोध-रूप 'गुरु' ही स्तन-पान करने की शक्ति-रूप में परिणत होता है। 'शाक्त-धर्म' के अनुसार बालकों के स्वतः स्तन-पान की भाँति, हम लोग भी गुरूपदिष्ट मार्ग से 'शक्ति' की उपासना करते-करते, महती शक्ति को जानकर, स्वयं महा-शक्तिशाली बन सकते हैं।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जिस भाँति तृषित शिशु, माता के पयोधर-पान करने की रीति-रूपी ज्ञान-रूपिणी 'शक्ति' के न होने के कारण, अपनी जननी का स्तन-पान नहीं कर सकता, उसी भाँति उपासक 'गुरु-ज्ञान' न होने के कारण 'उपासना की सिद्धि' को प्राप्त नहीं कर सकता। मनुष्यों को प्रत्येक वस्तु का बोध मस्तिष्क द्वारा ही होता है, अतएव 'शाक्त-धर्म' ने 'गुरु-चिन्तन' की रीति 'सहस्रार' (सहस्र-दल-कमल) के ऊपर दर्शायी है। मानवों को भिन्न-भिन्न रुचि के अनुसार 'शाक्त-धर्म' में 'महा-शक्ति' की उपासना करने की रीति एवं गुरु-चिन्तन करने की विधि षट्-प्रकार की बताई गई है। 'शाक्त-धर्म' की यह षड्-विद्या रीति 'षडाम्नाय' के रूप में प्रसिद्ध है।

३. 'शाक्त-धर्म' की षड्-विद्या-रीति का रहस्य

भगवान् शङ्कराचार्य के निम्न-लिखित पद्य के उच्च 'भाव' को हृदयङ्गम करें—

न चाहूँ मैं मुक्ती न तु विभव-तृष्णा चितु बसै, बनूँ न विज्ञानी सुख-भोग-अभिलाषा न मन में।
परन्तु मैं माँगूँ जननि ! मम बीतैं जनम ये, मृड़ानी रुद्राणी शिव-शिव भवानी जपन में ॥

इस उच्च 'भाव' में जिन्हें रुचि है, वे लोग 'पूर्वाम्नाय', 'दक्षिणाम्नाय' और 'पश्चिमाम्नाय' से उपासना करते हैं, किन्तु जिन जनों की अभिलाषा 'गृहस्थाश्रम' में रहकर तथा व्यावहारिक बन कर 'शक्ति-साधन' करने की होती है, वे मात्र 'पश्चिमाम्नाय' द्वारा भगवती की उपासना का अनुष्ठान करते हैं।

'मेरु-तन्त्र' में स्पष्ट लिखा है—**'पश्चिमं त्वैहिकं फलम्'**। अतएव ऐहिक तथा पारलौकिक सुख की आशा रखनेवाले उपासक सर्वदा 'पश्चिमाम्नाय' से उपासना करते हैं। इस आम्नाय की विद्या से अधम और मध्यम सिद्धि की उपलब्धि होती है, किन्तु निर्वाण–'मोक्ष' की इच्छा कदापि उत्पन्न नहीं होती तथा उत्तम सिद्धि भी हाथ नहीं आती। जो लोग सुख-सम्पत्ति की परवाह न रखकर, केवल मनोराज्य में मग्न होते हुए गृहस्थाश्रम को त्याग कर अथवा व्यवहार में मनोयोग न देकर उपासना करते हैं और जन्मान्तर में भी इस जन्म के समान ही होना चाहते हैं, वे 'पूर्वाम्नाय' से उपासना करते हैं। इस विद्या से उत्तम सिद्धि का लाभ होता है, परन्तु निर्वाण-'मोक्ष' की इच्छा नहीं रहती। जो लोग इस जन्म तथा पश्चिम जन्म के सुख-दुःखों की परवाह न करके—

नरा मां विनिन्दन्तु निन्दन्तु नाम, भजन्त्वम्ब वा ज्ञातयः सन्त्यजन्तु।
यमीया भटा नारके पारयन्तु, त्वमेका गतिर्मे त्वमेका गतिर्मे ॥

अर्थात्—'चाहे लोग मेरी निन्दा अथवा स्तुति करें, बिरादरीवाले मुझे अपनावें अथवा बिरादरी से अलग करें और मरने के उपरान्त चाहे यम-दूत मुझे नरक में धकेलें, किन्तु हे माता ! हे जगज्जननि ! मेरी शरण केवल एक तू ही है। मैं दूसरे की शरण न ले सकता हूँ, न लूँगा और न ली है।' इस उपरि-निर्दिष्ट महा-कालोक्त भाव को रखकर गृहस्थ बनकर अथवा गृहस्थ त्यागकर जो उपासना करते हैं, वे 'दक्षिणाम्नायी' कहलाते हैं।

इनमें से जो लोग 'गृहस्थाश्रम' में रहकर उपासना करते हैं, उन्हें अधम और मध्यम सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं और जो गृहस्थी से विरक्त होकर उपासना करते हैं, वे उत्तम सिद्धि के पात्र बनते हैं, किन्तु इन्हें भी निर्वाण-'मोक्ष' की इच्छा नहीं होती।

निर्वाण-'मुक्ति' के अभिलाषी उपासक गृहस्थाश्रम में रहकर अथवा न रहकर 'उत्तराऽऽम्नाय' से अथवा 'ऊर्ध्वाम्नाय' से उपासना करते हैं। 'उत्तराऽऽम्नाय' की नायिका 'गुह्य - काली' अर्थात् सिद्ध-योगीश्वरी हैं और 'ऊर्ध्वाऽऽम्नाय' की नायिका 'श्रीविद्या' अर्थात् 'महा-त्रिपुर-सुन्दरी हैं। 'बड़वानल तन्त्र' के अनुसार 'उत्तराम्नाय' और 'ऊर्ध्वाऽऽम्नाय' के ध्यान, मन्त्र और पूजादि - प्रक्रिया में भेद होने पर भी फल में भेद नहीं है। इन दोनों आम्नायों के गृहस्थ उपासकों को अधम और मध्यम सिद्धि की प्राप्ति होती है और गृहस्थ से पृथक् होकर उपासना करनेवालों को उत्तम सिद्धि मिलती है। 'कौल'-मार्गावलम्बी लोगों को 'गृहस्थाश्रम' त्यागकर संन्यास का आश्रय न लेना चाहिए।

'चण्डी' के प्रस्तुत ग्रङ्क में **'सनातनी दीक्षा-क्रम'** नामक निबन्ध द्वारा 'शाक्त-धर्म' की षड्-विद्या-रीति का विस्तृत विवरण प्रस्तुत हुआ है। साथ ही परमहंस पूर्णानन्द नाथ द्वारा विरचित **'शाक्त-क्रम'** के प्रकाशन द्वारा शाक्त-धर्म विषयक अनेक महत्त्वपूर्ण रहस्योद्घाटन भी हुए हैं। पाठक बन्धु इन दोनों निबन्धों से 'शाक्त-धर्म' के वास्तविक स्वरूप को हृदयङ्गम कर सकेंगे।

बिहार शाक्त सम्मेलन
की
ऐतिहासिक उपलब्धि

'कुल-रत्न' श्री विजय वत्स, सचिव, बिहार शाक्त सम्मेलन

'बिहार-शाक्त-सम्मेलन' ने **'पटना-पुस्तक-मेले'** में पहली बार अपनी ऐतिहासिक भागीदारी ली, जिसका श्रेय निस्संदेह दिव्य गुरु-जनों के प्रताप और भगवती जगदम्बा की अहैतुकी दया को जाता है। आइए, पहले उक्त भागीदारी में दैवी संयोग का भूत-लक्षी अवलोकन करें—

परम-पूज्य प्रातः - स्मरणीय पं० श्री रमादत्त जी शुक्ल का पत्र प्राप्त होता है, जिससे 'पटना-पुस्तक-मेले' के सचिव पं० श्री नरेन्द्रकुमार झा से सम्पर्क कर मेले में 'बिहार-शाक्त-सम्मेलन' की सह-भागिता हेतु विचार करने की प्रेरणा मिलती है। पहली भेंट में श्री झा के व्यवहार से हम प्रभावित हुए, परन्तु १०० वर्ग-फीट स्थान और तन्तु-रचना हेतु आवश्यक धन-राशि की विशालता से विचलित भी हुए। गुरुवर शुक्ल जी को पत्र लिखकर असमर्थता बताई। प्रयाग से शीघ्र ही निर्देश मिला कि 'पुस्तक-मेले' में भाग लेने का विचार छोड़ दिया जाय।

अपनी विवशता से श्री झा को अवगत कराने हम अपने मित्र - वर श्री वीरेन्द्र गिरि के साथ उनके पास गए। एक साधन-हीन संस्था के लिए खर्चीले 'पुस्तक-मेले' में भाग लेना एक दिवा - स्वप्न ही था, परन्तु पं० श्री झा का प्रोत्साहन पाकर पुनः एक नए उत्साह का सञ्चार हुआ। उन्होंने कहा 'हम छोटे प्रकाशकों के लिए ५० वर्ग-फीट के स्थान की व्यवस्था करने जा रहे हैं। आपको इसके लिए मात्र २०००/- रु० जमा करने पड़ेंगे।'

मेरे मित्र, श्री वीरेन्द्र गिरि अत्यन्त उत्साही युवक हैं, आकल्पित आवेग उनके मुख-मण्डल पर दृष्टि-गोचर हो रहा था, तत्क्षण उन्होंने १०००/- रु० अपनी ओर से देने की घोषणा कर डाली। अब बारी मेरी थी। जगदम्बा का स्मरण कर १०००/- रु० अभिदान से जुटा लेने का बीड़ा मैंने उठा लिया। दो-तीन दिनों में १०००/- रु० का चेक श्री गिरि जी के द्वारा पं० श्री झा को भेज दिया गया। अब 'पुस्तक-मेले' में हमारी भागीदारी सुनिश्चित हो गई थी। पटना में सर्वत्र अशान्ति और तनाव का वाता-वरण था, फिर भी दस-बारह दिनों में हमारे मित्रों/समर्थकों के सहयोग से शेष राशि अभिदान द्वारा मुझे प्राप्त हो गई और उसे भी जमा करा दिया गया।

'स्टाल' के लिए आवेदन और 'मेले' में सम्मेलन की भागीदारी की सुनिश्चितता की सूचना पुनः शुक्ल जी को दी गई। मैं अपने सम्मान्य संरक्षक श्री शम्भुशरण जी श्रीवास्तव से मिला। 'पुस्तक - मेले' में सम्मेलन की भागीदारी पर उन्होंने बड़ी प्रसन्नता व्यक्त की। निःशुल्क वितरण करने हेतु 'बिहार-शाक्त-सम्मेलन' के सम्विधान एवं उद्देश्यों से सम्बद्ध साहित्य प्रकाशित करने का उन्होंने वचन दिया। उधर प्रयाग से सूचना आ गई कि 'पुस्तक-मेले' और 'बिहार-शाक्त-सम्मेलन' पर इस बार **'सम्पादक की वाणी'** का विशेषाङ्क प्रकाशित होने जा रहा है। 'पुस्तक-मेले' के शुभारम्भ की तिथि १४ नवम्बर से

बढ़ाकर २१ नवम्बर कर दी गई। तब तक पटना में स्थिति शान्त और अनुकूल हो चुकी थी। है न यह आदि-शक्ति का विलक्षण चमत्कार ?

१८ नवम्बर को **'कल्याण मन्दिर प्रकाशन'** की पुस्तकें लेकर मान्यवर पं० श्री रामकृष्ण जी तिवारी पटना पधारे और अपने साथ पं० श्री रमादत्त जी शुक्ल के पटना-प्रवास की सूचना भी लाए। २० नवम्बर को अपने 'स्टाल' पर सारी पुस्तकें सजा दी गईं। 'स्टाल' के बीचों - बीच पुस्तकों के ऊपर शाक्त - शिरोमणि पं० श्री देवीदत्त जी का श्वेत-श्याम माल्य - विभूषित रेखा-चित्र शोभायमान हो रहा था। दूसरे दिन संयोग ऐसा बना कि १०० वर्ग-फीट के स्टाल में ५० वर्ग-फीट के हमारे दूसरे हिस्सेदार एक ही स्टाल में साथ-साथ पुस्तकें लगाने पर सहमत नहीं हुए। तकनीकी असुविधाओं के कारण उक्त हिस्सेदार को दूसरा स्टाल आवण्टित कर दिया गया। इस प्रकार पूरे १०० वर्ग - फीट का उपयोग **'बिहार-शाक्त-सम्मेलन'** को करने का अवसर अनायास ही प्राप्त हो गया। बाद में यह अनुभव हुआ कि यदि १०० वर्ग-फीट में दोनों हिस्सेदार होते, तो दोनों को ही ढेर सारी परेशानियाँ होतीं।

इस प्रकार महा-मायाऽनुभावेन, 'बिहार-शाक्त-सम्मेलन' के तत्त्वावधान में 'पुस्तक - मेले' में 'शाक्त-साहित्य-प्रचार-अभियान' का सूत्र-पात हुआ। 'मेले' में 'सम्मेलन' का प्रतिनिधित्व श्री वीरेन्द्र गिरि एवं मैंने किया। श्री शम्भुशरण श्रीवास्तव अपने सुपुत्र श्री रञ्जन श्रीवास्तव के साथ पूरी व्यवस्था में संलग्न रहे। प्रथम दिन ही हमें अपने अभियान की सार्थकता और उसकी सफलता की सुनिश्चितता का आभास हो गया। बड़ी संख्या में आचार्य/साधक/माताएँ एवं जिज्ञासु हमारे 'स्टाल' पर आए। ३० नवम्बर तक हमारी पुस्तकें समाप्त-प्राय हो गईं। उसी दिन यदि प्रयाग से पं० श्री ऋतशील जी शर्मा पुस्तकों की दूसरी खेप लेकर नहीं आए होते, तो पटना के तन्त्र-प्रेमियों को घोर निराशा होती। पुस्तकों की दूसरी खेप भी २ दिसम्बर तक लगभग समाप्त हो गई। पं० श्री रमादत्त जी शुक्ल कुछ व्यक्तिगत कारणों से नहीं आ सके, परन्तु उनकी भावनात्मक उपस्थिति का हमें निरन्तर आभास होता रहा।

कई शाक्त बन्धुओं को हम कतिपय पुस्तकें उपलब्ध नहीं करा सके, इसका हमें खेद है। फिर भी हमें सन्तोष है कि बिहार की धरती पर सुधी साधकों/जिज्ञासुओं की अब भी कमी नहीं है। बिहार-वासियों के अतिशय सहयोग और हार्दिक रुचि से हमें अभिनव उत्साह और आत्म - सन्तोष मिला है। हम हृदय से आभारी हैं। शाक्त-धर्म के प्रचार और प्रसार हेतु 'सम्मेलन' शीघ्र ही कुछ अनूठी योजनाएँ लागू करने जा रहा है। इस कार्य में हमें सभी शाक्त बन्धुओं का सहयोग अपेक्षित है।

कुछ झलकियाँ

* 'पुस्तक-मेले' की स्मारिका में 'बिहार-शाक्त-सम्मेलन' की जगह 'बिहार-शक्ति-सम्मेलन' छप गया। पता नहीं, यह छपाई की भूल है अथवा प्रकाशक की !

* 'शाक्त-साहित्य' लिखा देखकर कई व्यक्ति साहित्य की पाठ्य-पुस्तकों की माँग करने लगे, तो कुछ जिज्ञासु 'शाक्त' शब्द का अर्थ पूछने लगे। अनावश्यक पूछ-ताछ की झंझट से बचने के लिए स्टाल पर 'यन्त्र-तन्त्र-मन्त्र' लिखकर चिपका दिया गया।

* 'यन्त्र-मन्त्र-तन्त्र' देखकर सामान्य जनता में हमारे स्टाल के प्रति अत्यधिक उत्सुकता देखी गई। फलतः पूरे नगर में 'बिहार-शाक्त-सम्मेलन' का व्यापक विज्ञापन सहज ही हो गया। कई महानुभाव बार-बार स्टाल पर आए और पसन्द की पुस्तकें पूरी तन्मयता से देख-समझकर खरीदीं। कई जिज्ञासु देर तक व्यवस्थापकों/प्रतिनिधियों से साधना-विषयक जानकारी प्राप्त करते देखे गए। 'सम्मेलन' के

'स्टाल' पर भी पुस्तकें गायब हुईं। नैतिक पतन की अधिक-तम परिणति और क्या हो सकती है कि मात्र दो रुपए के मूल्य की पुस्तक भी कोई सज्जन चुरा ले जाने को विवश थे! विशेषकर धार्मिक पुस्तकें उड़ाने के पहले उन्हें सोचना चाहिए था कि 'ऋषि - ऋण' का बोझ लेकर कितनी आत्मोन्नति वे प्राप्त कर पाएँगे?

* 'बिहार-शाक्त-सम्मेलन' से सम्बद्ध साहित्य का नि:शुल्क वितरण किया गया। इसकी तीन हजार प्रतियाँ अति-शीघ्र बँट गईं।

* कई व्यक्ति इस अवसर पर '**कौल कल्पतरु चण्डी**' पत्रिका के वार्षिक सदस्य बने। '**चण्डी**' के कई नियमित ग्राहक भी पधारे।

* १-१२-९० को बिहार के पूर्व मुख्य मन्त्री डा० श्री जगन्नाथ मिश्र सपरिवार हमारे स्टाल पर पधारे। डा० मिश्र शीघ्रता में थे, परन्तु उनकी धर्म-पत्नी ने समय देकर स्टाल का निरीक्षण किया और पसन्द की पुस्तकें खरीदीं।

* हमारे स्टाल पर कुछ दिग्-भ्रमित युवक भी आए। इनमें से कुछ ने तो 'शाक्त-साहित्य' की व्यर्थता से हमें अवगत करवाया, तो कुछ मनचलों ने 'मोहिनी मन्त्र' की माँग की! इससे यह स्पष्ट होता है कि सामान्य लोग 'तन्त्र' के प्रति कैसी धारणा रखते हैं, साथ ही इससे हमारे अभियान की सार्थकता भी सिद्ध होती है। हमें इन नवयुवकों से अतिशय सहानुभूति है। जगदम्बा इन्हें सद् - बुद्धि दें, ताकि वे पाश्चात्य अप-संस्कृति का मोह छोड़कर देश की संस्कृति के पारम्परिक मूल्यों से जुड़ें और इसके प्रसार के दायित्व का अनुभव करें।

* श्री लक्ष्मीकान्त जी शरण 'जय जगत' नामक सज्जन हमारे स्टाल पर आए, ५० पैसे मूल्य की कोई पुस्तक माँगी। उन्हें '**सम्पादक की वाणी**' की कुछ प्रतियाँ नि:शुल्क दे दी गईं। श्री 'जय जगत' जी हमारे सम्मान और प्रशंसा के पात्र हैं, जिन्होंने अपनी निर्धनता प्रकट करने में कोई सङ्कोच किए बिना साहित्य में अपनी रुचि प्रकट की। भगवती उनके नाम को सार्थक बनाएँ।

'शाक्त-साहित्य' के प्रति शुभाशंसाएँ

स्टाल पर आए कुछ आचार्यों/गुरु-जनों/साधकों की शुभाशंसाएँ कृतज्ञता-पूर्वक प्रस्तुत हैं--

* **श्री कपिलदेवनारायण सिंह, पुनाईचक, पटना ('चण्डी' के ग्राहक)** : स्टाल में '**चण्डी-प्रकाशन**' की पुस्तकों के अवलोकन से हार्दिक प्रसन्नता हुई।...साधकों के लिए ये ग्रन्थ बहुत उपयोगी हैं।

* **डा० रामनाथ उपाध्याय, 'संतोषी', कदम कुआँ, पटना** : '**चण्डी-प्रकाशन**' की पुस्तकें साधकों के लिए अति उपयोगी हैं।

* **प्रो० आर० के० सिंह, छज्जूबाग, पटना** : माँ से मेरी प्रार्थना है कि आज के भटके हुए लोगों को सद्-बुद्धि दें। पुस्तकों का यह 'स्टाल' और '**कल्याण मन्दिर प्रकाशन**' के प्रकाशक साधकों एवं जिज्ञासुओं की महान् सेवा कर रहे हैं। धन्यवाद।

* **पं० भास्करानन्द जी मिश्र, महेन्द्रू, पटना** : शाक्त - साहित्य के 'स्टाल' के अवलोकनोपरान्त मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि मानव-कल्याणार्थ आज की परमावश्यक वस्तुएँ और साहित्य स्टाल में अत्यन्त मनोहारी रूप में सजाए गए हैं। सञ्चालक—शक्ति के उपासक ही नहीं, वरन् साधना के पूर्ण ज्ञानानुभव रखनेवाले प्रतीत हुए। पुस्तकों में वर्णित वस्तुओं (विषयों) को दिखलाने एवं समझाने में इनकी काफी दिलचस्पी रही है। इनके अकथ प्रयास आधुनिक जगत् में अध्यात्म के आधार पर बदलाव लाने में काफी सहयोगी बनेंगे।

*** श्री नवीनचन्द्र, धनबाद :** तन्त्र-विषयक एवं माँ की भक्ति से सम्बद्ध साहित्य के प्रकाशन एवं उसके प्रचार का कार्य सराहनीय है । आशा है, कार्य चलता ही रहेगा ।

*** श्री सुशीलकुमार लाल, लोहानीपुर, पटना-३ (चण्डी के ग्राहक) :** स्टाल में **'चण्डी'** पत्रिका तथा अन्यान्य ग्रन्थों को उपलब्ध जानकर काफी प्रसन्नता हुई । श्री माँ हम सबों पर सदा दया-दृष्टि रखें ।

*** डा० बी० एन० प्रसाद, खगौल, पटना (डा० श्रीमाली के शिष्य) :** इस 'प्रकाशन' के प्रति मैं अपनी हार्दिक प्रीति व्यक्त करता हूँ क्योंकि मैं इसके प्रस्तुतीकरण से अत्यधिक प्रभावित हुआ हूँ ।

*** श्री केशवप्रसाद मिश्र, पटना :** तन्त्र-मार्ग में शक्ति-साधना के प्रसार हेतु आपके सतत प्रयासों का मैं हृदय से स्वागत करता हूँ ।

*** डा० श्री मारुतिनन्दन पाठक, बोधगया :** 'पटना-पुस्तक-मेले' में शाक्त - साहित्य की पुस्तकें देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई । अनुमानतः बाहर से ही प्रतीत हुआ था कि यह **'कल्याण मन्दिर प्रकाशन, प्रयाग'** की ही विशेषता हो सकती है, जो प्रतिबद्धता से इस कार्य को महत्त्व दे रहा है । अन्दर आने पर अनुमान यथार्थ निकला । प्रयाग के पं० श्री रमादत्त शुक्ल जी या श्री ऋतशील जी तो नहीं मिले, किन्तु प्रयाग से आए पं० रामकृष्ण तिवारी एवं बिहार के एक उत्साही युवक श्री विजय वत्स मिले, जिनसे मिलकर अतिशय प्रसन्नता हुई । इन्हीं के श्रम और उत्साह का परिणाम है यह स्टाल । ऐसे लोग आगे आएँ तथा यह साहित्य और फैले, तो कल्याणकारी सिद्ध होगा । मेरी कामना है कि यह अपेक्षा यथार्थ रूप में परिणत हो । शुभ कामनाओं के साथ…

*** श्रीमती प्रियम्वदा शर्मा गौड़, पटना सिटी :** शिव-सङ्कल्प सहित शुभाशंसाएँ ।

*** डा० प्रेमशङ्कर शर्मा, पटना सिटी :** भगवती को स्वास्थ्य का प्रतीक भारत मानता है । इस पर कुछ पढ़ना और लिखना चाहता हूँ । आपसे सहयोग प्राप्त हुआ । साधुवाद ! समस्त शुभकामनाएँ !!

*** प्रो० रामनरेश सिंह, दानापुर, पटना :** 'बिहार-शाक्त-सम्मेलन' के स्टाल पर शाक्त-पुस्तकों का अवलोकन किया तथा दुर्गा-आराधना के सम्बन्ध में श्री शुक्ल जी से काफी जानकारी प्राप्त हुई, जो अन्यत्र मिलनी दुर्लभ है । मेरी कामना है कि यह संस्था बढ़े और मानव मात्र का कल्याण सतत करती रहे ।

*** श्रीमती मञ्जु मिश्रा, सङ्गीत-शिक्षिका, कदम कुआँ, पटना :** …बिहार, पटना के साधकों को शक्ति-साधना-सम्बन्धी पुस्तकों का अभाव बेहद खटक रहा था । इस कमी को पूरा कर **'कल्याण मन्दिर प्रकाशन'** ने महत्त्व-पूर्ण कार्य किया है ।

*** प्रो० रामचन्द्र मिश्र, बिहटा, पटना :** …पुस्तक-मेले में 'तन्त्र-मन्त्र-यन्त्र' के अद्भुत स्टाल पर आया । इन शब्दों की सही जानकारी मिली । भारतीय गौरव का प्रतीक, आश्चर्य - मय 'शाक्त-साहित्य-सम्मेलन' देखा ।

*** डा० श्रीरञ्जन सूरिदेव, पटना :** 'बिहार-शाक्त-सम्मेलन' का स्टाल 'पटना पुस्तक - मेला' में देखकर आन्तरिक प्रसन्नता हुई । प्रकाशन के क्षेत्र में 'शाक्त-सम्मेलन' की समृद्धि अपने आप में महार्घ उपलब्धि है । कोई भी संघटन या सम्प्रदाय अपने सिद्धान्तों को पुस्तकाकार बनाकर जब जन - साधारण के बीच प्रसारित करता है, तभी वह शास्त्रीय सिद्धि प्राप्त करता है और साहित्य की विपुलता से ही कोई सम्प्रदाय अपना दार्शनिक प्रभाव छोड़ता है । इस दृष्टि से 'शाक्त - सम्मेलन' की दिशा सफलता की

'चण्डी'—त्रि-सूत्र

'चण्डी-उपासना' के तीन सूत्र हैं। एक शाक्त, दूसरा शक्ति, तीसरा साधना। शक्ति-उपासक का नाम–'शाक्त' है। प्रभाव, आत्म-प्रभा का नाम–'शक्ति' है और इनकी व्यावहारिक क्रिया का नाम–'साधना' है।

जैसे 'चण्डी-उपासना' के तीन सूत्र हैं, वैसे ही 'चण्डी-उपासना' की तीन धाराएँ भी है। एक धारा का नाम–'आत्म-धारा' अर्थात् चिन्मयी शक्ति का विकास है। दूसरी धारा का नाम–'जीवन-धारा' अर्थात् चित्ति-शक्ति का विकास' है। तीसरी धारा का नाम जड़-चेतनात्मक 'देहात्म-शक्ति' है।

इस त्रि-सूत्री और त्रि-धारा के एकीकरण से ही 'चण्डी-उपासना' की पूर्णता होती है।

(पृष्ठ ७ का शेषांश)

ओर उन्मुख है, इसमें सन्देह नहीं। मैं सम्मेलन की शास्त्रीय और भौतिक समृद्धि की कामना अहर्निश करता हूँ।

*** पं० श्री गङ्गाधर पाण्डेय, 'नीलकण्ठ', शान्तिनगर, पटना :** 'बिहार - शाक्त - सम्मेलन' का 'पटना-पुस्तक-मेला' में सम्मिलित होना एक मणि-काञ्चन-संयोग है। शाक्त-दर्शन की प्राण-भूत स्थितियाँ 'पुस्तक-मेला' के माध्यम से जन - जन तक पहुँच रही हैं। वस्तुतः मेरी दृष्टि में 'शाक्त' - ग्रन्थ भारतीय दर्शनों का निगूढ़-तम चूड़ामणि है और इस नाते 'पुस्तक-मेले' में 'शाक्त-साहित्य का समावेश'—पुनः दुहराऊँ—-एक अद्भुत मणि-काञ्चन-संयोग है। श्रद्धावनत-भावेन···

*** आचार्य चन्द्रकिशोर पाण्डेय 'निशान्तकेतु', पटना कालेज, पटना :** 'बिहार-शाक्त-सम्मेलन' का स्टाल 'पटना-पुस्तक-मेला' में देखकर हार्दिक प्रसन्नता हुई। सम्पूर्ण देश में इन पुस्तकों का प्रचार-प्रसार ही वर्तमान तनाव एवं आतङ्क को समाप्त कर सकता है। 'पुस्तक-मेले' में यह 'स्टाल' अब सभी पुस्तक-मेलों में लगे। भगवती स्वतः दायित्व लेंगी।

*** पं० श्री वेणीमाधव पाण्डेय, पटना :** 'शाक्त सम्मेलन' द्वारा आयोजित प्रदर्शनी एवं 'पुस्तक-मेला, ९०' में इसकी स-शक्त साभिप्राय एवं सार-गर्भित शाक्त-सेवा-अभिव्यक्ति निश्चित ही इसके अरुणोदय एवं मङ्गल-मय भविष्य का द्योतक है। मैं 'शाक्त - सम्मेलन' की निरन्तर सफलता एवं उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ।

हमें **निम्न महानुभावों** के भी सान्निध्य का सौभाग्य प्राप्त हुआ—सर्वश्री १ सलिलकुमार मजूमदार, बाँसघाट, २ पुष्पाकरकुमार आर्य, गुलजारबाग, ३ राजेन्द्रप्रसाद, दानापुर, ४ इन्दुशेखरप्रसाद सिंह, कदमकुआँ, ५ सत्येन्द्रनारायण त्रिवेदी, नया सचिवालय, ६ हरिवंशसहाय, चाँदमारी रोड, ७ प्रभातकुमार सिंह, सुल्तानगञ्ज, ८ दीनानाथ झा, दरभङ्गा हाउस, काली-मन्दिर, ९ गणेशशङ्कर, अभियन्ता, राजीव नगर, १० महादेव झा, राज - भाषा - विभाग सचिवालय, ११ रामकिशोर पाठक, १२ चन्द्रशेखर सिंह, राजेन्द्रनगर, १३ सुधीरकुमार द्विवेदी, पटना, १४ शङ्करदत्त ठाकुर, छोटी मरई, हाजीपुर, वैशाली, १५ प्रभाकर त्रिपाठी, शिवाशिव-समूह, भोजपुर, १६ ओमप्रकाश मिश्र, एकमा, सारण, १७ वीरेन्द्रकुमार सिन्हा, जमशेदपुर, १८ चन्द्रशेखरकुमार 'विष्णु', भागलपुर, १९ स्वामी नित्यानन्द जी महाराज आदि।

(अन्य विशेष विवरण हेतु 'सम्पादक की वाणी' देखिए)

श्री गर्भ-चण्डी

[गौड़-मतेन लघु-चण्डी-पाठ-क्रमः]

॥ अथ गर्भ-कवचम् ॥

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं नमः शूलेन पाहि नो देवि ! पाहि खड्गेन चाम्बिके !
घण्टा-स्वनेन नः पाहि, चाप-ज्या - निःस्वनेन च ॥ मः न क्लीं ह्रीं ऐं ॐ ॥१
ॐ ऐं ह्रीं क्लीं नमः प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च, चण्डिके ! रक्ष दक्षिणे ।
भ्रामेणनात्म - शूलस्य, उत्तरस्यां तथेश्वरि ! मः न क्लीं ह्रीं ऐं ॐ ॥२
ॐ ऐं ह्रीं क्लीं नमः सौम्यानि यानि रूपाणि, त्रैलोक्ये विचरन्ति ते ।
यानि चात्यर्थ-घोराणि, तै रक्षास्मांस्तथा भुवम् ॥ मः न क्लीं ह्रीं ऐं ॐ ॥३
ॐ ऐं ह्रीं क्लीं नमः खड्ग-शूल-गदादीनि, यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके !
कर - पल्लव - सङ्गीनि, तैरस्मान् रक्ष सर्वतः ॥ मः न क्लीं ह्रीं ऐं ॐ ॥४

॥ अथ गर्भ-अर्गला ॥

ॐऐंह्रींक्लीं चामुण्डायै विच्चे नमः ॐ एतत् ते वदनं सौम्यं, लोचन-त्रय-भूषितम् ।
पातु नः सर्व-भूतेभ्यः, कात्यायनि ! नमोऽस्तु ते ॥ मःन च्चेवि यैडामुंचा क्लीं ह्रींऐंॐ ॥१
ॐऐंह्रींक्लीं चामुण्डायै विच्चै नमः ज्वाला - कराल - मृत्युग्रमशेषासुर - सूदनम् ।
त्रि-शूलं पातु नो भीतेर्भद्र-कालि ! नमोऽस्तु ते ॥ मःन च्चेवि यैडामुंचा क्लींह्रींऐंॐ ॥२
ॐऐंह्रींक्लीं चामुण्डायै विच्चे नमः हिनस्ति दैत्य-तेजांसि, स्वनेनापूर्य या जगत् ।
सा घण्टा पातु नो देवि ! पापेभ्यो नः सुतानिव ॥ मःन च्चेवि यैडामुंचा क्लींह्रींऐंॐ ॥३
ॐऐंह्रींक्लीं चामुण्डायै विच्चै नमः असुरासृग्-वसा-पङ्क-चर्चितस्ते करोज्ज्वलः ।
शुभाय खड्गो भवतु, चण्डिके ! त्वां नता वयम् ॥ मःन च्चेवि यैडामुंचा क्लींह्रींऐं ॐ ॥४

॥ अथ गर्भ-शाप-विमोचनमुत्कीलनं च ॥

नमश्चण्डिकायै । मूल-मन्त्रेण विन्यस्य, ध्यात्वा, मानसोपचारैः सम्पूज्य, मूल-मन्त्रं (ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे क्लीं ह्रीं ऐं ॐ नमः स्वाहा) यथा-शक्ति प्रजप्य, समर्प्य, उत्कीलनं कुर्यात् । यथा——

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं चण्डि! सकल-मन्त्राणां शाप-विमोचनं कुरु कुरु स्वाहा । (त्रि-वारं जपेत्)
ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं चण्डि ! सप्त-शतिके ! सर्व-मन्त्राणां उत्कीलनं कुरु कुरु स्वाहा । (त्रि-वारं जपेत्)

॥ गर्भ-रात्रि-सूक्तम् ॥

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं नमः ब्रह्मोवाच मः न क्लीं ह्रीं ऐं ॐ ॥१

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं नमः त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि, वषट्-कारः स्वरात्मिका ।

सुधा त्वमक्षरे ! नित्ये ! त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता ॥ मः न क्लीं ह्रीं ऐं ॐ ॥२

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं नमः अर्द्ध - मात्रा - स्थिता नित्या, यानुच्चार्या विशेषतः ।

त्वमेव सन्ध्या सावित्री, त्वं देवि ! जननी परा ॥ मः न क्लीं ह्रीं ऐं ॐ ॥३

॥ अथ गर्भ-चण्डी ॥

॥ विनियोग ॥

ॐ अस्य श्रीगर्भ-चण्डी-माला-मन्त्रस्य ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वरादि ऋषयः । गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् छन्दांसि । श्रीशक्ति-स्वरूपिणी महा-चण्डी देवता । ऐं वीजं । ह्रीं कीलकं । क्लीं शक्तिः । मम चतुर्विध-पुरुषार्थ-सिद्धयर्थे जपे विनियोगः ।

॥ ऋष्यादि-न्यास ॥

ॐ अस्य श्रीगर्भ-चण्डी-माला-मन्त्रस्य ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वरादि-ऋषिभ्यो नमः शिरसि । गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्-छन्दोभ्यो नमः मुखे । श्रीशक्ति - स्वरूपिणी - महा-चण्डी-देवतायै नमः हृदि । ऐं वीजाय नमः गुह्ये । क्लीं शक्तये नमः पादयोः । ह्रीं कीलकाय नमः नाभौ । मम चतुर्विध-पुरुषार्थ-सिद्धयर्थे जपे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ।

षडङ्ग-न्यासः	कर-न्यास	अङ्ग-न्यास
ॐ ह्रां	अंगुष्ठाभ्यां नमः	हृदयाय नमः
ॐ ह्रीं	तर्जनीभ्यां नमः	शिरसे स्वाहा
ॐ ह्रूं	मध्यमाभ्यां नमः	शिखायै वषट्
ॐ ह्रैं	अनामिकाभ्यां नमः	कवचाय हुम्
ॐ ह्रौं	कनिष्ठिकाभ्यां नमः	नेत्र-त्रयाय वौषट्
ॐ ह्रः	करतल-करपृष्ठाभ्यां नमः	अस्त्राय फट्

ध्यानम्

शुद्ध-स्फटिक-सङ्काशां, रवि-विम्बाननां शिवाम् ।
अनेक-शक्ति-संयुक्तां, सिंह-पृष्ठे निषेदुषीम् ॥
अंकुशं चाक्ष-सूत्रं च, पाश-पुस्तक-धारिणीम् ।
मुक्ता-हार-समायुक्तां, चण्डीं ध्याये चतुर्भुजाम् ॥

सितेन दर्पणाब्जेन, वस्त्रालङ्कार - भूषितम् ।
जटा-कलाप - संयुक्तां, सु-स्तनीं चन्द्र-शेखराम् ।।
कटकैः स्वर्ण-रत्नाढ्यैर्महा-वलय - शोभिताम् ।
कम्बु-कण्ठीं सु-ताम्रोष्ठीं, सर्प-नूपुर-धारिणीम् ।।
केयूर-मेखलाद्यैश्च, द्योतयन्तीं जगत् - त्रयम् ।
एवं ध्याये महा-चण्डीं, सर्व-कामार्थ-सिद्धिदाम् ।।

।। अथ चतुष्टय-मुद्रा-प्रदर्शनम् ।।

१ पाश, २ अंकुश, ३ अक्ष-सूत्र, ४ पुस्तक-मुद्राणि प्रदर्शयेत्

।। श्रीगर्भ-चण्डी-मूल पाठ ।।

।। ॐ नमश्चण्डिकायै ।।

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं नमः ब्रह्मोवाच मः न क्लीं ह्रीं ऐं ॐ ।।१

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं नमः यच्च किञ्चित् क्वचिद् वस्तु, सदसद् वाऽखिलात्मिके !
तस्य सर्वस्य या शक्तिः, सा त्वं किं स्तूयसे तदा ।। मः न क्लीं ह्रीं ऐं ॐ ।।२

ॐ श्रीं नमः सम्मानिता ननादोच्चैः, साट्ट - हासं मुहुर्मुहुः ।
तस्या नादेन घोरेण, कृत्स्नमापूरितं नभः ।। मः न श्रीं ॐ ।।३

ॐ श्रीं नमः अर्द्ध-निष्क्रान्त एवासौ, युध्य-मानो महाऽसुरः ।
तया महाऽसिना देव्या, शिरश्छित्वा निपातितः ।। मः न श्रीं ॐ ।।४

ॐ श्रीं नमः दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेष - जन्तोः,
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव - शुभां ददासि ।
दारिद्रय - दुःख - भय - हारिणि का त्वदन्या,
सर्वोपकार - करणाय सदाऽऽर्द्र - चित्ता ।। मः न श्रीं ॐ ।।५

ॐ क्लीं नमः इन्द्रियाणामधिष्ठात्री, भूतानां चाखिलेषु या ।
भूतेषु सततं तस्यै, व्याप्ति-देव्यै नमो नमः ।। मः न क्लीं ॐ ।।६

ॐ क्लीं नमः इत्युक्तः सोऽभ्यधावत्, तामसुरो धूम्र-लोचनः ।
हुङ्कारेणैव तं भस्म, सा चकाराम्बिका ततः ।। मः न क्लीं ॐ ।।७

ॐ क्लीं नमः भृकुटी-कुटिलात् तस्याः, ललाट-फलकाद् द्रुतम् ।
काली कराल-वदना, विनिष्क्रान्ताऽसि-पाशिनी ।। मः न क्लीं ॐ ।।८

ॐ क्लीं नमः ब्रह्मेश - गुह-विष्णूनां, तथेन्द्रस्य च शक्तयः ।
शरीरेभ्यो विनिष्क्रम्य, तद्-रूपैश्चण्डिकां ययुः ।। मः न क्लीं ॐ ।।९

ॐ क्लीं नमः अट्टाट्ट - हासमशिवं, शिव-दूती चकार ह ।
तैः शब्दैरसुरास्त्रेसुः, शुम्भः कोपं परं ययौ ।। मः न क्लीं ॐ ।।१०

ॐ क्लीं नमः एकैवाहं जगत्यत्र, द्वितीया का ममापरा ?
पश्यैता दुष्ट! मय्येव, विशन्त्यो मद्-विभूतयः ।। मः न क्लीं ॐ ।।११

ॐ क्लीं नमः सर्व-स्वरूपे सर्वेशे ! सर्व-शक्ति-समन्विते !
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि ! दुर्गे देवि ! नमोऽस्तु ते ।। मः न क्लीं ॐ ।।१२

ॐ क्लीं नमः देव्युवाच मः न क्लीं ॐ ।।१३

ॐ क्लीं नमः सर्वा-बाधा-विनिर्मुक्तो, धन-धान्य-सुतान्वितः ।
मनुष्यो मत् प्रसादेन, भविष्यति न संशयः ।। मः न क्लीं ॐ ।।१४

ॐ क्लीं नमः यत् प्रार्थ्यते त्वया भूप ! त्वया च कुल-नन्दन !
मत्तस्तत् प्राप्यतां सर्वं, परितुष्टा ददामि तत् ।। मः न क्लीं ॐ ।।१५

।। जय जय श्रीमार्कण्डेय-पुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवी-माहात्म्ये सत्याः सन्तु मनसः कामाः ।।

।। गर्भ-देवी-सूक्तम् ।।

ॐ क्लीं नमः नमो देव्यै महा-देव्यै, शिवायै सततं नमः ।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै, नियताः प्रणताः स्म ताम् ।। मः न क्लीं ॐ ।।१

ॐ क्लीं नमः रौद्रायै नमो नित्यायै, गौर्य्यै धात्र्यै नमो नमः ।
ज्योत्स्नायै चेन्दु-रूपिण्यै, सुखायै सततं नमः ।। मः न क्लीं ॐ ।।२

ॐ क्लीं नमः कल्याण्यै प्रणतां वृद्ध्यै, सिद्ध्यै कूर्म्यै नमो नमः ।
नैर्ऋते भूभृतां लक्ष्म्यै, शर्वाण्यै ते नमो नमः ।। मः न क्लीं ॐ ।।३

ॐ क्लीं नमः दुर्गायै दुर्ग-पारायै, सारायै सर्व-कारिण्यै ।
ख्यात्यै तथैव कृष्णायै, धूम्रायै सततं नमः ।। मः न क्लीं ॐ ।।४

ॐ क्लीं नमः अति सौम्याति-रौद्रायै, नतास्तस्यै नमो नमः ।
नमो जगत्-प्रतिष्ठायै, देव्यै कृत्यै नमो नमः ।। मः न क्लीं ॐ ।।५

।। गर्भ-रहस्य-त्रयम् ।।

ॐ ह्रीं नमः गुरूपदेश - विधिना, पूजनीया प्रयत्नतः ।
मन्त्रोद्धार-प्रयत्नेन, ज्ञातव्या सा नृपात्मज ! ।। मः न ह्रीं ॐ।।१

ॐ श्रीं नमः प्रदक्षिणां नमस्कारान्, कृत्वा मूर्ध्नि कृताञ्जलिः ।
क्षमापयेज्जगद्धात्रीं, मुहुर्मुहुरतन्द्रितः ।। मः न श्रीं ॐ ।।२

ॐ क्लीं नमः जगन्मातुश्चण्डिकाया, कीर्तिता कामधेनवः ।

मेधां प्रज्ञां तथा श्रद्धां, धारणां कान्तिमेव च मः न क्लीं ॐ ।।३

।। गर्भ-सूत्र-त्रयम् ।।

ॐ ऐं नमः ब्रह्म सरस्वती-सूक्तं, लक्ष्मी-सूक्तं जनार्दनम् ह्रीं ॐ ।।

अस्य मन्त्रस्य लक्ष-जपं, तदा सिद्धिर्भवेद् ध्रुवम्—

श्रीं श्रीं श्रीं ॐ नमः

।। श्री गर्भ-चण्डी सम्पूर्णा ।।

जिज्ञासु के पत्र

श्री वि० रा० बापट, एम. ए., सराफ चेम्बर्स अनेक्स, माउण्ट रोड, नागपुर (महाराष्ट्र)/२८-६-६०

"…'**मुद्राएँ एवं उपचार**' किताब पढ़कर मैं बहुत प्रभावित हुआ। मुद्राओं के बारे में समष्टि-रूप में इस किताब में पर्याप्त जानकारी दी गई है। रेखा-चित्र भी दिए गए हैं, इसलिए कोई भी आसानी से 'मुद्रा' बना सकते हैं। यह एक अनमोल विशेषता इस ग्रन्थ की है। बहुत-बहुत धन्यवाद।… मुद्राओं के द्वारा शारीरिक एवं मानसिक बीमारियाँ दूर हो सकती हैं। इस विषय पर मैं शोध कर रहा हूँ। …अनुरोध है कि इस दृष्टि-कोण से लिखी हुई कोई संस्कृत या हिन्दी किताब हो, तो उसका विवरण देने की कृपा करें।…"

उत्तर—**केवल मुद्राओं के द्वारा शारीरिक या मानसिक व्याधियों का निवारण सम्भव नहीं है। साधना द्वारा सिद्ध पुरुष ही 'मुद्रा'-प्रदर्शन कर या केवल दृष्टि-पात द्वारा व्याधियों का निवारण कर सकता है, इसमें सन्देह नहीं। स्वयं 'मुद्रा' का भी अपना विशेष प्रभाव होता है, यह एक तथ्य है, किन्तु वह प्रभाव उस 'मुद्रा' द्वारा कोई साधक व्यक्ति तभी उत्पन्न कर सकता है, जब निर्दिष्ट साधना द्वारा उस 'मुद्रा' की सिद्धि प्राप्त कर ली गई हो।**

साधना द्वारा सिद्धि प्राप्त करना सरल नहीं है। कदाचित् यही कारण है कि ऐसी कोई पुस्तक संस्कृत या हिन्दी में नहीं मिलती, जिसमें मात्र 'मुद्राओं' द्वारा व्याधियों का निवारण करने का प्रतिपादन किया गया हो। आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक 'मुद्रा' के प्रभाव का वर्णन करते हुए एक लेख प्रकाशित हो। आशा है, अनुभवी साधकों का ध्यान इस ओर जायगा।

श्रीगोपाललाल माथुर, जयपुर (राजस्थान)/१-१०-६०

"…दुर्गा-पाठ में सभी देवताओं का उल्लेख है, परन्तु श्री गणेश जी का नाम किसी अध्याय में नहीं आया। क्या श्री गणेश देवताओं की श्रेणी में नहीं आते? मेरी इस शङ्का का निवारण करें।…"

उत्तर—**दुर्गा-पाठ में भगवती चण्डिका के तीन चरितों का वर्णन हुआ है। प्रथम चरित में उस काल का वर्णन है, जब 'सृष्टि' हुई ही नहीं थी, मात्र विष्णु और ब्रह्मा ही थे।…इसी प्रकार दूसरे चरित में समस्त देवताओं के तेज से भगवती का प्रादुर्भाव हुआ। उस काल में श्रीगणेश का जन्म तक नहीं हुआ था। यही बात तीसरे चरित के सम्बन्ध में भी समझनी चाहिए। अतः 'दुर्गा-पाठ' के अन्तर्गत भगवान् गणेश का नामोल्लेख न होना स्वाभाविक ही है। जहाँ तक उनके प्रथम पूज्य होने की बात है, वह सत्य है और 'दुर्गा-पाठ' प्रारम्भ करने के पूर्व जो पूजा-विधान निर्दिष्ट है, उसमें उनके अर्चन का निर्देश यथा-स्थान मिलता ही है। कृपया देखें 'विशुद्ध चण्डी', पृष्ठ १६।**

'बिहार शाक्त सम्मेलन' नवम्बर-समारोह के उपलक्ष्य में :

महा-शक्ति-स्वरूपा

महा-काली

डा० श्रीरञ्जन सूरिदेव, भिखना पहाड़ी, पटना (बिहार)–६

[१३ नवम्बर से २५ नवम्बर, १९९० तक गांधी मैदान में आयोजित होनेवाले **'पटना पुस्तक मेला'** में भारत के आध्यात्मिक इतिहास में पहली बार **'बिहार शाक्त-सम्मेलन'** भाग लेने जा रहा है। इस अवसर पर उसके सचिव 'कुल-रत्न' श्री विजय वत्स एवं संयुक्त सचिव 'कुल-रत्न' श्री वीरेन्द्र गिरि द्वारा प्रति-दिन विविध आध्यात्मिक गोष्ठियों की प्रस्तावना की गई है, जो इसी अङ्क में अन्यत्र प्रकाशित हैं। देश के मनीषी विद्वान् डा० श्रीरञ्जन सूरिदेव ने इसी अभूत-पूर्व अवसर के लिए प्रस्तुत शोधात्मक निबन्ध लिखने की कृपा की है। आशा है, समस्त अध्यात्म-प्रेमी पाठक इसे ध्यान से पढ़कर लाभान्वित होंगे।—सं०]

भारतीय साधना की परम्परा में देवी-स्वरूपा शक्ति की उपासना को सातिशय मूल्य दिया गया है। शक्ति-रूप में यह देवी समग्र सृष्टि में व्याप्त है : **'या देवी सर्व-भूतेषु शक्ति-रूपेण संस्थिता।'** बिना शक्ति के सृष्टि की कल्पना भी नहीं की जा सकती। शाक्तागम में उपासना के लिए शक्ति के अनेक नाम-रूपों और उनके विविध माहात्म्य का उल्लेख किया गया है, ताकि लोक-समुदाय अपनी-अपनी अवधारणा के अनुरूप शक्ति की आराधना कर सकें। समग्र लोक-कल्याण ही शक्ति की उपासना का प्रमुख लक्ष्य है। इसीलिए शक्ति को 'विश्वेश्वरी' एवं 'जगद्धात्री' के साथ ही 'महा-शक्ति' भी कहा गया है।

आसुरी भावना के विनाश के उद्देश्य से विभिन्न देवों के शरीर से जो विपुल-विराट् तेज निकला, वह एकत्र होकर नारी के रूप में परिणत हो गया और वही नारी संसार को दानवी बाधा से मुक्त करने के लिए कल्याण-मयी देवी के रूप में आविर्भूत हुई और महा - शक्ति या आत्म - शक्ति बनकर समस्त विश्व में प्रतिष्ठित हो गई। अतः संसार की सभी विद्याएँ और सभी स्त्रियाँ उसी महा - शक्ति के प्रति-रूप हैं :

विद्याः समस्तास्तव देवि! भेदाः, स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।

यही देवी सभी जीवों में विष्णु-माया, चेतना, बुद्धि, निद्रा, क्षुधा, छाया, शक्ति, तृष्णा, क्षान्ति, जाति (राष्ट्रीय पहचान), लज्जा, शान्ति, श्रद्धा, कान्ति, लक्ष्मी, वृत्ति, स्मृति, दया, तुष्टि, भ्रान्ति और माता के रूप में संस्थित है। इसी व्यापकता के कारण इस देवी को 'व्याप्ति' कहा गया है : **'व्याप्ति-देव्यै नमो नमः।'**

शाक्त-तन्त्र में अनेक-नाम - रूपात्मक महा - शक्ति के तीन रूपों को अधिक प्रमुखता प्राप्त है : १ महा-लक्ष्मी, २ महा-काली और ३ महा-सरस्वती। इन तीनों में भी 'महा - लक्ष्मी' ही सर्व - प्रमुख हैं क्योंकि इनसे ही 'महा-काली' और 'महा-सरस्वती' रूपायित हुई हैं।

'दुर्गा-सप्तशती' में 'महा-काली' की अवतारणा के विषय में कहा गया है कि परमेश्वरी महा-लक्ष्मी ने इस सम्पूर्ण जगत् को शून्य देखकर केवल तमोगुण - रूप उपाधि द्वारा एक अन्य उत्कृष्ट रूप धारण किया। वह रूप एक नारी की आकृति में प्रकट हुआ, जिसके शरीर की कान्ति निखरे हुए काजल की भाँति काले रङ्ग की थी। उसका श्रेष्ठ मुख दंष्ट्रा से सुशोभित था। उसके नेत्र बड़े - बड़े और कटि-भाग पतला था। उसके चार भुजाएँ थीं, जो ढाल, तलवार, पान-पात्र और कटे हुए मस्तक (मुण्ड) से सुशोभित थीं। वह वक्षः-स्थल पर कबन्ध (धड़ या रुण्ड) का हार और मस्तक पर मुण्डों की माला धारण किए हुए थी। इस प्रकार असाधारण अलौकिक नारी-स्वरूपा उस तामसी देवी ने महा-लक्ष्मी से कहा : "माता जी, आपको बार-बार प्रणाम है। मुझे मेरा नाम और कर्म बताइए।"

महा-लक्ष्मी ने उस तामसी देवी से कहा : "अरी तामसी ! महा-माया, महा-काली, महा-मारी, क्षुधा, तृषा (प्यास), निद्रा, तृष्णा (अमिट भोगेच्छा), एक - वीरा, काल - रात्रि और दुरत्यया--ये सब तुम्हारे कर्मों द्वारा लोक में चरितार्थ होंगे। इन नामों द्वारा तुम्हारे कर्मों को जानकर जो इनका पाठ करेगा, वह समस्त प्रकार के सुख-भोग की उपलब्धि में समर्थ होगा।"

महा-शक्ति-स्वरूपा 'महा-काली' ही शिव का प्रति-रूप बनीं। इसलिए, शिव और शक्ति को अभिन्न माना गया है :

शिवस्याभ्यन्तरे शक्तिः, शक्तेरभ्यन्तरे शिवः। अन्तरं नैव पश्यामि, चन्द्र-चन्द्रिकयोरिव ॥

अर्थात्, शिव के भीतर शक्ति और शक्ति के भीतर शिव प्रतिष्ठित हैं। जिस प्रकार चाँद और चाँदनी में कोई भेद नहीं होता, उसी प्रकार शिव और शक्ति में कोई भेद नहीं।

मूल-प्रकृति महा-लक्ष्मी से उत्पन्न 'महा-काली' संसार में प्रति-क्षण होनेवाली सृष्टि की अधि-स्वामिनी हैं और ये ही सृष्टि के पालन और संहार की भी एकाधिकारिणी हैं। संहार-कर्त्री होने के कारण ही उनके 'काली' नाम की सार्थकता है : '**कलयति भक्षयति प्रलय-काले सर्वम् इति काली।**' जो प्रलय-काल में सम्पूर्ण सृष्टि को अपना ग्रास बना लेती हैं, वे ही जब कल्याण-कर्त्री हो जाती हैं, तब 'भद्र-काली' कहलाती हैं : '**भद्रं मङ्गलं सुखं वा कलयति स्वीकरोति भक्तेभ्यो दातुम् इति भद्र-काली।**' जो अपने भक्तों को देने के लिए भद्र या सुख या मङ्गल स्वीकार करती हैं, वे 'भद्र-काली' हैं। भगवान् रुद्र महा-काली के सङ्केत पर ही संहार का कार्य करते हैं। यहाँ तक कि महा - शक्ति - स्वरूपा 'महा-काली' के बिना शिव शव-वत् हो जाते हैं। इकारात्मक शक्ति के संयोग से ही शव की 'शिव' के रूप में प्रतिष्ठा होती है।

'दुर्गा-सप्तशती' के प्रथम चरित में 'महा-काली' को दस भुजाओं और दस पैरोंवाली कहा गया है। नीले पत्थर के समान कान्तिवाली ये तमो-गुण-मयी 'महा-काली' भगवान् विष्णु की योग - निद्रा के रूप में प्रतिष्ठित हैं। मधु और कैटभ नाम के राक्षसों के विनाश के लिए ब्रह्मा ने जिनकी स्तुति की थी, उनका ही नाम 'महा-काली' है। उनकी यथोक्त दस भुजाओं और दस पैरों के अतिरिक्त उनके दस मुख हैं। वे काजल के समान काली और बीस नेत्रों की विशाल पंक्ति से सुशोभित हैं। उनकी दन्त-पंक्ति और दंष्ट्राएँ (दाढ़) चमकती रहती हैं। यद्यपि उनका रूप भयङ्कर है, तथापि वे रूप, सौभाग्य, कान्ति एवं महती सम्पदा प्रदान करनेवाली हैं। वे अपने दसों हाथों में खड्ग, बाण, गदा, शूल, चक्र, शङ्ख, भुशुण्डि (एक क्षेप्यास्त्र), परिघ (मूसल) तथा कटा हुआ मस्तक (मुण्ड), जिससे रक्त चूता रहता है, धारण करती हैं।

ये 'महा-काली' भगवान् की दुस्तर माया हैं। आराधना करने पर ये समस्त चराचर जगत् को अपने आराधक के अधीन कर देती हैं। 'महा-काली' ही शर्वा, चण्डिका, दुर्गा, भद्रा, भगवती आदि अनेक नामों से जानी जाती हैं। 'महा-काली' से ही शङ्कर और सरस्वती का प्रादुर्भाव हुआ है। दश - मुखी काली के पूजन से सभी प्रकार के अरिष्ट (विघ्न-बाधा) शान्त हो जाते हैं। काल की अधि-स्वामिनी या अधिष्ठात्री होने के कारण ये मृत्यु को भी रोक सकती हैं।

श्रुति-परम्परा के अनुसार 'महा - काली' की जीभ निकली हुई मुद्रा के बारे में कहा जाता है कि असुर-संहार में निरत 'महा-काली' का क्रोध इतना अधिक बढ़ गया कि असुर-संहार के बाद वे विश्व-संहार के लिए उद्यत हो गईं। ऐसी स्थिति में सभी देवता काली को मनाने के लिए शिवजी की प्रार्थना करने लगे। शिवजी देवों के अनुरोध पर क्रोधोन्मत्ता काली के आगे भूमि पर चित लेट गए। काली का उठा हुआ पग शिवजी की छाती पर पड़ा। पति पर पैर पड़ने का ख्याल आते ही लज्जा और सङ्कोच-वश काली की जीभ सहज ही बाहर निकल आई और वे सहसा शान्त हो गईं।

किन्तु, 'श्मशान-काली' के वर्णन में उन्हें शव पर आरूढ़ बताया गया है। शाक्त-परम्परा में 'श्मशान-काली' का भी विधि-वत् पूजन किया जाता है। उनका ध्यान इस प्रकार है :

शवारूढां महा-भीमां घोर-दंष्ट्रा वर-प्रदाम्। हास्य-युक्तां त्रिनेत्रां च कपाल - कर्त्रिका - कराम्॥
मुक्त - केशीं ललज्जिह्वां पिबन्तीं रुधिरं मुहुः। चतुर्बाहु - युतां देवीं वराभय-करां स्मरेत्॥

अर्थात् जो देवी शव पर आरूढ़, अतिशय विशाल और भयङ्कर दाढ़ों तथा तीन आँखोंवाली हैं, जो हाथ में कर्त्री (कैंची) और कपाल लिए हुई हैं, जिनके केश खुले-बिखरे हुए हैं, जिनकी जीभ लप-लपा रही है और बार-बार रक्त-पान कर रही हैं, मनोरथ-सिद्धि और अभय-दान देनेवाली उन चतुर्भुजा 'श्मशान-काली' का मैं ध्यान करता हूँ।

तन्त्रोक्त परम्परा में दस महा-विद्याओं के अन्तर्गत प्रथमा या आद्या महा-विद्या के स्थान पर भगवती काली का प्रमुख रूप 'दक्षिणा काली' का माना गया है और उन्हीं के मन्त्र की साधना करनेवाले शाक्त साधक कदाचित् देश में सर्वाधिक संख्या में पाए जाते हैं। महा - काली, भद्र-काली एवं श्मशान-काली के अतिरिक्त इन आद्या महा-विद्या के अन्य स्वरूपों के शुभ नाम हैं—गुह्य - काली, काम - कला-काली, सिद्धि-काली, श्यामा, कङ्काली-काली, कामाख्या-काली, रक्षा-काली, निशा-काली इत्यादि। इन सबके अलग-अलग मन्त्र, ऋष्यादि, ध्यान, स्तोत्रादि हैं, जिनसे भगवती महा-काली के विराट् स्वरूप की किञ्चित् झलक जिज्ञासु को मिल सकती है। **(देखें 'मन्त्र-कोष', 'श्रीकाली-स्तव-मञ्जरी' आदि)।**

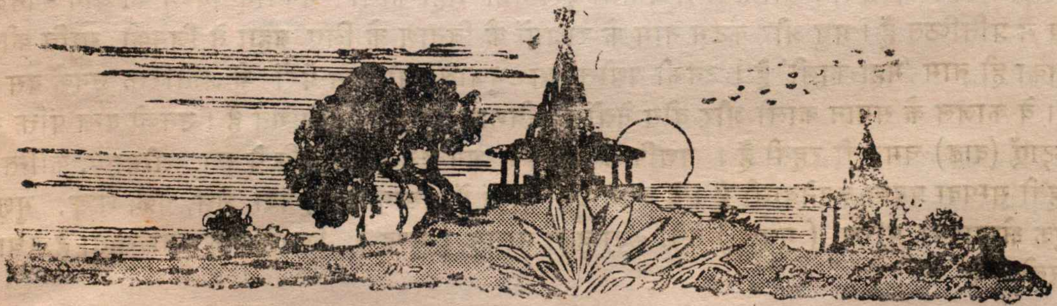

सप्तशती-सार-स्तोत्रम्

धर्म-प्राण सभी आस्तिक वर्ग इस बात को भली-भाँति जानते हैं कि सृष्टि की कारण-स्वरूपा महा-माया पराम्बा जगदम्बा ही हैं। उन्हीं के इच्छा-विलास से समस्त चराचर व्यापार समुल्लसित हो उन्हीं में लीन हो जाता है। सृष्टि, स्थिति और संहार–इन हेतु-त्रयों का प्रतिपादन करने के लिए 'महा-सरस्वती', 'महा-लक्ष्मी' और 'महा-काली'–उन्हीं पराम्बा जगदम्बा के रूप-त्रय समस्त निगमागम द्वारा प्रतिपाद्य हैं। उस महा-माया की आराधना करने से व्यक्ति ऐहलौकिक एवं पारमार्थिक सर्व-साधनों को सुगम-रूपेण प्राप्त कर लेता है, यह निर्भ्रान्त निश्चय बात है।

भारत-वर्ष में चिर-काल से मार्कण्डेय–महा-पुराणान्तर्गत 'सप्तशती-स्तव-राज' आस्तिक लोगों का कण्ठ-हार रहा है। अगणित भक्त-जनों ने इससे भुक्ति-मुक्ति की उपलब्धि की है। प्रकृत 'स्तव-राज' सात सौ श्लोकों में विभक्त है और चरित-त्रयों में 'महा-काली', 'महा-लक्ष्मी', 'महा-सरस्वती' के स्वरूप-प्रादुर्भाव एवं दैत्य-विध्वंसनादि का प्राञ्जल भाषा में सविस्तार वर्णन किया गया है, किन्तु कार्याधिक्य एवं समयाभाव से उस समस्त 'स्तव-राज' का पाठ प्रतिदिन करना सर्व-साधारण के लिए सुगम नहीं है। अतः 'सप्तशती-सार-स्तोत्रम्' नामक लघु-स्तव का प्रणयन किया गया है, जिसमें एक ही श्लोक में पूरे चरित की कथा क्रमानुसार आ जाती है। उदाहरणार्थ तृतीय चरित, जो सबसे बड़ा है, उसमें पहले धूम्र-लोचन, फिर चण्ड-मुण्ड, तदनन्तर रक्त-बीज और निशुम्भ-शुम्भ का बध हुआ है, तो उस चरित के श्लोक में दैत्यों के नाम भी धूम्र-लोचनादि के क्रम से ही आए हैं।

उक्त विशेषता के कारण 'सप्तशती-सार-स्तोत्र' को एक बार पूरा पढ़ने से पूरी 'सप्तशती' के पाठ का रसास्वादन हो जाता है। विज्ञ आस्तिक-वर्ग इस स्तोत्र का नित्य पाठ कर, जिसमें पाँच मिनट भी नहीं लगते, प्रतिदिन पूरी-की-पूरी 'सप्तशती' के सार को हृदयङ्गम कर पराम्बा जगदम्बा के चरणारविन्दों में अधिकाधिक भक्ति से अपने जीवन को ज्योतिर्मय बनाने का प्रयास अवश्य करेंगे।

इस 'सप्तशती-सार-स्तोत्र' के रचयिता ने अपना नाम गुप्त रखते हुए इसकी रचना का काल सम्वत् २०१० अर्थात् सन् १९५३ बताया है। यथा–

नित्यात्मिका भगवती जगदम्बिकायाः, पादारविन्द - मकरन्द-मिलिन्द-चेता।
श्रीषः सिते शर-तिथौ नक-नार-वर्षे, रम्यं चकार शिवजः स्तवनं रसेन्द्रः॥

अर्थात्—नित्य-स्वरूपा उन्हीं भगवती पराम्बा जगदम्बा के चरण-रूप-कमल के पराग हेतु भ्रमर की भाँति लालायित चित्तवाले 'शिव' के अंश से समुद्भूत एवं रस के अधिष्ठान-रूप किसी संज्ञा-मय शरीर-धारी द्वारा विक्रम सम्वत् २०१० की आश्विन शुक्ला पञ्चमी तिथि में इस सुन्दर स्तवन का प्रणयन किया गया।

'सप्तशती-सार-स्तोत्रम्' के प्रथम तीन श्लोकों में 'श्रीदुर्गा-सप्तशती' के प्रथम तीन चरितों के सारांश क्रमशः दिए हैं। अन्तिम चौथे श्लोक में 'सप्तशती' की तीनों महा-देवियों की वन्दना है। यथा––

[१]

बोधाय निद्रित-हरेरुदधौ स्वयं या, प्रादुर्बभूव मधु-कैटभ-नाशनाय ।।
संरक्षणाय नितरां चतुराननस्य, सा कालिका विजयतां प्रथम - स्वरूपा ।।

जिन जगदम्बा ने निद्रा में सोए हुए विष्णु को जगाने के लिए प्रथम चरित में 'महा-काली'-स्वरूप अवतार धारण किया, उन जगज्जननी पराम्बा जगदम्बा की जय हो।

[२]

देवर्षि-वृन्द-तपसां स्फुरित-प्रभोत्था, याऽऽविर्बभूव महिषासुर - मर्दनाय ।
सम्पोषणाय जगतो जगति प्रशस्ता, सा 'श्रीः' सदा विजयतां चरितेऽऽद्वितीया ।।

जो देवताओं, ऋषियों आदि के ज्योति-समूह में से प्रकट हुई और महिषासुर नामक महा-दैत्य का जिन्होंने मर्दन किया तथा सबकी पोषक-रूप में ही संसार में प्रसिद्धि प्राप्त करनेवाली, अपने चरित में अद्वितीय और द्वितीय चरित की अधिष्ठात्री उन 'श्री' (महा-लक्ष्मी) स्वरूपा पराम्बा जगदम्बा की जय हो ।

[३]

देवैः स्तुता दनुज-धूम्र-चण्ड-मुण्डान्, तं रक्त-बीजमथ दृप्त-निशुम्भ-शुम्भौ ।
प्रादुर्बभूव दलितुं सुर-पोषि-शीला, सा 'शारदा' विजयताममला तृतीया ।।

देवताओं द्वारा पूजी गई तथा क्रमशः धूम्र-लोचन, चण्ड-मुण्ड, रक्त-बीज, निशुम्भ और शुम्भ नामक दैत्यों का ध्वंस करनेवाली, देवताओं का सदैव हित सोचनेवाली, तृतीय चरित की अधिष्ठात्री 'शारदा' (महा-सरस्वती)-रूपा पराम्बा जगदम्बा की जय हो ।

[४]

या 'कालिके'ति कथिता कलनाज्जनस्य, सम्पोषणाज्जगति या गदिता सदा 'श्रीः' ।
या सर्जनात् सदसतां च 'सरस्वती' सा, शक्तिः परा भगवती भविकाय भूयात् ।।

जो संसार का संहार करने के कारण 'महा-काली'-रूप से प्रथम चरित में प्रसिद्ध और विश्व का पोषण करने के कारण 'महा-लक्ष्मी'-स्वरूप से द्वितीय चरित में प्राख्यापित एवं सबकी भले-बुरे की सृष्टि करने के कारण 'महा-सरस्वती'-रूप से तृतीय चरित में प्रसिद्ध हैं, ऐसी तीनों चरितों एवं रूप-मयी पराम्बा जगदम्बा सबके लिए सदैव कल्याण-सम्पादन करती रहें ।

आपदुद्धारक-बटुक-भैरव-स्तोत्र-घटित

चण्डी-विधानम्

सम्पूर्ण कामनाओं की यथा-शीघ्र सिद्धि के लिए मैथिलों द्वारा कही हुई

चण्डी-पाठ-घटित

आपदुद्धारक-बटुक-स्तोत्र के पाठ की विधि

आचमन, प्राणायाम, सङ्कल्प (देश-काल-निर्देश) के उपरान्त—

'अमुक-प्रवरान्वित अमुक-गोत्रोत्पन्नामुक - शर्मणः अमुक-वेदान्तर्गत अमुक-शाखाध्यायी मम (यजमानस्य) शीघ्रं अमुक-दुस्तर-सङ्कट-निवृत्त्यर्थं सप्तशती-माला-मन्त्रस्य क्रमेण प्रथमादि-त्रयोदशाध्यायान्ते क्रियमाण आपदुद्धारक-बटुक-भैरवाष्टोत्तर-शत-नाम-मात्रावर्तन-घटित-अमुक-संख्यकावर्तनमहं करिष्ये।'

इस प्रकार सङ्कल्प में योजना करे। इसके बाद पहले विघ्नों के निवारण के लिए विघ्नेश, स्वामि-कार्तिक, क्षेत्रपाल, दुर्गा, बटुकाद्यष्ट-भैरव, गौर्यादि षोडश मातृकाओं, ब्राह्मयादि सप्त माताओं की पूजा कर उन्हें बलि प्रदान करे। तब 'आपदुद्धारक-बटुक-भैरव-स्तोत्र' से युक्त 'सप्तशती' का पाठ करे।

पाठ के बाद होम, मार्जन, तर्पणादि करे। जो कर्म न हो सके, उसके लिए द्वि-गुणित जप करने से उस कर्म की पूर्ति हो जाती है।

आपदुद्धारणे प्रोक्तं, शिवेन परमात्मना।
अस्य पाठाद्विमुच्येत, दुस्तरात् सङ्कटात् पुमान्॥
अस्य पाठाद्विमुच्येत, सङ्कटात् महतः पुमान्।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं, त्रिरहं प्रवदामि ते॥

अर्थात्—आपत्ति के निवारण में परमात्मा शिव ने कहा है—इस स्तोत्र का पाठ करने से मनुष्य दुस्तर सङ्कटों से पार हो जाता है। इसके पाठ करने से वह बड़े-बड़े सङ्कटों से मुक्त हो जाता है। सत्य है, सत्य है, सत्य है—यह मैं तीन बार कहता हूँ।

'आपदुद्धारक बटुक स्तोत्र' के सप्तशती-पाठ में युक्त करने की चार विधियाँ मैथिल-क्रम द्वारा अनुभूत हैं। यथा—

मैथिलस्य मतेनायं, प्रकाशे वांछिताप्तये ।
पठेत् पूर्वमेक - वारमापदुद्धारकं स्तवम् ।।
ततः शक्रादि-स्तुत्यन्तां, पठेच्चण्डीं च साधकः ।
आपदुद्धारक-स्तोत्रं, पठेद् वै साधकस्ततः ।।
उर्वरीतान् नवाध्यायान्, पठेद् वै साधकस्ततः ।
आपदुद्धारक-स्तोत्रं च, पुनस्तु प्रपठेत् सुधीः ।।
प्राप्नोति तेन सकलान्, कामान् वै साधकोत्तमः ।।१
प्रथमान्ते मध्यमान्ते, उत्तरान्ते च साधकः ।
एकैकावर्तनं कुर्यात्, स्तव-राजस्य साधकः ।
सकलान् मानसान् तेन, कामानाप्नोति निश्चितं ।।२
अध्यायान्ते पठेत् स्तोत्रं, महदापन्निवृत्तये ।।३
उवाच मन्त्रा यावन्तः, सप्त-पञ्चा वसन्ति हि ।
तत्-तदन्तं पठेत् स्तोत्रं, महदापन्निवृत्तये ।
मैथिलानामुपायोऽयमापदुद्धारणे मतः ।।४

'यामल' में कहा है कि श्रेष्ठ साधकों के लिए मैथिलों के मत की यह पाठ-विधि वांछनीय है ।

१ पहले एक बार 'आपदुद्धारक-बटुक-स्तोत्र' तक पाठ करे । इसके बाद शक्रादि स्तुति तक अर्थात् 'श्रीदुर्गासप्तशती' के प्रथम से चतुर्थ अध्याय तक पाठ करे । तब 'आपदुद्धारक बटुक-भैरव-स्तोत्र' का फिर पाठ करे । इसके बाद 'श्रीदुर्गा-सप्तशती' के शेष नौ अध्यायों का पाठ कर फिर 'आपदुद्धारक-बटुक-स्तोत्र' का पाठ करे । इस प्रकार पाठ करने से सभी कामनाओं की पूर्ति होती है ।

२ सप्तशती के प्रथम चरित के अन्त में, मध्यम चरित के अन्त में और उत्तम चरित के अन्त में 'आपदुद्धारक-बटुक स्तोत्र' का एक-एक बार पाठ करे । ऐसा करने से सभी मानसिक कामनाएँ पूर्ण होती हैं, यह निश्चित है ।

३ सप्तशती के प्रत्येक अध्याय के अन्त में 'आपदुद्धारक-बटुक-स्तोत्र' का पाठ महा-आपत्ति की निवृत्ति के लिए करे ।

४ सप्तशती (चण्डी) में 'उवाच'—मन्त्र सत्तावन हैं । प्रत्येक 'उवाच'—मन्त्र के अन्त में 'आपदुद्धारक-बटुक-स्तोत्र' का पाठ महान् आपत्ति के निवारण के लिए करे ।

आपद् के निवारण के लिए मैथिलों के मत में ये उपाय हैं । इस प्रकार चार विधियों में से किसी भी प्रकार सप्तशती (चण्डी) का पाठ करने से कैसा भी दुस्तर सङ्कट निवृत्त होता है तथा इच्छित फल भी प्राप्त होता है ।

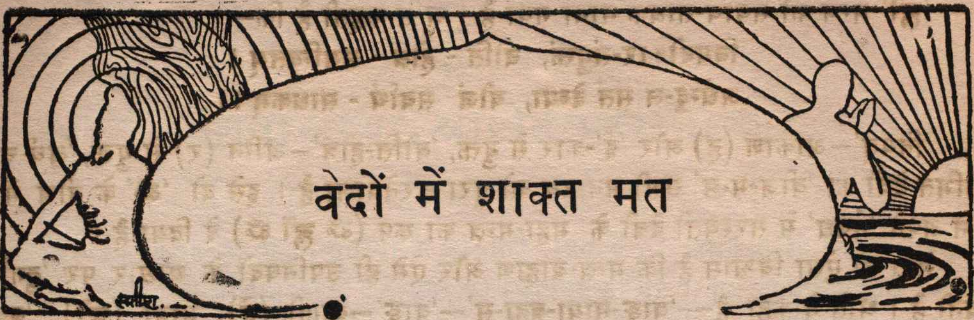

वेदों में शाक्त मत

'तन्त्र-शास्त्री' पण्डित अनन्तदेव जोशी साबरकांठा (गुजरात)

वेदान्त (ब्रह्म-सूत्र) के **'शक्तेरसम्भवात्'** सूत्र पर दृष्टि जाती है, तो विश्वास होता है कि अन्यों के समान शक्ति से भी संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय माननेवाला आर्ष-मत विद्यमान था।

अतः मातृ-वत् कल्याण-कारिणी श्रुति अभ्युदय-प्रद कर्म-काण्ड के साथ-ही-साथ निःश्रेयस-प्रद मोक्ष-मार्ग का भी उपदेश करती है। उपनिषदों में उसी मार्ग को **'श्रेयः'** कहा गया है। विवेकी पुरुष को **'प्रेयः'** को छोड़कर **'श्रेयः'** का आश्रय लेना चाहिए—यह भी श्रुति का ही उपदेश है (कठोपनिषद्, ३-२-२)। उसी से त्रिविध दुःखों का नाश होता है।

इस मत के लोग प्रायः अथर्व-वेदी थे। एक सौ बारह उपनिषदों में शाक्तों के अनेक उपनिषद् हैं। ऐसा ही एक **'देवी उपनिषद्'** है। सब देवताओं ने मिलकर भगवती से पूछा कि "हे जगज्जननि, जगदम्बिके ! आप कौन हैं ?" इस प्रश्न के उत्तर में राज-राजेश्वरी ने कहा कि—"मैं ब्रह्म-स्वरूपिणी हूँ, प्रकृति- पुरुषात्मिका, मैं आनन्द और अनानन्द-रूप हूँ—विज्ञान और अविज्ञान-रूपा हूँ। सम्पूर्ण संसार-रूपा मैं ही हूँ।"

भगवती के श्रीमुख से वेद की ऋचाएँ भी देवताओं के सामने प्रकट हुईं। वे ऋचाएँ, जिन्हें भगवती ने देवताओं को सुनाकर अपना रूप समझाया था, उनका अनुसन्धान अम्भृणा महर्षि की वाग् नामक पुत्री ने अपनी समाधि-अवस्था में देखकर किया था।

अथर्व-वेद के चौथे काण्ड के छठे अनुवाक के तीसवें सूक्त-**'ॐ अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चरामि'** से लेकर **'एतावती महिम्ना सम्बभूव'** तक में उक्त ऋचाएँ सन्निहित हैं। अंजामिल तन्त्र में ऐसा माना है कि इस सूक्त के वैध अनुष्ठान से भगवती का साक्षात्कार होता है। इसी सूक्त को मैं 'देवी-उपनिषद्' मानता हूँ। कुछ आधुनिक विद्वानों (पल डायसन, विन् तारनित्स आदि) का कहना है कि वेद केवल अभ्युदय - पूरक कर्म-मार्ग का उपदेश देता है और उपनिषद् आदि वेदान्त-शास्त्रों में उपदिष्ट मोक्ष-मार्ग वेद - विरोधियों का दर्शन है। ऐसा कहना नासमझी का ही फल है। वास्तव में 'अभ्युदय' और 'मोक्ष'—उभय - मार्ग श्रुति-मूलक ही हैं।

मार्ग - भेद का कारण है—अधिकारी-भेद। एक ही भोजन सभी के लिए हित - कर नहीं हो सकता, इसलिए स्नेह-मयी माँ अपने बच्चों के लिए अलग - अलग भोजन बना देती है। जननी - कन्या श्रुति - उपनिषद् भी व्यक्तियों के अनुसार भिन्न-भिन्न अधिकार समझकर उनके लिए भिन्न - भिन्न मार्ग बतलाती हैं। इसी सिद्धान्त का उदाहरण 'ईशावास्योपनिषद्' के प्रथम और द्वितीय मन्त्र में मिलता है।

'तामग्नि वर्णां तपसा ज्वलन्तीम्'—मन्त्र भी मुझे 'देवी-उपनिषद्' में मिलता है और **'नमो देव्यै महा-देव्यै'** मन्त्र भी उसमें विद्यमान है। इसे मैंने 'व्रत-राज' में महर्षि सौरभि द्वारा द्रष्ट मन्त्र के रूप में पाया है। वहाँ इससे भगवती का पूजन होता है।

'ह्रीं' मन्त्र को सर्वार्थ-साधक माना गया है। श्रुति कहती है कि—

वियदीकार-संयुक्तं, वीति - होत्र - समन्वितम्।
अर्धेन्दु-ल सितं देव्या, वीजं सर्वार्थ - साधकम्॥

'वियत्'—आकाश (ह) और 'ई'-कार से युक्त, 'वीति-होत्र'—अग्नि (र) से युक्त, 'अर्ध-चन्द्र' (ँ) से सुशोभित देवी का 'वीज-मन्त्र' सभी मनोरथ को पूरा करनेवाला है। इसे दो 'ॐ' के बीच में रखकर श्रीहर्ष ने अपने 'नैषध' में सरस्वती देवी के महा-मन्त्र का रूप (ॐ **ह्रीं** ॐ) दे दिया है।

मेरा तो ऐसा विश्वास है कि मन्त्र-ब्राह्मण और ऐसे ही उपनिषदों के आधार पर 'दुर्गा - सप्तशती' बनी है। श्रुति ने कहा है—**'वाङ्-माया-ब्रह्म-सू'**—'वाङ्'—वाणी (**ऐं**), 'माया' (**ह्रीं**), 'ब्रह्म सू'—काम (**क्लीं**)। इसके आगे छठा व्यञ्जन **'च'**, वहीं 'बका' अर्थात् आकार से युक्त **'चा'**, सूर्य **'म'**—**'अ-वाम-श्रोमा'**—'अ-वाम'—दक्षिण - वर्ण **'उ'** तथा बिन्दु अर्थात् अनुस्वार से युक्त (**मुं**), टकार से तीसरा **'ड'**—'नारायण' अर्थात् 'आ' से युक्त (**डा**), वायु **'य'**,—'अधर' अर्थात् 'ऐ' से युक्त (**यै**) और (**विच्चे**)—यह नवार्ण-मन्त्र बड़े भारी आनन्द का दाता है।

दुर्गा-पाठियों के लिए उक्त नवार्ण-मन्त्र असाधारण वस्तु है। भगवती की उपासना की कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है, जिसका मूल वेदादि महा-ग्रन्थों में न हो।

कहीं भी क्यों न कहा हो, जब वेद में भी आभिचारिक कर्म का प्रकरण हो, तो वहाँ एक प्रकार 'तन्त्र' ही आ जाता है। अथर्व-वेद के गृह्य और श्रौत सूत्रों से उनका रूप स्पष्ट हो जाता है। वेद में भी कामना-पूर्ति के सभी उपाय विशुद्ध नहीं हैं, केवल भावनात्मक शुद्धि से निर्वाह किया जाता है।

तभी तो अथर्व-वेद में कहा है—**'मुग्धा देवा उत शुना यजन्त, उत गोरङ्गैः पुरुधा यजन्तः।'**

कर्म-फल की लालसा से विवेक-शून्य बने ऋत्विज और यजमान यज्ञ में कुत्ते तक का उपयोग किए बिना नहीं मानते। विश्व-वन्द्या गाय के अङ्गों से तो वे अनेक प्रकार के यजन करते हैं। इससे प्रतीत होता है कि वेद ऐसे यजनों को विशुद्ध नहीं मानता, पर वे विशुद्ध होते हैं, इस बात को वह अस्वीकार भी नहीं करता।

ऊपर की बातों से सिद्ध होता है कि—तन्त्र-शास्त्र का मूल भी श्रुति है। जो तन्त्र को अवैदिक मानकर वैदिक कर्म-कलाप को कलि-युग में निस्सत्त्व मानते हैं, वे एक-देशीय तान्त्रिक हैं, सर्व-देशीय नहीं हैं। हमें 'तन्त्र' में भी अपनी सभ्यता के मूल-भूत 'वेद' को सामने रखना चाहिए।

'चण्डी' पत्रिका साक्षात् भगवती माँ का स्वरूप है। भगवती माँ से यही प्रार्थना है कि उसे और उससे सम्बन्धित प्रकाशनों को और भी उपयोगी बनाकर अपने पुत्रों के लिए अपने से मिलने के मार्ग को सुलभ बनाए।···'जय माँ भगवती!'

सीहोर (म० प्र०) का

शिवाराध्या श्रीपीताम्बरा-धाम

पं० शारदाप्रसाद दीक्षित, सीहोर (म० प्र०)

१२ मई, १९८९ को अक्षय-तृतीया के शुभ पर्व - दिन में मां आदि-शक्ति (महा - काली, महा-सरस्वती, महा-लक्ष्मी) की प्राण-प्रतिष्ठा एवं मूर्ति की स्थापना की गई। यह रमणीक स्थल सोवन नदी के तट पर स्थित है। भोपाल से इन्दौर मार्ग पर सीहोर ३९ कि० मी० दूर स्थित है। बस में बैठे हुए श्रीभगवती के दर्शन करने का आनन्द प्राप्त होता है। प्राचीन काल से इस क्षेत्र में सिद्ध तान्त्रिक, ज्योतिषियों की प्रमुखता रही है। 'सीहोर' का प्राचीन नाम "सिद्ध-पुर" है। इसी से स्पष्ट है कि यहाँ अनेक सन्त, सिद्ध महात्मा रहते हैं एवं साधना और तपस्या में लीन रहते हैं।

इसी स्थल के निकट खुदाई में शिव-पार्वती-युग्म (शिव की जाँघ पर बैठी हुई पार्वती) और विष्णु-लक्ष्मी की मूर्ति (विष्णु की बाँईं जाँघ पर बैठी हुई लक्ष्मी) प्राप्त हुई हैं, जो अत्यन्त मनोहारी एवं उत्कृष्ट शिल्प-कला की द्योतक हैं। इस क्षेत्र में वट-वृक्ष फैले हुए हैं और अनेक आम्र - कुञ्ज हैं। चारों दिशाओं में चार पीठों की स्थापना रही होगी, ऐसा प्रतीत होता है क्योंकि पश्चिम-दिशा में भौरा में शक्ति-पीठ पर निरन्तर दीपक जलता रहता है और पूर्व में सल्कनपुर के घने जङ्गल में तीन पहाड़ पर भगवती विन्ध्य-वासिनी का मन्दिर स्थित है। इसी प्रकार अन्य दिशाओं में भी निश्चित शक्ति - पीठ हैं। काले पहाड़ पर 'गुप्त-काली मन्दिर' है। पश्चिम में 'सिद्ध-विनायक' गणेश हैं।

श्रीराम दद्दा धूनीवाले का स्थल आज भी जागृत 'बजरङ्ग-अखाड़ा' है, जहाँ एक युवा ने धूनी रमा कर स्थल को जाग्रत करने का शुभारम्भ किया है। यहाँ कोई टिक नहीं पाता था। यहाँ के बाबा गोमतीदास जी, बाबा गम्पी अक्कड़ बम औघड़ विख्यात रहे और उनके चमत्कारों की अनेक कथाएँ आज भी प्रसिद्ध हैं। पटवारी बाबा आज भी पूजे जाते हैं, जिनकी समाधि गढ़ कालिका के पीछे बनी है। अनेक अवधूत सिद्धों ने यहाँ तपस्या की है। वह भूमि चर्च द्वारा दान दी गई। भूमि-पूजन कर मन्दिर-निर्माण-कार्य प्रारम्भ किया गया।

मां आदि-शक्ति की भव्य एवं दिव्य प्रतिमा की प्राण-प्रतिष्ठा का निर्णय श्री शान्ति मुनि जी परिव्राजकाचार्य एवं अनेक सन्त-महात्माओं द्वारा प्रयाग कुम्भ में हुआ। धर्मोनारायण चौबे तान्त्रिक, योगीराज दीनदयाल दास जी एवं डेढ़ सौ सन्त-महात्माओं की उपस्थिति में अपार जन - समूह के समक्ष 'श्रीयन्त्र' पर भगवती की प्राण-प्रतिष्ठा विधि-विधान से की गई। नीचे भगवान् शिव के नर्मदेश्वर शिव-लिङ्ग की स्थापना की गई। साधना-कक्ष भी है। ऊपर भगवती का मनोहारी मन्दिर है।

'कृष्ण-काली आश्रम' के संस्थापक श्री देवेन्द्र पाठक का सहयोग सराहनीय रहा। श्री रविकान्त चतुर्वेदी इस संस्था के अध्यक्ष हैं, जो बड़े सेवा-भावी और मां भगवती के गुप्त साधक हैं। तान्त्रिक पद्धति से वे निरन्तर साधना में रत रहते हैं। सेवा-भाव से वे हर स्थल पर उपस्थित रहते हैं। श्री रमेश तिवारी निरन्तर मां बगला मुखी एवं सन्तोषी माता की उपासना से प्रारम्भ कर आगे की साधना में रत हैं। श्री दिसोरिया गुप्त साधक एवं अनुभूति सँजोए हुए भक्ति-मार्ग से साधना में लगे हैं। श्री लक्ष्मीनारायण साहू एवं श्री नरेन्द्र शर्मा को साधना में अनेक अनुभव मिल चुके हैं। अनेक युवक और किशोर भी जप और हवनादि में रुचि लेकर इस मन्दिर के विकास में सहयोग कर रहे हैं।

दीपावली पर साधना-कक्ष में मां तारा की स्थापना का निर्णय लिया गया। इसके लिए पर्याप्त समय तक श्मशान के पास मन्दिर में सर्वश्री रविकान्त चतुर्वेदी, शारदाप्रसाद दीक्षित, रमेश तिवारी एवं साथी साधना-रत रहे और मन्दिर-निर्माण का सङ्कल्प किया गया।

अनेक श्रद्धालु-जनों ने इस मन्दिर के निर्माण में तन-मन-धन से सहयोग दिया। यह दिव्य मन्दिर भविष्य में दिव्य-शक्ति का केन्द्र सिद्ध होगा, ऐसा विश्वास है। नदी-तट पर इस पार पूर्व में 'श्रीदुर्गा-मन्दिर' और पश्चिम में 'श्रीगायत्री-मन्दिर' है। उस पार शिवाराध्या 'श्रीपीताम्बरा-धाम' की स्थापना श्रीयन्त्र की वेदी पर है। यह त्रिकोणात्मक मन्दिर वैसे ही शक्ति का केन्द्र है। जो त्रिकोण के रहस्य को जानता है, वह शक्ति से भी परिचित होगा।

'कौल-कल्पतरु' चण्डी

पुरानी दुर्लभ फाइलें

'चण्डी' वर्ष ३६ [१६८०-८१] ४५-००
हिन्दी कुलार्णव तन्त्र' और गो-तन्त्र विशेषाङ्क सहित

'चण्डी' वर्ष ४० [१६८१-८२] ४५-००
शाक्त-धर्म-विशेषाङ्क सहित

'चण्डी' वर्ष ४१ [१६८२-८३] ४५-००
हिन्दी - महानिर्वाण तन्त्र' एवं 'श्रीकमला-कल्पतरु' विशेषाङ्क सहित

'चण्डी' वर्ष ४२-४४ [१६८३-८६] ८०-००
'स्वर-विज्ञान' विशेषाङ्क सहित

'चण्डी' वर्ष ४५ [१६८६-८७] ३०-००

'चण्डी' वर्ष ४६ [१६८७-८८] ४५-००
'पूजा-रहस्य', श्रीभुवनेश्वरी-स्तव-मञ्जरी विशेषाङ्क सहित

'चण्डी' वर्ष ४७ [१६८८-८६] ५५-००

'चण्डी' वर्ष ४८ [१६८६-६०] ५५-००

सभी फाइलों के मिलने का प्राप्ति-स्थान

चण्डी कार्यालय, अलोपीबाग, प्रयाग-६

'चण्डी' के प्रति

सम्मति

*

"...स्वाती के बूंद से जैसे पपीहे की प्यास बुझती है, वैसे ही 'चण्डी'-शब्दामृत से माँ-पुत्रों की प्यास शान्त होती है। 'राष्ट्र-गुरु' स्वामी जी ने क्या ही सुन्दर नाम—'परा वाणी प्रेस' दिया। वस्तुतः 'चण्डी' की वाणी साधकों- जिज्ञासुओं के लिए परावाणी से कम मूल्याङ्कन नहीं रखती...।"

डा० उमाकान्त पाण्डेय,
जबलपुर (म० प्र०)

उपर्युक्त फाइलें बहुत कम संख्या में प्राप्त हैं, अपनी प्रति शीघ्र मँगाकर संग्रहीत कर लें।

सनातनी दीक्षा-क्रम

['दीक्षा-प्रकाश' लेख-माला के पिछले पृष्ठों में 'दीक्षा' का अर्थ, 'दीक्षा' के विविध भेद, 'दीक्षा' की आवश्यकता, 'दीक्षा'-रहस्य, 'दीक्षा' का लक्ष्य, 'दीक्षा' की विधि आदि विषयों पर विस्तार से चर्चा करने के बाद 'क्रम-दीक्षा' की आवश्यकता, 'क्रम-दीक्षा' के भेद का वर्णन विधि-सहित हुआ है। अब यहाँ विद्वान् लेखक एवं परम्परा-प्राप्त साधक श्री धन शम्शेर जङ्ग बहादुर राणा का 'सनातनी दीक्षा का क्रम' निबन्ध प्रकाशित किया जा रहा है। इस विस्तृत निबन्ध द्वारा 'दीक्षा' के विविध क्रमों का विस्तार से परिचय प्राप्त हो सकेगा, इसमें सन्देह नहीं।——सं०]

मेरी गुरु-परम्परा 'वृहद्-वडवानल-तन्त्र' पर आधारित है। यह क्रम **'श्री उन्मत्त भैरव'** का सिद्ध किया हुआ है। मेरा सम्प्रदाय 'गौड़' है। इसी मतानुसार मैं यह विस्तृत निबन्ध प्रस्तुत कर रहा हूँ। बहुत से लोग विविध क्रम के विभिन्न देवताओं के ध्यान आदि हिन्दी में चाहते हैं, अतः वैसा ही लिखा है—

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि हिन्दुओं की **'सनातनी दीक्षा'** का प्रारम्भिक क्रम यह है कि सबसे पहले 'उपनयन-संस्कार' कराकर 'वैदिक गायत्री' को ग्रहण करे। ब्रह्मचारी बनकर गायत्री मन्त्र का चौबीस लाख जप करे। तब अपनी 'पितृ-परम्परा' के अनुसार 'दीक्षा' ग्रहण कर 'पाशव कल्प' से उपासना करे। जब साधक में पूर्ण विश्वास और भक्ति का समुचित विकास हो जाय, तब योग्य 'कौल गुरु' द्वारा यथा-रुचि और यथा-नियम अभीष्ट 'ग्राम्नाय' का क्रम ग्रहण करे।

'दक्षिणाम्नाय' का क्रम शीघ्र हो अभीष्ट-सिद्धि-दायक है क्योंकि इस आम्नाय में 'भक्ति-योग' से उपासना होती है। केवल 'दक्षिणाम्नाय' के क्रम को ग्रहण करने से 'भुक्ति' और 'मुक्ति' दोनों हस्त-गत हो सकती हैं। अतः सर्व-प्रथम 'दक्षिणाम्नाय' के क्रम का ही वर्णन करता हूँ।

'दक्षिणाम्नाय' क्रम की 'काली' और 'तारा'-मन्त्र-विद्याएँ

'दक्षिणाम्नाय' में भी अन्य आम्नायों की भाँति तीन क्रम हैं—**१ कादि**, २ **हादि** और **३ सादि**। 'हादि-क्रम' में माया-वीजादि मन्त्र-विद्या—**'आद्या-काली'** हैं। 'कादि-क्रम' में 'काली-वीजादि' मन्त्र-विद्या—**'श्यामा-काली'** अथवा **'दक्षिणा-काली'** हैं। 'सादि-क्रम' में 'वधू-वीजादि' मन्त्र-विद्या—**'नीला-काली'** अथवा 'तारा' हैं।

(१) हादि (हंस)-क्रम

'दक्षिणाम्नाय' के 'हादि-क्रम' में माया-वीजादि तीन मन्त्र-विद्याएँ हैं—(१) माया-लक्ष्मी-कुन्ती त्र्यक्षरी विद्या-काली—**'ह्रीं श्रीं क्रीं'**। (२) इसमें 'परमेश्वरि' तथा 'ठ-द्वय' रखने से दशाक्षरी विद्या आद्या-कालिका होगी—**'ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि स्वाहा'**। (३) फिर उसमें 'परमेश्वरि' के पश्चात् 'कालिके' पद रख कर, पूर्व-वत् वीज-त्रय रख कर ठ-द्वय लगाने से षोडशाक्षरी विद्या महा-आद्या-काली होगी—

'ह्रीं श्रीं क्रीं परमेश्वरि कालिके ह्रीं श्रीं क्रीं स्वाहा'। किसी-किसी के मत से इसी मन्त्र में प्रणव आदि में लगा कर 'सप्त-दशी' भी मानते हैं। इन तीनों विद्याओं के ध्यान तथा मन्त्र निम्न प्रकार हैं—

लाल कमल पर बैठी हुई, श्याम-वर्णवाली, दो बाहुओं में वर और अभय धारण किए हुई, लाल-वस्त्र तथा नाना अलङ्कार पहिने, तीन नेत्रों से माध्वीक मद्य-पान कर नृत्य करते हुए महा-काल का नृत्य देख रही हैं। इस प्रकार 'आद्या-काली' का 'ध्यान' करे।

'यन्त्र' इस प्रकार बनाए—पहले ह्रीं-गर्भ अधो-मुख त्रिकोण लिखे, फिर अष्ट-कर्णिका-युक्त अष्ट-दल अङ्कित करे। तदनन्तर चतुर्द्वारात्मक भू-पुर खींचे।

प्रत्येक विद्या ग्रहण कर, हो सके तो वर्ण-लक्ष, नहीं तो एक लक्ष का अवश्य ही 'पुरश्चरण' कर दूसरी विद्या ग्रहण करनी चाहिए। नहीं तो मन्त्र-ऋण होगा। 'आद्या-विद्या'-ग्रहण के समय में 'शाक्ताभिषेक' होगा और अन्त की विद्या-ग्रहण के समय में 'कौलाभिषेक' होगा। एक ही आम्नाय में रहनेवाले के लिए, इसी अवस्था में 'पादुका - दीक्षा' भी होगी और इसी अभिषेक को लघु पूर्णाभिषेक माना जाएगा।

(२) कादि (कुण्डलिनी)-क्रम

अब 'दक्षिणाम्नाय' के कादि-क्रम का वर्णन करता हूँ। इस क्रम में तीन विद्याएँ इस प्रकार हैं—(१) कुन्ती-कूर्च-लज्जा त्र्यक्षरी विद्या श्यामा-काली—**'क्रीं हूं ह्रीं'**। (२) फिर उसमें 'तीर' और 'अस्त्र' लगाने से पञ्चाक्षरी विद्या श्यामा-कालिका—**'क्रीं हूं ह्रीं हुं फट्'**। इन दोनों का 'ध्यान' एक ही है। यथा—

श्मशान में शव-रूप शिव के ऊपर खड़ी, नग्ना, शव-हस्त-बद्ध-कटी, मुण्ड-माला-धरा, घोर-दंष्ट्रा, हसन्मुखी, त्रि-नेत्रा, घोर-रूपा, शशि-शेखरा, मुक्त-केशी, ललज्जिह्वा, दोनों कानों में दो शव लटकाए हुई, चतुर्भुजी, वाम-भुजाओं में ऊपर खड्ग और नीचे मुण्ड, दक्ष-भुजाओं में ऊपर अभय और नीचे वर धारण किए हुई, श्याम-वर्णवाली श्यामा-काली का ध्यान करे।

(३) काली - त्रय, कूर्च-द्वय, लज्जा-द्वय के पश्चात् 'दक्षिणा कालिका' का सम्बोधन कर, उपर्युक्त वीजों का पुनः उच्चारण कर, ठ-द्वय लगाने से द्वा-विंशाक्षरी विद्या होगी दक्षिणा-काली—**क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा।** इनका 'ध्यान' इस प्रकार है—

पूर्वोक्त श्यामा-काली स्वरूपा, महा-काल के साथ विपरीत-रता।

मतान्तर में ब्रह्मादि-पञ्च-महा-प्रेतादि के ऊपर इनका ध्यान किया जाता है।

कालिका की कादि-विद्या का 'यन्त्र' इस प्रकार है—**पहले षट्-कोण बनाए, फिर तीन अधो-मुख त्रिकोण एक के बाद एक अङ्कित करे, फिर अष्ट-कोण बनाकर चतुर्द्वारात्मक भू-पुर बनाए। इस यन्त्र को दक्षिणाम्नाय का 'श्रीयन्त्र' कहते हैं।**

(३) सादि (संवरौधि)-क्रम

अब 'दक्षिणाम्नाय' के 'सादि-क्रम' का वर्णन करता हूँ। यह क्रम 'नीला-काली' अथवा तारा का है। इसमें तीन विद्याएँ इस प्रकार है—(१) वधू, कूर्च, लज्जा, तीर, अस्त्र—पञ्चाक्षरी विद्या एक-जटा—**स्त्रीं हूं ह्रीं हुं फट्**। इनका 'ध्यान' ऐसा है—**श्वेताम्बरा, चन्द्रार्द्ध-धारिणी, कर्त्री-कपाल-धरा, द्वि-भुजा, त्रि-नेत्रा, शारद-चन्द्र-वत् श्वेत-वर्णा।**

(२) तार, रमा, माया, हार्द्ध-शक्ति, वर्मास्त्र, ङे-युत नील-सरस्वती, ठ-द्वय–चतुर्दशाक्षरी विद्या नील-सरस्वती–ॐ श्रीं ह्रीं ह्सौः हूं फट् नील-सरस्वत्यै स्वाहा। इनका 'ध्यान' ऐसा है––शवासना, सर्पालङ्कारा, बाहु - चतुष्टय में कर्त्री, कपाल, चषक तथा त्रिशूल - धारिणी, मुण्ड - माली, त्रि - नेत्रा, नील-वर्णा।

(३) इसमें 'उग्र-तारा' हैं। इन्हें 'महा-नील-सरस्वती' भी कहते हैं। तार, त्रपा, वधू, वर्मास्त्र–सार्द्ध-पञ्चाक्षरी विद्या उग्र-तारा (महा-नील-सरस्वती)––ॐ ह्रीं स्त्रीं हुं फट्। इनका 'ध्यान' ऐसा है–शव-रूप शिव के ऊपर प्रत्यालीढ होकर खड़ी, घोर-रूपा, अट्टहासा, त्रि-नेत्रा, चारों बाहु में खड्ग, कमल, कर्त्री तथा कपाल-पात्र-धारिणी, व्याघ्र-चर्माम्बरा, नील-कमल-वत् वर्णवाली।

'दक्षिणाम्नाय' सादि - विद्या 'नीला - काली' की सभी विद्याएँ एक ही, परन्तु अपनी - अपनी गुरु-परम्परा के भेद से यन्त्र पृथक्-पृथक् होते हैं। 'आवरण-पूजा' तो एक ही है। उक्त यन्त्रों में से एक को मैं ऐसा जानता हूँ–

पहले अधो-मुख त्रिकोण बनाए, जिसके मध्य में 'त्रीं' की भावना करे। फिर अष्ट-दल-कमल बनाए, जिसके उत्तर, पूर्व, दक्षिण और पश्चिम के दलों के मध्य में क्रमशः 'ह्रीं', 'फट्', 'ठं', 'ठं' की भावना करे। अन्त में चतुर्द्वारात्मक भू-पुर लिखे।

दक्षिणाम्नाय काली का पंचम-क्रम

अब 'दक्षिणाम्नाय काली' के 'पञ्चम-क्रम' का वर्णन किया जाता है। सबसे प्रथम पूर्वोक्त 'आद्या-काली' का 'त्र्यक्षरी' मन्त्र। ध्यानादि पूर्व-वत्। निम्न प्रकार विनियोग करे––

'ब्रह्मा-ब्रह्मर्षयः ऋषयः, गायत्र्यादि छन्दांसि, आद्या-काली देवता, काली-वीजः वीजं, त्रपा-शक्तिः, रमा कीलकम्।'

'षड्-दीर्घ-भाजा माया' (ह्रां, ह्रीं इत्यादि) से 'कर-न्यास' करे। 'यन्त्र' पूर्व-वत्।

द्वितीया विद्या–पूर्वोक्त 'महा-आद्या-काली' का 'षोडशाक्षरी' मन्त्र। न्यास-ध्यानादि आद्या-काली-वत्। इन दोनों का 'यन्त्र' पूर्व-वत् एक ही है।

तृतीया विद्या–'सिद्धि - काली' का मन्त्र। प्रणव, हृल्लेखा, रति - वीज, भगान्वित भानु और ठ-द्वय का उच्चारण करने से 'षडक्षरी-विद्या' होगी–ॐ ह्रीं क्रीं मे स्वाहा।

रति-वीज (क्रीं) को मत-भेद से तथा आम्नाय-भेद से काम-वीज (क्लीं) अथवा काली-वीज (क्रीं) मानते हैं। काम-वीज (क्लीं) मानें, तो यह विद्या 'उत्तराम्नायात्मिका' होगी और कर-षडङ्ग-न्यास षड्-दीर्घ-भाजा 'काम-वीज' (क्लां, क्लीं इत्यादि) से होगा और गुह्य-काली के 'श्री-यन्त्र' में पूजा होगी। 'काली-वीज' मानें, तो यह विद्या 'दक्षिणाम्नायात्मिका' होगी और कर-षडङ्ग-न्यास षड्-दीर्घ-भाजा 'काली-वीज' (क्रां, क्रीं इत्यादि) से होगा तथा दक्षिणाम्नाय 'श्री-यन्त्र' में पूजा होगी। विनियोग तथा 'ध्यान' दोनों ही आम्नाय में एक ही हैं–

भैरव ऋषि, विराट् छन्द, रति वीज (अपने मतानुसार 'काम' अथवा 'काली'-वीज) व लज्जा शक्ति– इस मन्त्र में 'कीलक' नहीं है।

त्रि-नेत्रा, रक्तालिप्त-शरीरा, नग्ना, मुक्त - केशी, दोनों भुजाओं में रुधिर-पूर्ण कपाल-पात्र धारण कर रुधिर - पान कर रहनेवाली, दीप्त - जिह्वा, मणि - मय - मुकुटा, नील-कमल-वत् वर्णवाली 'सिद्धि-काली'।

चतुर्थी विद्या--'श्यामा-काली' पूर्व-वत् त्र्यक्षरी विद्या। ध्यानादि पूर्व-वत्। इनके विनियोग में ऋषि आदि निम्न प्रकार हैं--

महा-काल ऋषि, उष्णिक् छन्द, त्रपा वीज, कूर्च शक्ति, कुन्ती कीलक।

षड्-भाजा 'काली-वीज' (क्रां, क्रीं इत्यादि) से 'कर-षडङ्ग-न्यास' करे। 'यन्त्र' दक्षिणाम्नाय का पूर्वोक्त श्री-यन्त्र।

पञ्चमी विद्या--'दक्षिणा - काली' पूर्व-वत् द्वा-विंशाक्षरी विद्या। ध्यानादि पूर्व-वत्। इनके विनियोग का रूप यह है--

'महा-काल-भैरव ऋषि, उष्णिक् छन्द, त्रपा वीज, कूर्च शक्ति, कुन्ती कीलक।

प्रणवादि षड्-भाजा काली-वीज (ॐ क्रां, ॐ क्रीं इत्यादि) से कर-षडङ्ग-न्यास।

इसके बाद 'कौलाभिषेक' (लघु-पूर्णाभिषेक), 'पादुका-दीक्षा', दक्षिणाम्नाय 'सर्वाधिकार-दीक्षा' और दक्षिणाम्नाय 'मेधा-दीक्षा' ग्रहण करनी चाहिए। 'पादुका-दीक्षा' में अपनी-अपनी गुरु-परम्परा के भेद से मन्त्र तथा नाम पृथक् होते हैं। दिव्यौघादि भी वैसे ही हैं। दिव्यौघादि के विषय में मैं जो जानता हूँ, वे निम्न प्रकार हैं--

दिव्यौघ--महा-देव्यम्बा, महा-देवानन्द-नाथ, त्रिपुरानन्द-नाथ, भैरवानन्द-नाथ।

सिद्धौघ--ब्रह्मानन्द-नाथ, पूर्णदेवानन्द-नाथ, चलच्चित्तानन्द-नाथ, चलाचलानन्द-नाथ, कुमारानन्द-नाथ, क्राधानन्द-नाथ, वरदानन्द-नाथ, स्मर-दीपनानन्द-नाथ, मायाम्बा-देवी।

मानवौघ--विमलानन्द - नाथ, कुशलानन्द - नाथ, भीमसेनानन्द - नाथ, सुधाकरानन्द - नाथ, प्रह्लादानन्द-नाथ, सनकानन्द-नाथ, वशिष्ठानन्द-नाथ, बोधानन्द-नाथ, मीनानन्द-नाथ, गोरक्षानन्द-नाथ, भोजदेवानन्द-नाथ, प्रजापत्यानन्द-नाथ, मूलदेवानन्द-नाथ, रन्ति-देव्यम्बा, विघ्नेश्वरानन्द-नाथ, हुताशनानन्द-नाथ, समयानन्द-नाथ, सन्तोषानन्द-नाथ।

'दक्षिणाम्नाय' की सर्वाधिकार निर्वाण-दक्षिण-काली अतीव रहस्य-पूर्ण तथा गोप्य हैं। इनके मन्त्र का विनियोग निम्न प्रकार है--

निर्वाण सम्वर्तानन्द-नाथ निर्वाण-मन्त्रस्य कालाग्नि ऋषि। वृहती छन्द। निर्वाण-दक्षिण-काली देवता। प्रासाद-वीज वीज। परा-प्रासाद - वीज शक्ति। औकार और विसर्ग युत लेख कीलकं। भोग-मोक्षार्थे विनियोगः।

'सर्ग-युत-लेख' का उच्चारण कर कर-शुद्धि करे। उसी (लेख) अक्षर को नाद-विन्दु-युत षड्-भाजा वीजों से कर-षडङ्ग-न्यास करे। जिन अक्षरों तथा वीजों का यहाँ 'प्रासाद, 'परा-प्रासाद', 'लेख' आदि नामों से सङ्केत किया गया है, जिज्ञासु अधिकारी उन्हें 'वर्ण-वीज-कोश' से समझ सकते हैं।

'मेधा-दीक्षा' में--'दक्षिणा - काली' की द्वा - विंशाक्षरी विद्या को तीन भागों में विभाजित कर, 'ब्रह्म-गायत्री' के प्रथम पाद के अन्त में प्रथम भाग, द्वितीय पाद के अन्त में द्वितीय भाग, फिर तृतीय पाद के अन्त में तृतीय भाग, तत्पश्चात् गायत्री का तुरीय पाद उच्चारण करने से दक्षिणाम्नाय 'मेधा-दीक्षा' होगी।

'दक्षिणाम्नाय-काली' की जब 'मेधा-दीक्षा' होगी, तब साथ-साथ ही **'सम्वर्तेश्वर शाम्भव'** की दीक्षा भी होगी, जिसका 'विनियोग' निम्न प्रकार है--**शब्द - ब्रह्म ऋषिः, गायत्र्यादि - नाना - विधानि छन्दांसि, परमात्मा देवता, वस्त्र-विन्दु-नाद-युत क्षकार बीजं** (शाम्भव - विद्या में 'कीलक' तथा 'शक्ति'

नहीं हैं)। प्रणव तथा पञ्च-तार–इन छः वीजों के प्रत्येक वीज से 'कर-षडङ्ग-न्यास' होगा। कर-न्यास कनिष्ठिका से आरम्भ कर अंगुष्ठ में समाप्त होगा। **'सम्वर्त्तेश्वर शाम्भव'** का 'ध्यान' है—

रक्ताङ्ग-युत-विंश-बाहु-कमलां षड-वक्त्र-पङ्केरुहाम। खट्वाङ्गांकुश-पात्र-पाश - डमरूंश्चक्रासि-शरान्। कुन्तं वज्र-भुजङ्ग-राज-जप-माला-डिण्डिमान् विभ्रतीं। विश्वेशीं परमां स्मितां रहसि संवर्त्तेश्वरीं भावये॥

सम्वर्त्तेशी महा-देवी रुद्र-प्रेतासन-स्थिता।

'सम्वर्त्तेश्वर' के रक्त-वर्ण के दो कूटों में से प्रथम कूट की 'मणिपुर-चक्र' में और दूसरे कूट की 'मूलाधार' में भावना कर 'मूलाधार' में पूर्वोक्त-रूपा 'सम्वर्त्तेश्वरी' का ध्यान कर उन्हें 'मणिपुर'-स्थित वैसे ही रक्त-वर्ण, विंश-बाहु 'सम्वर्त्तेश्वर' से मिलाकर 'सहस्रार' में पहुँचाकर, सामरस्य कर, सम्वर्त्तेश्वर-मूल-मन्त्र का यथा-शक्ति जप कर निम्न मन्त्र से विश्रान्ति करे—

सम्वर्त्त - मूलान्ते श्रीसम्वर्त्तेश्वरानन्दनाथ-सम्वर्त्तेश्वरी-पराम्बा-श्रीपादुकां पूजयामि नमः।

इसी प्रकार 'मणिपुर' के 'दक्षिणाम्नायात्मक-चक्र' का शाम्भव-क्रम है। अन्य चक्रों के 'शाम्भव-क्रम' में भी प्रत्येक में दो-दो कूट शक्ति मूलाधार में तथा पुरुष, जिस चक्र का शाम्भव है, उसी चक्र में रहते हैं। यहाँ अन्य चक्रों के 'शाम्भव' तथा 'चक्र' के नाम, ध्यान एवं न्यास के साथ कूट के वर्ण बताता हूँ—

तारा विद्या की मेधा-दीक्षा के साथ नवात्म-शाम्भव, मूलाधार-चक्र, कूट का वर्ण अरुण। **शब्द-ब्रह्म ऋषि, गायत्र्यादि-नाना-विधानि छन्दांसि, परमात्मा देवता, वाणो वीज।** व्योम - भृगु - युत-रेफ-भूषित-फकार के षड्-दीर्घ-भाजा वीज द्वारा कर-षडङ्ग-न्यास। 'ध्यान'—

नील - वर्णां कुब्ज-रूपां, षडानन - सरोरुहां। पूर्व - वक्त्रे नील - वर्णां, दक्षिणे लोहिताननम्॥
पश्चिमे पीत-वक्त्रं च, शुभ्र-वक्त्रं तथोत्तरे। ईशाने शुक्ल - वक्त्रं तु, ह्यूर्ध्वे रक्तास्यमुत्तमम्॥
चारु-द्वादश-दोर्दण्डां, षट्-शूलान् दक्षिणैः करैः। वामैश्च रस-चक्राणि, दधानां घोर - दंष्ट्रिणीम्॥
सर्पास्थि-रत्न-भूषाङ्गीं, मुण्ड-माला-धरां पराम्। व्याघ्र-चर्म-परीधानां, सिंह-चर्मोत्तरीयकाम्॥
दिव्याभरण - भूषाङ्गीमट्ट - हासां भयानकाम्। अष्टा-विंशति-वर्षीयां बर्बरोर्ध्व - शिरोरुहाम्।
ब्रह्म-प्रेतासनारूढ़ां सम्वर्त्तेशीं भजाम्यहम्॥

उपाम्नाय चामुण्डा की मेधा-दीक्षा के साथ हंसेश्वर-शाम्भव, आहत-चक्र, कूट का वर्ण धूम्र। **शब्द-ब्रह्म ऋषि, गायत्र्यादि - नाना-विधानि छन्दांसि, परमात्मा देवता, व्योम-भृगु-रेफैकार-युत-फकार स-नाद-विन्दु वीज।** पञ्च-तारान्ते व्योम-रेफ-युत भृगु के षट्-दीर्घ-भाजा वीज द्वारा 'कर-षडङ्ग-न्यास'। 'ध्यान'—

नानाभरण-भूषाढ्यां, कपिलाङ्गीं रसाननाम्। शूलं शृंगिं ध्वजां मुण्डं, पाशं चापं शरं तथा॥
चक्रं भुजङ्गं खड्गं चाभयदं वरदं तथा॥
विभ्राणां द्वादशैर्हस्तैः, पाद - द्वादशभिर्युतान्। ईश्वर - प्रेतमासीनां, चन्द्र - चूडां त्रिलोचनाम्॥
नव-यौवन-सम्पन्नां, ध्यायेद्धंसेश्वरीं पराम्॥

उत्तराम्नाय गुह्य-काली की मेधा-दीक्षा के साथ विच्चेश्वर शाम्भव, विशुद्धि-चक्र, कूट का वर्ण शुभ्र। **शब्द-ब्रह्म ऋषि, गायत्र्यादि-नाना-विधानि छन्दांसि, परमात्मा देवता, आकाश वीज।** व्योम-भृगु-रेफ के षड्-दीर्घ-भाजा वीज द्वारा 'कर-षडङ्ग-न्यास'। 'ध्यान'—

शूलं चक्रांकुशौ पाशं, विभ्रतीं च वर - प्रदाम्। वामके तर्जनीं शङ्खं, ध्वजां च नृ - शिरस्तथा॥
चापाभयं च विभ्राणां, तद्-वर्तीं च कुलेश्वरीम्। सदा-शिवाख्य-प्रेतस्थां परां विच्चेश्वरीं भजे॥

पूर्वाम्नाय की मेधा-दीक्षा के साथ द्वीपेश्वर शाम्भव, स्वाधिष्ठान चक्र, कूट का वर्ण शुक्ल। **शब्द-ब्रह्म ऋषि, गायत्र्यादि-नाना-विधानि छन्दांसि, परमात्मा देवता, वाम-कर्ण-भूषित-सार्द्ध-चन्द्र-व्योम-भृगु बीज।** व्योम-भृगु के षड्-दीर्घ-भाजा वीज द्वारा 'कर-षडङ्ग-न्यास'। 'ध्यान'—

शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-शूल-पात्राभय-प्रदाम्। वरदां रत्न - भूषाढ्यां, कृष्णाभां सु - स्मिताननाम्॥
युवतीं पीत-वसनां, विष्णु-प्रेतासन-स्थिताम्। भजे द्वीपेश्वरीं रम्यां, विशाल - त्रय - लोचनाम्॥

यह शाम्भव-विद्या अन्तर्यागात्मक विद्या है। अतः ४ प्रकार की सन्ध्याओं की समाप्ति के बाद निशा-पूजा (बहिर्याग) कर उस पूजा की तत्त्व-शुद्धि की अवस्था में निगमागम-समष्टि विद्या मेधा-मन्त्र का जप कर शाम्भव-चिन्तनादि (अन्तर्याग) के लिए शाम्भव दीक्षा का प्रयोग होगा।

काली-विद्या की सन्ध्या

अब 'सन्ध्या' के विषय में लिखता हूँ। जिस प्रकार गायत्री के तुरीय-पाद के ग्रहण के पश्चात् चार सन्ध्याओं का विधान है, उसी प्रकार सर्वाधिकार-दीक्षा प्राप्त करनेवालों के लिए भी है। 'दक्षिणाम्नाय' में वह विधान निम्न प्रकार है—१ प्रातः-काल 'गायत्री'-जप के पश्चात् 'महाऽऽद्या-काली' की षोडशाक्षरी, पूर्व-वत् ध्यान कर, जप के पश्चात् 'दक्षिणा-काली' का निम्न प्रकार का ध्यान करे—

नीलोत्पल के समान वर्णवाली, दिगम्बरा, ललज्जिह्वा, दंष्ट्राली, घोर-रूपिणी, अट्टाट्टहास-निरता, मुण्ड-माला-धरा, चारों बाहु में नर-मुण्ड, खड्ग, कमल तथा वर धारण किए हुई, शव-रूपी शिव के ऊपर खड़ी, जटा-जूटा।

ध्यान कर सृष्टि-क्रम से पूर्वोक्त 'द्वा-विंशाक्षरी' का जप करे।

२ मध्याह्न-काल में 'सावित्री'-जप के पश्चात् 'श्यामा-काली' की त्र्यक्षरी का पूर्व-वत् विपरीत-रतातुरा ध्यान कर, स्थिति-क्रम से पूर्वोक्त द्वा-विंशाक्षरी का जप करे।

३ सायं-काल में 'सरस्वती'-जप के पश्चात् 'सिद्धि-काली' की षडक्षरी का पूर्व-वत् ध्यान कर, जप के पश्चात् 'दक्षिणा-काली' का **अञ्जनादि-प्रभा, श्यामा, नागालङ्कार-भूषिता, अन्य पूर्व-वत्, विपरीत-रतातुरा ध्यान कर** संहार-क्रम से पूर्वोक्त द्वा-विंशाक्षरी का जप करे।

४ रात्रि-काल में 'चतुष्पदी गायत्री' - जप के पश्चात् सर्वाधिकार 'निर्वाण दक्षिणा-काली' विद्या का जप करे।

५ तत्पश्चात् निगमागम-समष्टि-रूपा 'मेधा-मन्त्र' का जप करे।

पञ्चम सन्ध्या को 'भाषा-रूप' मानते हैं।

दक्षिणाम्नाय तारा का पञ्च-क्रम

'तारा' के उपासकों को तारा का पञ्च-क्रम कर 'सर्वाधिकार-दीक्षा' पानी होगी। पूर्ण-क्रम तथा अन्य क्रमों में अधराम्नायोपासना के लिए अधराम्नाय-नायिका आर्य-तारा होने के कारण उनके प्रति-निधि रूप महोग्र-तारा की उपासना दक्षिणाम्नाय से अधराम्नाय - मिश्रित होगी, क्योंकि आर्य-तारा बौद्ध-मार्गोपासिता है। इस क्रम में सबसे पहले त्र्यक्षरी विद्या ली जाती है—तारिणी प्रणव, माया और वधू-वीज एवं सिद्ध-मन्त्र होने के कारण इनका विनियोग तथा न्यासादि नहीं है। ध्यान पूर्वोक्त 'एक-जटा' के समान है।

द्वितीय क्रम में 'एक-जटा' की पूर्वोक्त पञ्चाक्षरी। विनियोग है—

वशिष्ठ ऋषि, गायत्री छन्द, एक-जटा देवता, कूर्च बीज, लज्जा शक्ति, स्त्री कीलक।

षड्-दीर्घ-भाजा माया (ह्रां, ह्रीं इत्यादि) से कर-षडङ्ग-न्यास। ध्यान पूर्व-वत्।

तृतीय क्रम में 'नील-सरस्वती' की पूर्वोक्त चतुर्दशाक्षरी। विनियोग है—

ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द, नील-सरस्वती देवता।

इस मन्त्र में वीज, शक्ति तथा कीलक नहीं है क्योंकि यह अकीलित है।

कर - षडङ्ग - न्यास इस प्रकार हैं—दो, एक, एक, दो, छः, दो मूल - मन्त्राक्षरों से। ध्यान पूर्वोक्त-वत्।

चतुर्थ क्रम में 'उग्र-तारा' (महा-नील-सरस्वती) की पूर्वोक्त सार्द्ध-पञ्चाक्षरी। विनियोग है—

अक्षोभ्य ऋषि, बृहती छन्द, महा-नील-सरस्वत्युग्र-तारा देवता, कूर्च वीज, त्रपा शक्ति, स्त्री-वीज कीलक।

षड्-दीर्घ-भाजा माया (ह्रां, ह्रीं इत्यादि) में **अखिल-वाग्-रूपिणी, अखण्ड-वाग्-रूपिणी, ब्रह्म-वाग्-रूपिणी, विष्णु-वाग्-रूपिणी, रुद्र-वाग्-रूपिणी** और **सर्व-वाग्-रूपिणी**—इन छः नामों में ङेऽन्त (चतुर्थी विभक्ति) लगाकर कर-षडङ्ग-न्यास करे। ध्यान पूर्वोक्त-वत्।

पञ्चम क्रम में 'महोग्र-तारा'—तार, लज्जा, स्त्री, कूर्च, अंकुश, रमा के पश्चात् 'उग्र-तारा' का सम्बोधन कर शक्ति, काम, त्रपा, कमला, ठ-द्वय का उच्चारण करने से षोडशाक्षरी होगी। ऋष्यादि, कर-षडङ्ग-न्यास पूर्वोक्त 'उग्र-तारा' के समान। इनका ध्यान ऐसा है—

सृष्टि रूप में—**कोटि-दिवाकर के समान कान्ति, रक्त-वर्णवाली, रक्त-वसना, चन्द्रार्द्ध-कृत-शेखरा, नानालङ्कार-भूषिता, पाश-कर्त्री-अंकुश तथा पद्म-धारिणी।**

स्थिति-रूप में—**प्रत्यालीढ-पदा, घोरा, मुण्ड-माला-धरा, खर्वा, लम्बोदरी, कटि में व्याघ्र-चर्म पहिने, नव-यौवन-सम्पन्ना, ललज्जिह्वा, हस्त - चर्मोत्तरीयका, अस्थ्यालङ्कार - भूषाढ्या, वर्तुल-नेत्र-त्रया, चतुर्हस्त में खड्ग, कर्त्री, मुण्ड और पद्म-धारिणी, श्वेत-पद्मोपरि-स्थिता।**

संहार-रूप में—**प्रकट-विकट-दंष्ट्रा, घोर-रूपाऽट्टहासा, मुण्ड - माली, मेघ-वर्णा, अति-खर्वा, बाहु-द्वय में कर्त्री और कपाल-धारिणी।**

तत्पश्चात् कौलाभिषेक (लघु-पूर्णाभिषेक), पादुका-दीक्षा, तारा सर्वाधिकार-दीक्षा तथा तारा मेधा-दीक्षा ग्रहण करनी चाहिए। 'सर्वाधिकार-निर्वाणेश्वरी उग्र-तारा' के मन्त्र का विनियोग निम्न प्रकार है—

अक्षोभ्य ऋषि, जगती छन्द, निर्वाणोग्र-तारा देवता, त्रपा वीज, स्त्री शक्ति, कूर्च कीलक, आरा-ध्यर्थ-सिद्धये विनियोग।

कूर्च से कर-शोधन कर उसी वीज से कर-षडङ्ग-न्यास करे।

मेधा - दीक्षा में 'महोग्र-तारा' की षोडशाक्षरी विद्या का तीन भागों में विभाजन कर ब्रह्म-गायत्री में पूर्व-वत् मिला ले। यह विद्या दक्षिणाम्नायात्मिका है। फिर भी अधराम्राय - मिश्रित कर इसकी उपासना होती है। अतः इसकी आवरण-पूजा वाम हस्त से होती है। अन्य आम्नाय में **'श्रीपादुकां पूजयामि नमः'** के स्थान में **'वज्र-पुष्पं प्रतीक्ष स्वाहा'** कहना होगा।

तारा-विद्या की सन्ध्या

तारा-विद्या का सन्ध्या-क्रम इस प्रकार है—

प्रातः-काल में 'एक-जटा' की पूर्वोक्त पञ्चाक्षरी विद्या का न्यास, ध्यान तथा जप कर 'महोग्र-तारा' की षोडशाक्षरी-विद्या का सृष्टि-क्रम से न्यास, ध्यान तथा जप करे ।।१।।

मध्याह्न-काल में 'उग्र-तारा' विद्या की पूर्वोक्त सार्द्ध-पञ्चाक्षरी विद्या का न्यास, ध्यान तथा जप कर 'महोग्र-तारा' विद्या की षोडशाक्षरी-विद्या का स्थिति-क्रम से न्यास, ध्यान तथा जप करे ।।२।।

सायं-काल में 'नील-सरस्वती' विद्या का न्यास, ध्यान तथा जप कर 'महोग्र-तारा' विद्या का संहार-क्रम से न्यास, ध्यान तथा जप करे ।।३।।

रात्रि-काल में 'सर्वाधिकार निर्वाणोग्र-तारा' का न्यास और जप करे ।।४।।

तत्पश्चात् निगमागम-रूपिणी 'मेधा-विद्या' का जप करे ।।५।।

सृष्टि, स्थिति तथा संहार-क्रम से सभी आम्नाय-नायिकाओं के न्यास, ध्यान, जपादि के नियम पृथक-पृथक् हैं। उनमें से ध्यान तो मैं दे रहा हूँ, अन्य विधान गुरु-देव से जान लेना चाहिए। इस तन्त्र-शास्त्र में गुरु का होना आवश्यक है। जहाँ तक लिखने के योग्य है, वहीं तक लिखा जा सकता है। 'स्वयं-शिक्षक' लेख तान्त्रिक साधना के विषय में नहीं लिखा जा सकता। मन्त्र भी स्पष्ट न देकर प्रायः गुप्त शैली में ही प्रकाशित किए जाते हैं, जिससे अधिकारी लोग ही समझ सकें।

'ऊर्ध्वाम्नाय'-क्रम की बाला-विद्या

अब ऊर्ध्वाम्नाय की **बाला-विद्या** का वर्णन करता हूँ। बाला-विद्या भी **श्रीविद्या** हैं। अतः इनके क्रम में भी—**१ हादि, २ कादि** तथा **३ सादि**—तीनों ही क्रम विद्यमान हैं। वे ऐसे हैं—

हार्द-क्रम में त्रिपुरा बाला की लज्जा, काम और हार्द्ध-युक्त शक्ति-वीज 'त्र्यक्षरी विद्या' है—**ह्रीं क्लीं ह्सौः**। विनियोग है—

दक्षिणामूर्ति ऋषि, गायत्री छन्द, बाला-त्रिपुरा देवता, माया (ह्रीं) वीज, हार्द-युक्त शक्ति-वीज (ह्सौः) शक्ति, काम-वीज (क्लीं) कीलक।

मूल के एक-एक अक्षर की द्विरावृत्ति करके कर-षडङ्ग-न्यास करे। इनका 'ध्यान' ऐसा है—

बालावस्था, सर्वालङ्कार-युता, लाल-वर्णवाली, चार हाथों में पाश, अंकुश, पुस्तक तथा जप-माला धारण कर रक्त-पद्म पर बैठी हुई त्रिपुरा बाला।

तत्पश्चात् बाला त्रिपुरा की वाक्, काम, शक्ति-वीज 'त्र्यक्षरी विद्या' है—**'ऐं क्लीं सौः'**। इसका विनियोग है—

दक्षिणामूर्ति ऋषि, पंक्ति छन्द, बाला त्रिपुरा देवता, वाणी (ऐं) वीज, शक्ति-वीज (सौः) शक्ति, काम-वीज (क्लीं) कीलक।

मूल के एक-एक अक्षर की द्विरावृत्ति करके 'कर-षडङ्ग-न्यास' करे। इनका 'ध्यान' ऐसा है—**रक्ताम्बरा, नानालङ्कार-भूषिता, चन्द्र-चूडा, त्रि-नेत्रा, अरुणा, चतुर्भुजा, पुस्तक, जप-माला, वर तथा अभय-करोद्यता, रक्ताम्बुज पर बैठी हुई त्रिपुरा-बाला।**

इसके बाद बाला-त्रिपुर-सुन्दरी की वाणी, माया, रमा, वाक्, काम तथा शक्ति—यह 'षडक्षरी विद्या' है—**ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः**। इन्हें **'श्रीविद्या-महा-षडार्णा'** भी कहते हैं। इनका ध्यान (सृष्टि-रूप)

ऐसा है— **अरुण-किरण-जालैरञ्जिता, तप्त-काञ्चन - वर्णा, चन्द्रार्द्ध - चूडा-मणि, दिव्यालङ्कार - भूषिता, रक्ताम्बरा, चतुर्भुजा, पाशांकुश-वराभय-करा, ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र-ईश्वर रूप चार पादों और सदा-शिव-रूप फलक के बने हुए रत्न-मय दिव्य सिंहासन के ऊपर रक्त-पद्मोपरि बैठी हुई बाला त्रिपुर-सुन्दरी।**

'स्थिति-रूप' का इनका ध्यान ऐसा है—**मुक्ता-कुन्देन्दु-गौरा, आयुध, अलङ्कार तथा आसनादि सब सृष्टि-रूप-वत्।**

'संहार-रूप ऐसा है—**महा-स्वर्णा, मुण्ड-माला-धरा, महा-चर्म (नर - चर्म) वस्त्रा, दो बाहु से पूर्ण कपाल-पात्र-धारिणी, शिव-रूप प्रेतोपरि बैठी हुई बाला-त्रिपुर-सुन्दरी।**

ध्यान के ये तीन प्रकार केवल पाँच के क्रम वालों के लिए 'त्रिकाल-सन्ध्या' हेतु हैं। हादि, कादि तथा सादि-क्रम वालों के लिए केवल 'सृष्टि-ध्यान' पर्याप्त है।

अब 'कादि-क्रम' का वर्णन करता हूँ। त्रिपुरा बाला की काम, रमा, माया, त्रिपुरे वाले, ठ-द्वय यह 'दशाक्षरी विद्या' है— **क्लीं श्रीं ह्रीं त्रिपुरे बाले स्वाहा।** विनियोग है—

दक्षिणामूर्ति ऋषि, गायत्री-छन्द, त्रिपुर-बाला देवता, काम (क्लीं) वीज, माया (ह्रीं) शक्ति, रमा (श्रीं) कीलक।

पूर्व-वत् तीन वीजों की द्विरावृत्ति से 'कर - षडङ्ग-न्यास'। 'ध्यान' पूर्व-वत्—**पाशांकुश-पुस्तकाक्ष-हस्ता।**

तत्पश्चात् बाला-सुन्दरी की (**माया, काम, शक्ति भगवत्यै बाला-सुन्दर्यै तथा दण्डः**) चतुर्दशाक्षरी विद्या। दक्षिणा-मूर्ति ऋषि, पक्तिश्छन्द, बाला-सुन्दरी देवता, माया (ह्रीं) वीज, शक्ति - बीज (ह्सौः) शक्तिः, काम (क्लीं) कीलक। मूल-मन्त्र के १, १, १, ४, ५, २ अक्षरों से 'कर-षडङ्ग-न्यास'। 'ध्यान' बाला-त्रिपुरा-वत्। इनमें विशेष 'मुण्ड-माला' का अलङ्कार है। तत्पश्चात् बाला-त्रिपुर-सुन्दरी की पूर्वोक्त 'महा-षडर्ण-विद्या'।

अब सादि-क्रम का वर्णन करता हूँ। त्रिपुरा-बाला की (**शक्ति, काम, वाक्, त्रिपुर-बालायै तथा दण्डः**) एकादशाक्षरी विद्या। दक्षिणा - मूर्ति ऋषि, पंक्ति छन्द, त्रिपुरा - बाला देवता, वाक् (ऐं) बीज, शक्ति-बीज (ह्सौः) शक्ति, काम (क्लीं) कीलक। १, १, १, ३, ३, २ से 'कर-षडङ्ग-न्यास' करे। 'ध्यान' पूर्व-वत्—**पाशांकुश-पुस्तकाक्ष-हस्ता।** तत्पश्चात् सिद्ध-त्रिपुरा-बाला की (**भृगु ब्रह्म-धरा-वह्नि - वामाक्षी-विन्दु-भूषित कूटाक्षर, दहनान्त्य-महा-काल-भुजङ्ग-पुरुषोत्तमाः मन्वर्घो सेन्दु-संयुक्ताः कूटाक्षर, वाणी-बीज, त्रिपुरे सर्व-वाञ्छितं देहि, दण्डः तथा ठ-द्वयं**) सप्त - दशाक्षरी विद्या। दक्षिणा - मूर्ति ऋषि, गायत्री छन्द, सिद्ध-त्रिपुरा-बाला देवता। इनके वीज, शक्ति तथा कीलक नहीं हैं। १, १, ४, ७, २, २ से 'कर-षडङ्ग-न्यास' करे। 'ध्यान' पूर्व-वत्—**पाशांकुश-पुस्तकाक्ष-हस्ता।** तत्पश्चात् बाला-त्रिपुर-सुन्दरी की पूर्वोक्त 'महा-षडर्ण-विद्या'।

अब बाला का सर्वोत्तम 'पञ्च क्रम' इस प्रकार है—सबसे प्रथम बाला - त्रिपुरा की पूर्वोक्त 'वागादि-त्र्यक्षरी' विद्या ॥१

द्वितीय-क्रम में बाला-सुन्दरी की पूर्वोक्त 'चतुर्दशाक्षरी विद्या' ॥२

तृतीय-क्रम में बाला-भैरवी की (**वियद् भृगु-हुताशस्थो भौतिको विन्दु - शेखरः एवं प्रथम-कूटं, वियत्तदादि-केन्द्राग्नि-स्थितं वामाक्षि-विन्दु-मत् एवं द्वितीय-कूटं और आकाश-भृगु-वह्निस्थो मनुः सर्गेन्दु-**

खण्डवान् एवं तृतीय - कूटं) त्रिकूटाक्षरी विद्या । दक्षिणा - मूर्ति ऋषि, पंक्तिश्छन्द, बाला-भैरवी देवता, प्रथम-कूट बीज, तृतीय-कूट शक्ति, द्वितीय-कूट कीलक । इन्हीं ३ कूटों की द्विरावृत्ति कर 'कर - षडङ्ग-न्यास' करे । 'ध्यान' पूर्वोक्त बाला-त्रिपुरा-वत् **'पुस्तकाक्ष-वराभय-हस्ता'** है । विशेष इनका रूप रक्ता-लिप्त-पयोधरा तथा मुण्ड-माला-धरा युवती है । इनको 'त्रिपुर-भैरवी' भी कहते हैं ।।३

चतुर्थ-क्रम में महा-त्रिपुर-भैरवी की (**व्योम-भृगु-कधराफञ्जनो में चन्द्रार्ध-युत ऐकार से प्रथम कूट, चन्द्रार्ध-युत ई-कार से द्वितीय कूट और सर्ग तथा चन्द्रार्ध-युत औ-कार से तृतीय कूट**) त्रिकूटाक्षरी विद्या । दक्षिणा-मूर्ति ऋषि, पंक्ति छन्द, महा-त्रिपुर-भैरवी देवता, प्रथम-कूट बीज, तृतीय - कूट शक्ति, द्वितीय-कूट कीलक । इस कूट-त्रय को द्विरावृत्ति कर 'कर-षडङ्ग-न्यास' करे। 'ध्यान' पूर्वोक्त बाला-भैरवी (त्रिपुर-भैरवी) वत् । विशेष 'महा-त्रिपुर-भैरवी' वृद्धा हैं ।।४

पञ्चम-क्रम में बाला-त्रिपुर-सुन्दरी की पूर्वोक्त 'महा-षडर्ण-विद्या' ।।५

तत्पश्चात् इन 'महा-षडर्ण-विद्या' में आद्यन्त प्रणव लगाकर 'निर्वाण-बाला' की दीक्षा कौला-भिषेक तथा पादुका दीक्षा के पश्चात् होगी । फिर 'महा-षडर्ण-विद्या का दो - दो बीजों के ३ भागों में विभाजन कर पूर्वोक्त गायत्री में समष्टि कर 'मेधा-दीक्षा' ग्रहण करे । बाला-क्रम की सकल ही विद्याओं का यन्त्र तथा आवरण-पूजा समान है । श्रीबाला-यन्त्र में किसी-किसी परम्परा में विन्दु के स्थान पर हार्द्ध-युत शक्ति-बीज लिखने की प्रथा है ।

'बाल - विद्या' की उपासना मनोविज्ञान के साथ 'राज - योग' से होती है । 'बाला - विद्या' की 'सन्ध्या-विधि' इस प्रकार की है—

बाला-विद्या की सन्ध्या

प्रातः-सन्ध्या में बाला-त्रिपुरा की वागादि 'त्र्यक्षरी' का साङ्गोपाङ्ग जप करे । बाला - त्रिपुर-सुन्दरी का 'सृष्टि-क्रम' से साङ्गोपाङ्ग जप करे ।।१

मध्याह्न में बाला-भैरवी की 'त्रिकूटा विद्या' का साङ्गोपाङ्ग जप कर बाला - त्रिपुर-सुन्दरी की 'महा-षडर्ण-विद्या' का 'स्थिति-क्रम' से साङ्गोपाङ्ग जप करे ।।२

सायं-काल में बाला-सुन्दरी की 'चतुर्दशाक्षरी विद्या' अथवा महा - त्रिपुर - भैरवी की 'त्रिकूटा-विद्या' का साङ्गोपाङ्ग जप कर बाला-त्रिपुरा-सुन्दरी की 'महा-षडर्ण-विद्या' का 'संहार - क्रम' से साङ्गो-पाङ्ग जप करे ।।३

तत्पश्चात् 'निर्वाण-बाला' का साङ्गोपाङ्ग जप करे ।।४।। फिर 'मेधा-मन्त्र' का जप करे ।।५

दक्षिणाम्नायात्मक काली, तारा एवं ऊर्ध्वाम्नायात्मक बाला
का
'महा-क्रम' तथा 'पूर्ण-क्रम'

जो लोग 'महा-क्रम' तथा 'पूर्ण-क्रम' ग्रहण करते हैं, उनके लिए दक्षिणाम्नायात्मक काली के 'महा-क्रम' के लिए ३ क्रम तथा पूर्ण-क्रम के लिए पूर्वोक्त ५ क्रम, फिर अधराम्नाय बौद्ध - मार्ग होने से उसके प्रतिनिधि दक्षिणाम्नाय में अधराम्नाय-मित पूर्वोक्त-वत् कर 'तारा' का क्रम महा - क्रम के लिए ३

क्रम तथा पूर्ण-क्रम के लिए पूर्वोक्त ५ क्रम, तत्पश्चात् ऊर्ध्वाम्नाय बाला के महा-क्रम के लिए ३ क्रम तथा पूर्ण-क्रम के लिए पूर्वोक्त ५ क्रम ग्रहण करने से हादि (हंस) क्रम पूर्ण होगा। अतः तदनन्तर श्रीविद्या का 'महा-हादि-कूट' ग्रहण करना चाहिए। इस कूट को 'काम-कूट' कहते हैं। **'आकाश-भृगु-चक्रचभ्र-मांस-माया'**—एवं एक-कूटाक्षरी विद्या। संमोहन ऋषि, गायत्री छन्द, कामेशी देवता, हकार बीज, माया शक्ति, भृगु-चक्रचभ्र-मांस कीलक। षड्-दीर्घ-भाजा कूट के अन्त में **'द्रां संक्षोभण-वाणाय, द्रीं द्रावण-वाणाय, क्लीं आकर्षण-वाणाय, ब्लूँ वशीकरण-वाणाय, सः उन्माद-वाणाय, द्रीं द्रीं क्लीं ब्लूं सः सर्व - वाणेभ्यः'** क्रमशः लगाकर 'कर-षडङ्ग-न्यास' करे। 'ध्यान' ऐसा है—

बालार्क-कोटि-रुचिरां स्फटिकाक्ष-मालां, कोदण्डमिक्षु-जनितं स्मर-पञ्च-वाणान्।
विद्यां च हस्त-कमलैर्दधतीं त्रि-नेत्रां, ध्यायेत् समस्त - जननीं नव-चन्द्र-चूडाम्॥

इसके बाद 'सादि-क्रम' ग्रहण करना चाहिए। यह (संवरौधि) क्रम आर्य-तारा का बौद्ध-मार्गीय है। अतः चण्डिका का 'सादि-क्रम' ग्रहण करे। इस क्रम में ईशानाम्नाय, आग्नेयाम्नाय तथा वायव्याम्नाय की समष्टि क्रम से पश्चिमाम्नाय त्रि-शक्ति-चामुण्डा में होगी एवं इसमें दश-क्रम हैं। इस क्रम को 'उपाम्नाय सादि-क्रम' भी कहते हैं। पूर्वाम्नाय तथा उत्तराम्नाय मिश्रित होकर ईशानाम्नाय बना है। अतः सबसे आगे पूर्वाम्नायात्मिका रक्त-दन्तिका की (**'भृगु-व्योम-चतुर्दश-स्वर-युत - संसर्ग' एवं 'बीजान्ते रक्त-दन्तिके' पद के पश्चात् 'त्रपा'**) सप्ताक्षरी विद्या है। इनके ब्रह्मादि ऋषयः, गायत्र्यादि छन्दांसि, रक्त-दन्तिका देवता हैं। वीज, शक्ति और कीलक नहीं हैं। मन्त्र के पूर्व वीज के षड्-दीर्घ-भाजा से 'कर-षडङ्ग-न्यास' करे। इनका 'ध्यान' निम्न प्रकार है—

शवासनां तप्त-सुवर्ण-कान्ति, दोर्भिः सुचर्मासि-वराभयाढ्याम्।
चन्द्रार्द्ध-चूडां धृत-मुण्ड-मालां, श्री- रक्त-दन्तां मनसा स्मरामि॥१

तब उत्तराम्नायात्मिका पञ्च-वक्त्रा महा-काली की प्रणव (ॐ), सम्वर्ताग्नि ए-कार विधु-भूषित वीज-युगल, ब्रह्माग्नि, ए-कार विधु-भूषित वीज-द्वय, 'पशुं गृहाण' पद, वर्मास्त्र, ततः स्वाहा तारान्त—एवं चतुर्दशाक्षरी विद्या है। सिद्ध-विद्या होने के कारण इनके न्यासादि नहीं हैं। 'ध्यान' निम्न प्रकार है—

पञ्च-वक्त्रां महा-रौद्रीं प्रति-वक्त्र-त्रिलोचनां, शक्ति-शूलधनुर्बाण-खेट-खड्ग-वराभयान्।
दक्षदृक्ष-भुजैर्देवीं बिभ्राणां भोगि-भूषणां, अर्द्ध-चन्द्र-जटा-युक्तां जिह्वा-ललन-भीषणाम्॥
निर्मांसामेदुरामस्थि-पञ्जरां मुण्ड-मालिनीं, मत्त-व्यालोपवीताङ्गीं, भूत-वेताल-वेष्ठिताम्।
मेदो-वसोपलिप्ताङ्गीं, महा-प्रेतासन-स्थिताम्॥२

तत्-पश्चात् ईशानाम्नायात्मिका दश-वक्त्रा महा-काली की (**काम, वाणी, ततः महा - काल्यै तथा विच्चे**) काली नवार्ण विद्या। ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द, महा-काली देवता, वाणी वीज, काम शक्ति। कीलक नहीं है। षड्-दीर्घ-भाजा काम-वीज से 'कर-षडङ्ग-न्यास' करे। इनका ध्यान **'दश-वक्त्रा', 'दश-भुजा'** और **'दश-पादा खड्गं-चक्रेत्यादि'** सप्तशती-वर्णित महा-काली प्रसिद्ध ही हैं॥३

आग्नेयाम्नाय दक्षिणाम्नाय तथा पूर्वाम्नाय से मिश्रित होकर बना है। अतः प्रथम दक्षिणाम्नायात्मिका तारा की (**वाचा, लज्जा, रमा, काम, आकाश-भृगु-वह्नि - औकार - विसर्गाढ्या कूट, कूर्च, 'उग्र-तारे' पद** तथा **वर्मास्त्र**) द्वादशार्ण विद्या है। ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द, तारिणी देवता। वीज, शक्ति, कीलक नहीं हैं। षड्-दीर्घ माया-वीज से 'कर-षडङ्ग-न्यास' करे। 'ध्यान' ऐसा है—

श्वेताम्बरां चन्द्र-कान्ति, चन्द्रार्द्ध-कृत-शेखरां । कर्तरीं च कपालं च, कराभ्यां दधतीं भजे ।।४

ततः पूर्वाम्नायात्मिका महा-लक्ष्मी का (**तार, लक्ष्मी, त्रपा, रमा, 'कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद' उच्चारण कर फिर पूर्वोक्त ४ बीजों को विपरीत से लगा कर 'महा-लक्ष्म्यै' पद तथा 'दण्डः'**) अष्टाविंशाक्षरी विद्या है। दक्ष-प्रजापति ऋषि, गायत्री छन्द, महा-लक्ष्मी देवता, रमा-वीज, माया शक्ति, प्रणव कीलक। षड्-दीर्घ-भाजा रमा-वीज से 'कर-षडङ्ग-न्यास' करे। 'ध्यान' ऐसा है—

रत्नोद्यद्-वसु-पत्रं च पद्म-युग्मं च हेमजं, अग्र-रत्नावली-राजदादर्श-दधतीं पराम् ।
चतुर्भुजां स्फुरद्-रत्न-नूपुरां मुकुटोज्ज्वलां, ग्रैवेयाङ्गद-हाराढ्य-कङ्कणां रत्न-कुण्डलाम् ।।
पद्मासन-समासीनां द्युतिभिर्मण्डितां सदा, शुक्लाङ्गराग-वसनां महा-दिव्याङ्गना-नुताम् ।
एवं ध्यायेन्महा-लक्ष्मीं महदैश्वर्य-दायिनीम् ।।५

तत्पश्चात् आग्नेयाम्नायात्मिका महा-लक्ष्मी की (**माया, रमा, लज्जा, ततः 'महा-लक्ष्म्यै' तथा 'विच्चे'**) लक्ष्मी नवार्ण विद्या है। विष्णु ऋषि, उष्णिक् छन्द, महा-लक्ष्मी देवता, लज्जा वीज, श्री शक्ति। कीलक नहीं है। षड्-दीर्घ-भाजा माया से 'कर-षडङ्ग-न्यास' करे। 'ध्यान' वही सप्तशती-वर्णित अष्टादश-भुजा महा-लक्ष्मी **'अक्ष-स्रक्'** इत्यादि प्रसिद्ध ही है ।।६

अब वैसे ही वायव्याम्नाय उत्तराम्नाय तथा पश्चिमाम्नाय से बना है। अतः उत्तराम्नाय में विपरीत-प्रत्यङ्गिरा भद्र-काली की (**शिव-प्रासाद बीज, 'काली महा-काली' पद, 'किणि'-द्वय, अस्त्र तथा ठ-द्वय**) चतुर्दशाक्षरी विद्या है। पिप्पलाद ऋषि, निवृच्छन्द, विपरीत-प्रत्यङ्गिरा भद्र-काली देवता। इनके वीज, शक्ति तथा कीलक नहीं हैं। मूल-मन्त्र के ६ पदों से कर-षडङ्ग-न्यास करे।

यहाँ एक याद रखने की बात यह है कि इस चतुर्दशाक्षरी विद्या में यदि ऋष्यादि-न्यास न कर कनिष्ठिका से कर-न्यास आरम्भ करे, तो यह विद्या 'पश्चिमाम्नायात्मिका' होगी। ऋष्यादि-न्यास कर अंगुष्ठ से ही कर-न्यास आरम्भ करे, तो यह विद्या 'उत्तराम्नायात्मिका' होगी। यहाँ इस क्रम में 'उत्तराम्नाय' से उपासना होगी। इस विद्या की प्रयोगानुसार आम्नाय-भेद से उपासना होगी। इसका रहस्य गुरु-वक्त्र-गम्य है। दोनों ही आम्नायों में इनका 'ध्यान' इस प्रकार का एक ही है—

"क्षुत्क्षामा, कोटराक्षी, मसि-मलिन-मुखी, रुदन्ती, मुक्त-केशी, कृष्ण-दंष्ट्रा" हस्त-द्वय में ज्वलद-नल-शिखा तथा उग्र-पाश-धृता—एवं रूपा भद्र-काली मेरी रक्षा करे" ।।७

ततः पश्चिमाम्नायात्मिका सरस्वती (मोहिनी) मातङ्गी की (**वाग्बीज, 'कामिनी-रञ्जिनी' पद तथा ठ-द्वय**) नवाक्षरी विद्या है। सम्मोहन ऋषि, निवृत् छन्द, मोहिनी-मातङ्गी सरस्वती देवता, सरस्वती वीज। इनके 'शक्ति' और 'कीलक' नहीं हैं। **वागन्ते कामिनी, रञ्जिनी, ठ-द्वय**—एवं द्विरावृत्या 'कर-षडङ्ग-न्यास' करे। इनका 'ध्यान' ऐसा है—

दिव्याम्बरां शुक-श्यामां, वीणा-वादन-तत्परां । गीयमानां सदाऽऽनन्दां, मातङ्गीं मोहिनीं भजे ।।

इस मन्त्र में वाग्-वीज न होने से यह विद्या अष्टाक्षरी सम्मोहिनी मातङ्गी होगी। इनका रूप घन-श्यामा है और ये दक्षिणाम्नायात्मिका हैं। इस विद्या का कलि-काल में फल नहीं होता क्योंकि **'लुप्त-बीजाश्च ये मन्त्राः, कलौ नैव फल-प्रदाः'**—शङ्कर की ऐसी उक्ति है ।।८

तत्पश्चात् वायव्याम्नायात्मिका महा-सरस्वती की (**वाणी, काम, वाक्, ततः 'सरस्वत्यै' तथा 'विच्चे'**) सरस्वती नवार्ण-विद्या है। महेश्वर ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, महा-सरस्वती देवता, काम-वीज,

वाणी शक्ति । 'कीलक' नहीं है । षड्-दीर्घ-भाजा स्वर से कर-षडङ्ग-न्यास करे। इनका ध्यान सप्तशती-वर्णित अष्ट-भुजा महा-सरस्वती **'घण्टा-शूलेत्यादि'** प्रसिद्ध ही है ।।९

अब इन सभी विद्याओं की समष्टि उग्राम्नायेश्वरी पश्चिमाम्नायात्मिका त्रि - शक्ति-चामुण्डा में करे । त्रि-शक्ति - चामुण्डा की (**वाणी, माया, काम––ततः 'चामुण्डायै विच्चे**) महा - नवार्ण विद्या है । ब्रह्म-विष्णु-महेश्वरा ऋषय, गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्-छन्दांसि, महाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वती-स्वरूपिणी चामुण्डा देवता, वाणी वीज, माया शक्ति, कामः कीलक । इन तीन वीजों की द्विरावृत्ति कर एक-एक से 'कर-षडङ्ग-न्यास' करे । इनका 'ध्यान' ऐसा है––

ध्यायेच्छ्रीचामुण्डां देवीं, निर्मांसां घोर-दंष्ट्रिकां । कपालाभरणान् सङ्ग्रीं, शवस्थां चोर्ध्व-केशिनीम् ।।
कर्त्रिकां नर-मुण्डं च, धृत्वा तदन्त्र - भोजिनीं । चषके रुधिरं धृत्वा, पिवन्तीं ज्वलन - प्रभाम् ।।
श्मशान-निलयां भीमां, शिवाण्वीत-मध्यगाम् । नव - दुर्गा - समायुक्तां, दक्ष - यज्ञ - विनाशिनीम् ।।१०

एवं दश-क्रम समाप्त कर ब्राह्मणों के लिए 'ब्रह्म - चण्डिका', क्षत्रियों के लिए 'उग्र - चण्डिका', वैश्यों के लिए 'कुब्जि-चण्डिका' (बाल-कुब्जिका) तथा शूद्रों के लिए 'चण्डी' की दीक्षा ग्राह्य है । ऐहिक व्यवहार के लिए ये विद्याएँ अत्यावश्यक हैं । व्यावहारिक कर्म अपने-अपने वर्णानुसार पृथक्-पृथक् हैं ।

ब्रह्म-गायत्री के मन्त्र में ब्राह्मण तीन प्रणव, क्षत्रिय दो प्रणव और वैश्य एक प्रणव लगाकर जप करते हैं । इसी प्रकार 'चण्डिका' की दीक्षा में भी वर्ण के अनुसार भिन्नता होती है । गुप्तार्चनादि में 'देहाभिमान' नहीं रहता, 'आत्माभिमान' रहता है । अतः वर्ण के आधार पर किसी प्रकार की प्रथकता नहीं होती ।

उक्त विद्या पश्चिमाम्नायात्मक है । अतः इनकी उपासना 'कर्म - योग' से होगी । 'त्रि - शक्ति-चामुण्डा' का 'यन्त्र' बनाने के लिए क्रमशः **अधो-मुख त्रिकोण, उसके बाहर षट्-कोण, फिर अष्ट-दल, तब चतुर्विंशति दल और अन्त में चतुर्द्वारात्मक भू-पुर अङ्कित करे ।**

तब महा - नवार्ण के तीन (३) भाग कर पूर्व - वत् ब्रह्म - गायत्री में मिलाकर 'मेधा - दीक्षा' ग्रहण करे ।

तत्पश्चात् श्रीविद्या का महा - सादि-कूट ग्रहण करना चाहिए । इस कूट को 'शक्ति - कूट' कहते हैं । **'भृगु - धातृ-क्षमा - माया'**—एक - कूटाक्षरी विद्या है । शिव ऋषि, पंक्ति छन्द 'आदि-शक्ति देवता, सकार वीज, माया शक्ति, धातृ-क्षमा कीलक । षड्-दीर्घ-भाजा कूट के अन्त में 'सर्वज्ञता-शक्त्यै, नित्य-तृप्ता-शक्त्यै, अनादि-बोधिनी-शक्त्यै, स्वतन्त्रता-शक्त्यै, नित्यमलुप्तता - शक्त्यै' तथा 'अनन्तादि - शक्त्यै' लगाकर कर-षडङ्ग-न्यास करे । ध्यान—

कदम्ब-वन-मध्यगां, कनक-मण्डपान्त-स्थिताम् । षडम्बुरुह-वासिनीममर-सिद्ध-सौदामिनीम् ।।
विजृम्भित-जपा-रुचीं, विमल-चन्द्र-चूडा-मणीम् । त्रियम्बक-कुटुम्बिनीं, त्रिपुर-सुन्दरीमाश्रये ।।

इनका लम्बा ध्यान भी है । लेख-विस्तार-भय से यहाँ नहीं दिया जा रहा है ।

अब इसके बाद 'कादि' (कुण्डलिनी) क्रम ग्रहण कर श्रीविद्या के महा-कादि-कूट (वाग्भव-कूट) का ग्रहण होगा । ये सब बातें आगे देने की चेष्टा करूँगा ।

यहाँ एक शङ्का की बात है । श्रीविद्या की पञ्च-दशी विद्या में तो सबसे प्रथम 'वाग्भव - कूट', तब 'काम-राज-कूट', तब 'शक्ति-कूट' का क्रम बताकर अन्त में 'वाग्भव-कूट' का क्रम बताया है । इसका

तात्पर्य यह है कि कलि-काल में सब प्रकार के योगों में से 'भक्ति-योग' से उपासना करना सुगम है। फिर 'हादि' (हंस) क्रम, जो काम-राज-कूटात्मक है, दक्षिणाम्नाय से; 'सादि' (संवरौधि - क्रम का प्रतिनिधि उपाम्नाय) क्रम, जो शक्ति-कूटात्मक है, पश्चिमाम्नाय में मिलकर पश्चिमाम्नाय से तथा 'कादि' (कुण्डलिनी) क्रम में उत्तराम्नाय से आरम्भ होगा।

दक्षिणाम्नाय में 'भक्ति-योग' से, पश्चिमाम्नाय में 'कर्म-योग' से, उत्तराम्नाय में 'ज्ञान-योग' से उपासना होगी। अतः सबसे प्रथम दक्षिणाम्नाय में 'भक्ति-योग' से उपासना कर जब दृढ़ भक्ति की प्राप्ति होगी, तब ऊर्ध्वाम्नाय में मनोविज्ञान के साथ 'राज-योग' से बाला की उपासना कर मन में एकाग्रता तथा आसन की दृढ़ता की प्राप्ति होगी। तभी उपाम्नाय से अर्द्ध-पश्चिमाम्नाय में कायिक 'कर्म-योग' (जपार्चन, सप्तशती-पाठ, पुरश्चरणादि) से उपासना कर जब मन में त्याग और वैराग्य का भाव प्राप्त होगा, तब उत्तराम्नाय में 'ज्ञान-योग' (श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन) से उपासना कर ज्ञान - प्राप्ति होगी। तब पूर्वाम्नाय में 'मन्त्र-योग' से उपासना कर मन्त्रार्थ तथा मन्त्र-चैतन्य की दृढ़ता की प्राप्ति कर पश्चिमाम्नाय में मानसिक तथा कायिक कर्म - योग से उपासना कर मन को सन्तुष्टि तथा कर्म की पुष्टि प्राप्त होगी। इस प्रकार तीनों ही कूटों का अधिकारी बनकर **'श्रीविद्या-पञ्च-दशी'** की दीक्षा होने का क्रम शङ्करजी ने बताया है।

जब 'पञ्च-दशी' की 'दीक्षा' होगी तब—कादि-कूट, हादि - कूट तथा सादि - कूट—यह त्रिकूटात्मिका विद्या बन जाएगी। एवं क्रिया पूर्ण कर 'पञ्च-दशी दीक्षा' प्राप्त करने से पुनर्जन्म न होगा।

यस्य नो पश्चिमं जन्म, यदि वा शङ्करः स्वयं। तेनैव लभ्यते विद्या, श्रीमत्पञ्च-दशाक्षरी॥

पूर्व ही कह चुका हूँ कि 'कादि' (कुण्डलिनी) क्रम में सबसे प्रथम उत्तराम्नाय का, तत्पश्चात् पूर्वाम्नाय का तथा अन्त में पश्चिमाम्नाय का क्रम होगा। इन सबके महा-क्रम के लिए ३-३ क्रम तथा पूर्ण-क्रम के लिए ५-५ क्रम होंगे। अब यहाँ मैं ५-५ क्रम का वर्णन करता हूँ।

उत्तराम्नाय का पञ्च-क्रम

उत्तराम्नाय का पञ्च-क्रम दो प्रकार का है। एक 'कादि-क्रम', दूसरा 'तारादि-क्रम'। 'तारादि-क्रम' में **हिरण्यकशिपूपासिता शत-वक्त्रा 'गुह्य-काली - विद्या'** भी हैं, अतः यह कष्ट - साध्य क्रम होने के कारण उसे न देकर यहाँ 'कादि - क्रम' दे रहा हूँ। सबसे प्रथम **'तुम्बुरेशी गुह्य - काली'** की त्र्यक्षरी विद्या (**अंकुश, योगिनी तथा साकिनी-वीज**) है। अथर्वण ऋषि, मध्या छन्द, तुम्बुरेश्वरी गुह्य-काली देवता, योगिनी वीज, साकिनी शक्ति, अंकुश कीलक। मूल के एक-एक अक्षर की द्विरावृत्ति कर 'कर - षडङ्ग-न्यास' करे। 'ध्यान'—

ध्यायेत तां त्र्याननां गुह्यां गज-वाजि - नराकृतिः, चतुर्दोर्दण्डितां पाश - वाणांकुश - धनुर्धराम्।
सप्त-सिंहासनारूढ़ां नृत्य-मानां सदोदितां, मुण्ड-माला-धरां रक्तां किंकिणि-जाल-भूषिताम्॥

द्वितीय-क्रम में **'सिद्धि-लक्ष्मी'** की नवाक्षरी विद्या (**श्रुति, त्रपा, कूर्च, चन्द्रार्द्ध - वस्त्र-युत व्योम, साकिनी, चन्द्रोर्ध्व-दन्त-युत-त्रिदश, अंकुश तथा दण्ड**)। नारद ऋषि, वृहती छन्द, सिद्धि - लक्ष्मी देवता, लज्जा बीज, कूर्च शक्ति, मूलस्य चतुर्थ-बीज कीलक। षड्-दीर्घ-भाजा माया से 'कर-षडङ्ग-न्यास' करे। इनका रूप **पञ्च-वक्त्रा, दश-भुजा, श्वेत-वर्णा, रुद्र-स्कन्ध-गता है।**

इनका 'यन्त्र' ऐसा है——विन्दु-यु-क्तअधो-मुख-त्रिकोण, फिर षट् - कोण, फिर अष्ट - दल, फिर द्वादश-दल, फिर त्रि-वृत्त, फिर दो चतुरस्र एक दूसरे को काटते हुए, अन्त में भू-पुर।

अब 'तृतीय-क्रम' में **'सिद्धि-कराली'** (भरतोपासिता गुह्य-काली) के दो भेद हैं—एक कीलिता, दूसरी अकीलिता। पूर्वोक्त मन्त्र में 'कामिनी - वीज' से पूर्व 'क्रोध - वीज' रखने से दूसरी विद्या बन जाएगी। इनमें से 'अकीलिता विद्या' का 'ऋष्यादि-कर-षडङ्ग-न्यास' इस प्रकार का है—अथर्वा ऋषि, जगती छन्द, दोला कीलक, योगिनी शक्ति।

इस विद्या में वीज न होने के कारण 'विनियोग' के न्यास में ऐसा होगा—

प्रथम दोला-कीलकाय नमो नाभौ, ततः योगिनी-शक्तये नमः पादयोः।

मूल-मन्त्र के २, ५, ३, २, २, २ अक्षरों से 'कर-षडङ्ग-न्यास' करे। **इनका रूप 'दशानना' तथा 'चतुः-पञ्चाशद्-भुजा'** है। इनका ध्यान ७० श्लोकों में है। लेख-विस्तार-भय से यहाँ नहीं दे रहा हूँ।

चतुर्थ-क्रम में **'सिद्धि-करालिका'** (रामोपासिता गुह्य - काली) विद्या के भी दो भेद हैं। पूर्वोक्त मन्त्र में षष्ठ और पञ्चम वीज उलट-पलट करने से च्यवनोपासिता 'अकीलिता विद्या' बनेगी। इनका 'ध्यान', 'यन्त्र' तथा 'आवरण-पूजादि' सब 'भरतोपासिता' के समान है। ऋष्यादि-न्यास इनका ऐसा है—परमेष्ठि ऋषि, सु-प्रतिष्ठा छन्द, रामोपासिता गुह्य-काली देवता, दोला वीज, ख-युत-दोला-शक्ति, ह्स-युत-दोला कीलक।

मूल-मन्त्र के २, ५, ३, २, २, ३ वर्णों से 'कर-षडङ्ग-न्यास' करे। इनका यन्त्र इस प्रकार है—**नव-योन्यात्मक यन्त्र, उसके भीतरी त्रिकोण के आधार पर डमरु-यन्त्र, जिसके ऊपरी त्रिकोण के मध्य में विन्दु-युक्त अधो-मुख त्रिकोण हो, फिर नव-योन्यात्मक यन्त्र के बाहर अष्ट-दल, फिर द्वादश - दल, फिर षोडश-दल और तब भू-पुर।**

गुह्य-काली के भेद १८ हैं। उनमें से प्रत्येक के मन्त्र, ध्यान तथा यन्त्र पृथक्-पृथक हैं।

"दश-वक्त्रा षोड़शार्णा चतुःपञ्चाशद्दोर्युता, सर्वासां गुह्य-कालीनां सा वै मुख्य-तमा स्मृता"—

ऐसी महा - काल की उक्ति होने के कारण इस यन्त्र को **'गुह्या - श्रीयन्त्र'** अर्थात् **उत्तराम्नाय का श्रीयन्त्र** माना गया है। अतः **इस यन्त्र में निज-यन्त्राभाव में गुह्य-काली की १८ भेद-विद्याओं की सपर्या हो सकती है।**

अब पञ्चम-वक्त्र में **'काम-कला गुह्य-काली'** (इनको काम-कला काली भी कहते हैं) की अष्टादशाक्षरी विद्या का विनियोग इस प्रकार है—

महा-काल ऋषि, वृहती छन्द, काम-कला-काली देवता, काम-वीज, क्रोध शक्ति। कीलक नहीं है। पञ्च-वीज-मध्ये १-१ वीज तथा नाम के अन्त में १-१ कर प्रत्येक नामाक्षर में नाद-विन्दु लगाकर 'कर-षडङ्ग-न्यास' करे।

इनका 'ध्यान'—**'पक्व-जम्बू-फल-प्रभा, षोडश-भुजा, अति-भीमां, संहार-भैरवेनैव, सार्धं सम्भोग-मिच्छती' इत्यादि २८ श्लोक हैं।**

षोडशार्णा यथा मुख्या सर्व-श्री-चक्र-मध्यगा। तथेयं नव-कालीषु सदा मुख्य-तमा स्मृता॥

इन काम-कला-काली' के विषय में महा-काल का ऐसा वचन होने के कारण नव-काली-मध्ये 'काम-कला-काली' मुख्य मानी गई हैं, परन्तु यह विद्या प्रकृति-रूपा नहीं है, अन्य कालियों जैसी विकृति (काली-कल्प से उपासिता) है। केवल पूर्वोक्त 'दश-वक्त्रा गुह्य-काली' ही प्रकृति - रूपा (श्रीकल्प से उपासिता) है। 'महा-काल-संहिता' में महा-काल की उक्ति है—

दश-वक्त्रातु या प्रोक्ता, गुह्य-काली मया तव। प्रकृतिः सा परि-ज्ञेया कालीनां जगदम्बिका॥

अन्या विकृतयः प्रोक्ताः कार्य-कारण-भेदतः ।

फिर 'वडवानल तन्त्र' में भगवान् शङ्कर की उक्ति है--

महा-त्रिपुर-सुन्दर्याश्चण्ड-योगेश्वरी परा । न तयोर्विद्यते भेदो, भेदकृन्नरकं व्रजेत् ।।

'काम-कला-काली' का 'यन्त्र' इस प्रकार का है–**'क्लीं'-युक्त अधो-मुख त्रि-कोण, फिर त्रि-कोण, फिर तीसरा त्रि-कोण, जिसके ऊपर के दोनों कोणों में क्रमशः 'हूं' और ह्रीं' तथा अधो-कोण में 'क्रीं' अङ्कित है । फिर अष्ट-कोण, तब भू-पुर और भू-पुर के बाहर पुनः अष्ट-कोण ।** इस 'यन्त्र' को 'उत्तराम्नाय काम-कला यन्त्र' कहते हैं ।

उत्तराम्नाय की सर्वाधिकार दीक्षा

इसके बाद **कौलाभिषेक** (लघु-पूर्णाभिषेक), **पादुका दीक्षा** तथा उत्तराम्नाय की **सर्वाधिकार-दीक्षा** ग्रहण करे इस आम्नाय में अपनी-अपनी गुरु-परम्परा के भेद से दिव्यौघादि के नाम पृथक् हो सकते हैं, परन्तु मैं जो जानता हूँ, वह निम्न प्रकार है–

दिव्यौघ—**उड्डीशानन्द-नाथ, कुलेशानन्द-नाथ तथा पूर्णेशानन्द-नाथ ।**

सिद्धौघ—**कामेश्वरानन्द-नाथ, श्रीकण्ठानन्द-नाथ तथा शङ्करानन्द-नाथ ।**

मानवौघ—**अनन्तानन्द-नाथ, पिङ्गलानन्द-नाथ तथा नादानन्द-नाथ ।**

'सर्वाधिकार-विद्या' का विनियोग इस प्रकार है—ॐ **अस्य श्रीगुह्य-काली निर्वाण-मन्त्रस्य** 'श्री-प्रासाद' मन्त्र का उच्चारण कर) **सदा-शिव ऋषिः,** (दोला उच्चारण कर) **वृहती छन्दः, श्रीनिर्वाण-गुह्य-काली देवता, वस्त्र-रेफार्द्ध-चन्द्र-युत-फकार वीजं, वामाक्षी-रेफ-विन्दु-नाद-युत-फकार शक्तिः, दोला कीलकं, योग-सिद्धचर्थे विनियोगः ।**

'फ्रः अस्त्राय फट्' से कर-शुद्धि कर 'षड्-दीर्घ-भाजा दोला-वीज' से 'कर-षडङ्ग - न्यास' करे । इस प्रकार 'सर्वाधिकार-दीक्षा' के पश्चात् 'काम-कला-काली' की 'अष्टादशाक्षरी विद्या' को भाग - त्रय में विभाजित कर 'ब्रह्म-गायत्री' में मिलाकर उत्तराम्नाय **'मेधा-दीक्षा'** ग्रहण करे ।

उत्तराम्नाय की सन्ध्या

'उत्तराम्याय' की **प्रातः - सन्ध्या** में 'सिद्धि - लक्ष्मी' की पूर्वोक्त नवाक्षरी विद्या का जप कर, 'काम-कला काली' का 'सृष्टि-क्रम' से जप करे । इस अवस्था में इनका रूप पूर्वोक्त जैसा ही है, केवल वर्ण--**'उद्यद्-वद्-घनाघनाश्लिष्यज्जवा-कुसुम-सन्निभा'** है ।

'मध्याह्न-सन्ध्या' में भरतोपासिता ' दश-वक्त्रा गुह्य-काली' की पूर्वोक्त षोडशाक्षरी विद्या का जपकर, 'काम-कला काली' का साङ्गोपाङ्ग जप करे । इनका रूप पूर्वोक्त ही है । केवल वर्ण-- **'पक्व-जम्बू-फल-प्रभा'** है ।

'सायं-सन्ध्या' में रामोपासिता 'दश-वक्त्रा गुह्य-काली' की सप्त-दशाक्षरी विद्या का 'संहार-क्रम' से जप करे । इनका रूप पूर्वोक्त ही है, वर्ण-- **'अञ्जनाद्रि-प्रभा-श्यामा'** है ।

'तुरीया-सन्ध्या' में 'सर्वाधिकार-दीक्षा' के मन्त्र का जप करे । तब 'मेधा - दीक्षा' के मन्त्र का जप करे ।

तीन क्रम के लिए 'गुह्या' के १८ भेदों में से कोई एक मन्त्र अपनी गुरु-परम्परा के अनुसार ग्रहण करना चाहिए । तव पूर्वोक्त 'सिद्धि-लक्ष्मी' की नवाक्षरी विद्या का ग्रहण होगा । यहाँ यह उल्लेख्य है कि

जिनकी परम्परा में एकानना, त्र्यानना और पञ्चानना की प्रथा है, उस क्रम में पहले 'गुह्या', तब 'सिद्धि-लक्ष्मी' होगी, परन्तु जिनकी परम्परा में षडानना, सप्तानना तथा नवानना की प्रथा है, उस क्रम में पहले 'सिद्धि-लक्ष्मी', तब 'गुह्या' होगी।

तदनन्तर भरतोपासिता पूर्वोक्त 'दशानना गुह्य-काली' की दीक्षा होकर ३ क्रम समाप्त होंगे। १० से अधिक 'वक्त्रा' ३ क्रम में नहीं हैं। 'महा-क्रम' के लिए पूर्वोक्त ३ क्रम और 'पूर्ण - क्रम' के लिए पूर्वोक्त ६ क्रम ग्रहण कर 'ज्ञान-योग' से उपासना कर ज्ञान प्राप्त करे। अष्ट-पाश की भावना हटाकर 'पूर्वाम्नाय' में आरूढ़ होना चाहिए।

पूर्वाम्नाय के पंच-क्रम

'पूर्वाम्नाय' के **'पञ्च-क्रम'** इस प्रकार है—**प्रथम-क्रम** में 'उन्मनी' की त्र्यक्षरी विद्या—**त्रपा, तार तथा लज्जा—ह्रौंॐह्रौं**। शक्ति ऋषि, गायत्री छन्द, उन्मनी देवता, ह-कार वीज, ईकार शक्ति, **प्रणव** कीलक। प्रत्येक मन्त्राक्षर की द्विरावृत्ति से 'कर-षडङ्ग-न्यास' करे। इनका रूप—**लाल-वर्ण तथा पाशांकुश-वरा भय-करा** है।

'द्वितीय-क्रम' में 'पूर्णेश्वरी' की षडक्षरी विद्या—**तार, माया, रमा, काम तथा नमः—ॐह्रींश्रीं क्लीं नमः**। ब्रह्मा ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, पूर्णेश्वरी देवता, माया वीज, रमा शक्ति, काम कीलक। इनका रूप—**इन्द्र-नील-सम-वर्णा दश-भुजा, नागालङ्कार-भूषिता है।**

'तृतीय-क्रम' में 'भुवना' की माया-वीजात्मक एकाक्षरी विद्या—**ह्रीं**। शक्ति ऋषि, गायत्री छन्द, भुवना देवता, ह-कार वीज, ईकार शक्ति, रेफ कीलक। इनका रूप—**उद्यद्-दिवाकर - निभा, तुङ्ग-कुचा, पाशांकुश-वराभय-करा** है।

यहाँ एक शङ्का की बात है। 'माया-वीज' तो पूर्व के कितने ही मन्त्रों के अन्तर्गत है ही। फिर यहाँ उसी अकेले वीज की दीक्षा कैसी? इस शङ्का का समाधान यह है कि जब यह 'माया-वीज' अकेले ही उच्चारित होगा, तब इसका तत्त्व ही अलग होगा और इसका प्रणव-जैसा गूढ़ार्थ होगा। अतः इस वीज को 'देवी-प्रणव' मानते हैं।

'चतुर्थ - क्रम' में 'भुवनेश्वरी' की त्र्यक्षरी विद्या—**वाग्-वीज, माया तथा वाणी—ऐं ह्रींश्रीं।** शक्ति ऋषि, गायत्री छन्द, माया वीज, वाणी शक्ति। कीलक नहीं है। षड्-दीर्घ-भाजा माया—वाणी (ह्रां श्रां, ह्रीं श्रीं इत्यादि) से पुटित कर 'कर-षडङ्ग-न्यास' करे। इनका रूप—**श्यामाङ्गी, वर-रक्तोत्पल-रत्न-चषकाभय-करा** है।

'पञ्चम-क्रम' में 'भुवनेश्वरी' की पञ्चाक्षरी विद्या—**वाग्-वीज, माया, रमा, वाणी तथा लज्जा ऐं ह्रीं श्रीं ऐं ह्रौं।** इनको 'भुवन-सुन्दरी' भी कहते हैं। सदाशिव ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, महा-भुवनेश्वरी देवता, लज्जा वीज, वाणी शक्ति, रमा कीलक। षड्-दीर्घ-भाजा माया-वीज (ह्रां ह्रीं इत्यादि) से 'कर-षडङ्ग-न्यास' करे। इनका रूप सृष्टि-क्रम में इस प्रकार है—

भजे भुवन-सुन्दरीमरुण-नील-शुभ्रानन-त्रयां। त्रि-नयनाम्बुजां धृत - वर - त्रिशूलांकुशाम् ॥
सु-पाश-डमरु-करामभयदां सरोज-स्थितां। स्मितां शशि-धरां परामरुण-वस्त्र-भूषोज्ज्वलाम् ॥

'स्थिति-क्रम' में इनका रूप (ध्यान) इस प्रकार है—

ध्यायेद् ब्रह्मादिकानां कृत-जनि-जननीं योगिनीं योग-योनीम् । देवानां जीवनायोज्ज्वलित जय-पर-ज्योतिरुग्राङ्ग-धात्रीम् ।। शङ्खं चक्रं च वाणं धनुरपि दधतीं दोश्चतुष्काम्बु-जातैः । मायामाद्यां विशिष्टां भव-भव-भुवनां भू-भुवाभार-भूमीम् ।।

'संहार-क्रम' में इनका रूप (ध्यान) इस प्रकार है—

शूलासि-शक्ति-वरदाभय-पौण्ड्र-चाप-पुष्पेषु-पात्र-डमरुश्च तथाऽक्ष-सूत्रम् ।
विभ्रत्-कराम्बुज-तलैश्च शवाधिरूढां । श्यामां भजे भगवतीं भव-भीति-हन्त्रीम् ।।

'पूर्वाम्नाय-क्रम' की इन सब पूर्वोक्त शक्तियों के 'यन्त्र' एक ही जैसे हैं। यथा—**षट्-कोण, फिर अष्ट-दल, तब षोडश-दल और उसके बाद चतुर्द्वारात्मक भू-पुर ।**

इस 'यन्त्र' को **'पूर्वाम्नाय श्रीयन्त्र'** भी कहते हैं। 'महा-क्रम' के लिए उन्मनी, पूर्णेश्वरी तथा भुवनेश्वरी। 'पूर्ण-क्रम' के लिए पूर्वोक्त ५ क्रम ग्रहण करने चाहिए। अब इसके बाद 'कौलाभिषेक' (पूर्णाभिषेक) ग्रहणकर 'पादुका-दीक्षा' ग्रहण करे। इस आम्नाय में भी अपनी-अपनी गुरु-परम्परा-भेदानुसार दिव्यौघादि के नाम पृथक्-पृथक् होते हैं, परन्तु जो मैं जानता हूँ, इस प्रकार हैं—

दिव्यौघ—**१ पर - प्रकाशानन्द - नाथ, २ परमेशानन्द - नाथ, ३ पर-शिवानन्द-नाथ, ४ कामेश्वर्यम्बा, ५ मोक्षानन्द-नाथ, ६ कामानन्द-नाथ तथा ७ अमृतानन्द-नाथ ।**

पूर्वाम्नाय की सर्वाधिकार दीक्षा

सिद्धौघ—**१ ईशानानन्द-नाथ, २ तत्पुरुषानन्द-नाथ, ३ अघोरानन्द-नाथ, ४ वामदेवानन्द-नाथ तथा ५ सद्योजातानन्द-नाथ**

मानवौघ—**१ पञ्चोत्तरानन्द-नाथ, २ परमानन्द-नाथ, ३ सर्वज्ञानन्द-नाथ, ४ सर्वानन्द - नाथ, ५ सिद्धानन्द-नाथ, ६ गोविन्दानन्द-नाथ तथा ७ शङ्करानन्द-नाथ ।**

अब पूर्वाम्नाय की 'सर्वाधिकार-दीक्षा' ग्रहण करे।

विनियोग—**ॐ अस्य श्रीभुवनेश्वरी-महा - निर्वाण - मन्त्रस्य शक्ति ऋषिः, गायत्री छन्दः, श्री-निर्वाण - भुवनेश्वरो देवता, ह - कार बीजं, ईकार शक्तिः, रेफः कीलकम्, चतुर्विध - पुरुषार्थ - सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।**

'भ्रः अस्त्राय फट्' से कर-शुद्धि कर उसी वीज के षड्-दीर्घ-भाजा से 'कर-षडङ्ग - न्यास' करे। तब भुवनेश्वरी की पञ्चाक्षरी विद्या के एक, दो तथा दो वीजों से पूर्व-वत् 'ब्रह्म-गायत्री' में मिलाकर **'मेधा-दीक्षा'** ग्रहण करनी चाहिए।

पूर्वाम्नाय की सन्ध्या

अब पूर्वाम्नाय की सन्ध्या का वर्णन करता हूँ। **प्रातः-काल** पूर्वोक्त 'उन्मनी' की त्र्यक्षरी विद्या का जप कर, 'भुवनेश्वरी' की पञ्चाक्षरी विद्या का 'सृष्टि-क्रम' से जप करे।

'मध्याह्न-काल' में 'पूर्णेश्वरी' की पूर्वोक्त षडक्षरी विद्या का जप कर, 'भुवनेश्वरी' की पञ्चाक्षरी विद्या का 'स्थिति-क्रम' से जप करे।

'सायं-काल' में 'भुवनेश्वरी' की पूर्वोक्त त्र्यक्षरी विद्या का जप कर, 'भुवनेश्वरी' की पञ्चाक्षरी-विद्या का 'संहार-क्रम' से जप करे।

'निशा-काल' में पूर्वाम्नाय 'सर्वाधिकार-दीक्षा' का जप करे। तब मेधा-दीक्षा का जप करे।

इस पूर्वाम्नाय में 'मन्त्र-योग' से उपासना कर मन्त्र-ज्ञान को सिद्ध कर पश्चिमाम्नाय में आरूढ़ होना चाहिए। 'मन्त्र-योग' का मतलब केवल जप ही नहीं है, अन्य प्रकार के योगाभ्यास-क्रम भी हैं, जो गुरु-कृपा से सीख लेने चाहिए।

पश्चिमाम्नाय (कुब्जिका-विद्या) के पंच-क्रम

'पश्चिमाम्नाय' की नायिका 'कुब्जिका' हैं। इनकी उपासना के दो भेद हैं—१ नवात्म-मत, २ शिखा-स्वच्छन्द-मत। 'नवात्म-मत' में विद्याओं के विनियोग और ऋष्यादि-न्यास नहीं होते, केवल 'सङ्कल्प' से ही कर्म का आरम्भ हो जाता है। मैं 'शिखा-स्वच्छन्द-मतावलम्बी' हूँ, इस मत के अनुसार 'पश्चिमाम्नाय' के 'पञ्च-क्रम' इस प्रकार हैं—सबसे प्रथम **'समया-कुब्जिका'** की द्वा-त्रिंशाक्षरी विद्या—**नमो भगवत्यै श्रीकुब्जिकायै ह्स्रां ह्स्रीं ह्स्रूं ङञणनमे अघोर-मुखि छ्रां छ्रीं किणि किणि विच्चे।**

उक्त ३२ अक्षरवाले मन्त्र में **'श्रीकुब्जिकायै'** के स्थान में **'कुब्जिकायै'** करे और प्रारम्भ में **'ह्स्रां ह्स्रीं ह्स्रूं मम कुब्जिके जीवितं'** यह ११ अक्षरोंवाला 'कूट' जोड़े, तो ४२ अक्षरोंवाला मन्त्र बन जाता है।

ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वरादि ऋषयः, गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्-वृहती-पंक्तिस्त्रिष्टुप् छन्दांसि, कुब्जिकेश्वरी देवता, विद्यायाः सप्तम-कूटं वीजं, त्रयोदश-कूटं शक्तिः, षड्-विंशद्-वीजं कीलकम्।

विद्याऽऽद्या के विलोमानुलोम-पद का विलोम उच्चारण कर करतल-पृष्ठ-कनिष्ठिका से आरम्भ कर अंगुष्ठ तक, फिर अनुलोम-उच्चारण से अंगुष्ठ से कनिष्ठिका-करतल-पृष्ठ तक 'कर-न्यास' करे। 'कर-न्यास' के पहले वाणी-वीज का उच्चारण कर **'किणि-किणि विच्चे कोङ्कणयह्ल'** इस मन्त्र से कर-शुद्धि करे। इस प्रकार 'कर-न्यास' और 'षडङ्ग-न्यास' करे। 'षडङ्ग-न्यास' कुब्जिका-विद्या के सभी द्वाविंशाक्षर मन्त्रों का एक ही है, जो निम्न प्रकार है—

नमो भगवत्यै हृत्-कमलायै हृदयाय, श्री कुब्जिकायै कुल-दीपायै शिरसे, ह्स्रां ह्स्रीं ह्स्रूं वर्वर-शिखायै, ङञणनमे अघोर-मुखि बहु-रूपायै कवचाय, छ्रां छ्रीं कुलजमहं-तारिके नेत्र-त्रयाय, किणि किणि विच्चे कवचोर्वाणायै अस्त्राय।

इस प्रकार अनुलोम-विलोम पञ्च-तार से पुटित कर विलोम से करे। न्यास में भी 'श्री' के बदले पूर्वोक्त कूट हो। यह विद्या अतीव गोप्या, रहस्य-मयी, दुष्प्राप्या और क्षिप्र-फलदा है।

कुब्जिका विद्या के द्वा-त्रिंशद्-भेदों के ध्यान भी समान हैं। **उनका रूप आकाश-वर्ण-वाले अष्टादश-भुज कुब्जिकेश्वर के वामाङ्क में अरुणा, वराभयकरा, एकानना कुब्जिका विराजमाना हैं।**

द्वितीय-क्रम में **'घोर-कुब्जिका'** की द्वा-त्रिंशाक्षरी विद्या (**'समया-कुब्जिका'**-वत्, केवल **'ङञणनमे'** पद के स्थान पर **'घोरे अघोरे'** पद होगा)। 'ऋष्यादि-न्यास' व 'कर-शुद्धि' 'समया-कुब्जिका'-वत्। 'कर-न्यास घोर-कुब्जिका मन्त्र से करे, शेष पूर्वोक्त 'समया-कुब्जिका-वत्'। 'षडङ्ग-न्यास' और 'ध्यान' भी पूर्वोक्त **कुब्जिकेश्वराङ्क-स्थितैकानना कुब्जिका** के समान।

तृतीय-क्रम में 'वीर-कुब्जिका' की द्वा-त्रिंशाक्षरी विद्या (समया-कुब्जिका-वत् केवल **'छ्रां छ्रीं'** के बदले **'छ्रां छ्रीं'**, **'ए'-कार-युत** कूट के स्थान में **'ए'-कार** तथा 'आ' कार, फिर **'कुब्जिकायै'** के स्थान में **'कुब्जिके'** होगा)।

ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वरादि ऋषि, गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्-वृहती-पंक्तिस्त्रिष्टुप् छन्द, वीर-कुब्जिका देवता, मन्त्र का सप्तम-कूट वीज, त्रयोदश-कूट शक्ति, षड्-विंशद् वीज कीलक।

'कर-शुद्धि' पूर्वोक्त-वत् करे। 'कर-न्यास' 'वीर-कब्जिका' मन्त्र से करे। शेष, पूर्वोक्त 'समया-कुब्जिका' के समान। 'ध्यान'—**'नीलाति-श्वेत-रक्ताभ'** इत्यादि। अर्थात् **इनका रूप नील, श्वेत तथा रक्त-वर्ण का त्र्याननी और षड्-भुजा है।**

अब 'चतुर्थ-क्रम' में **वज्र-कुब्जिका** की द्वा-त्रिंशाक्षरी विद्या—**ऐं सौः सः हां क्षोभ-कारिणि त्रीं स्त्रीं ह्लीं कामाङ्ग-द्राविणि ह्स्ख्फ्रें त्रैलोक्याकर्षिणि ऐं वज्र-कुब्जिनि ऐं।**

ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वरादि ऋषयः, गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्-वृहती-पंक्तिस्त्रिष्टुप् छन्दांसि, श्रीमद्-वज्र-कुब्जिका देवता, ऐं वीजं, सौः शक्तिः, स्त्रीं कीलकम्।

इनका षडङ्ग-न्यास भिन्न है। **'ऐं कोङ्कणाय विच्चे किणि किणि ह्लः'** मन्त्र से कर-शुद्धि करे। तब विद्या के विलोमानुलोम पद के अनुलोम उच्चारण को विलाम-पद द्वारा कर करतल-पृष्ठ-कनिष्ठिका से आरम्भ कर अंगुष्ठ तक, फिर अनुलोम-पद द्वारा अंगुष्ठ से आरम्भ कर कनिष्ठिका-करतल-पृष्ठ तक कर-न्यास करे। फिर विलोमानुपद - मूल के अनुलोम-पद से हृदयादि-षडङ्ग-न्यास कर पूर्वोक्त 'समया-कुब्जिका' का षडङ्ग-न्यास करे। ध्यान **'पञ्च-वक्त्रा, दश-भुजा, परापर-कुल-रूपा'** है।

पञ्चम क्रम में **'अघोर-कुब्जिका'** की द्वा-त्रिंशाक्षरी विद्या—**ह्रौं रुद्र-रूपे ह्लः लूं सः फ्रें सर्वत्र सर्व-सर्वे हं क्षं हूं घोर-घोर-तरे ह्रीं घोरे ऐं ह्रीं घोरे।**

अघोर ऋषिः, विराट् छन्दः, श्रीमदघोर-कुब्जिका देवता, परा वीजं, सम्वर्त्तेन्दु-लकुली शक्तिः, दोग्ध्री कीलकम्।

'ह्लः अस्त्राय फट्' मन्त्र से कर-शुद्धि करे। पूर्वोक्त वज्र-कुब्जिका के ढङ्ग से मूल-मन्त्र का कर-षडङ्ग-न्यास कर पूर्वोक्त समया-कुब्जिका का षडङ्ग-न्यास करे। इनका रूप षड्-वक्त्रा है।

कुब्जिका-विद्या का अर्चन-क्रम

कुब्जिका विद्या के पञ्च क्रम उक्त प्रकार हैं, परन्तु अर्चनादि में इनका क्रम है—१ अघोर-कुब्जिका, २ वज्र-कुब्जिका, ३ समया-कुब्जिका, ४ घोर-कुब्जिका तथा ५ वीर-कुब्जिका। इस विद्या को 'कुब्जिका-पञ्च-रत्न-विद्या' कहते हैं। नेपाल में इन्हें 'अघोर-वज्र-वत्तिशी-त्रयं' सङ्केत से पुकारते हैं। जो लोग इनका त्रि-क्रम ग्रहण करते हैं, उनका—१ समया-कुब्जिका, २ घोर-कुब्जिका तत्पश्चात् ३ वीर-कुब्जिका। इस प्रकार 'त्रि-रत्न-विद्या' का क्रम होगा। नेपाल में इन्हें 'वत्तिशी-त्रयं' सङ्केत से पुकारते हैं।

सभी शक्तियों के दक्ष ओर उनके भैरव की पूजा होती है, परन्तु 'तारा-विद्या' के शिर की जटा में और 'कुब्जिका-विद्या' के वाम ओर भैरव की सपर्या होती है।

पश्चिमाम्नाय की सर्वाधिकार दीक्षा

इसके बाद 'कौलाभिषेक' (लघु-पूर्णाभिषेक), पादुका-दीक्षा तथा 'पश्चिमाम्नाय की सर्वाधिकार-दीक्षा' ग्रहण करे। इस आम्नाय के दिव्यौघादि गुरुओं के नाम इस प्रकार हैं—

दिव्यौघ—अघोरानन्द-नाथ, घोरानन्द-नाथ तथा घोर-घोर-तरानन्द-नाथ।

सिद्धौघ—तत्परानन्द-नाथ, सर्वानन्द-नाथ तथा रुद्रानन्द-नाथ।

मानवौघ--ह्लाँकारानन्द-नाथ, ह्लींकारानन्द-नाथ तथा ह्लूँकारानन्द-नाथ।

अन्य आम्नायों में 'गुरु - चतुष्टय' का क्रम है--१ गुरु, २ परम गुरु, ३ परापर गुरु तथा ४ परमेष्ठि गुरु, परन्तु 'कुब्जिका' के पश्चिमाम्नाय में है--१ परमेष्ठि गुरु, २ परापर गुरु ३ परम गुरु तथा ४ गुरु।

पश्चिमाम्नाय सर्वाधिकार-विद्या **'निर्वाण-कुब्जिका'** के 'विनियोग' तथा 'कर-षडङ्ग-न्यास' इस प्रकार हैं--

ॐ पञ्च-तारान्ते अस्य श्रीनिर्वाण-श्रीकण्ठ-नाथ-महा-मन्त्रस्य भैरवाग्नि ऋषिः, त्रिष्टुप् छन्दः, श्रीनिर्वाण-कुब्जिका देवता, ह्लां बीजं, ह्लीं शक्तिः, ऐं कीलकं, राज्य-मोक्ष-सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

'ह्लः अस्त्राय फट्' इति कर-शुद्धिः। षड्-दीर्घ-भाजा माया (**'ह्लां ह्लीं'** आदि) से 'कर-षडङ्ग-न्यास' करे। यहाँ 'कर-न्यास' अंगुष्ठ से ही होगा।

स्नातक ब्रह्मचारी और यति लोग तथा ऊर्ध्वाम्नाय का क्रम ग्रहण न कर केवल पश्चिमाम्नाय में ही रहनेवाले साधक **'अघोर-कुब्जिका'** की 'द्वा-त्रिंशाक्षरी विद्या' को तीन भागों में विभाजित कर पूर्व-वत् ब्रह्म-गायत्री में मिलाकर पश्चिमाम्नाय की मेधा-दीक्षा ग्रहण करें। त्रिकाल-सन्ध्या में सृष्टि, स्थिति तथा संहार-क्रम से **'अघोर-कुब्जिका'** का जप करें। इनके मेधा-मन्त्र का ही जप करें।

ऊर्ध्वाम्नाय-क्रम ग्रहण करनेवाले गृहस्थ लोग 'वज्र - कुब्जिका' की 'द्वा-त्रिंशाक्षरी' विद्या को तीन भागों में विभाजित कर पूर्व-वत् ब्रह्म-गायत्री में मिलाकर पश्चिमाम्नाय की 'मेधा-दीक्षा' ग्रहण करें। सन्ध्या भी इन्हीं के क्रम से करें।

कुब्जिका विद्या का पश्चिमाम्नाय का 'श्री-यन्त्र' इस प्रकार है—**विन्दु-युक्त अधो - मुख त्रिकोण, षट्-कोण, अष्ट-दल, अष्ट-कोण, अन्त में त्रिरेखात्मक भूपुर।**

'कुब्जिका-विद्या' और **'उग्र-चण्ड-विद्या'** के प्रत्येक मन्त्र के जप-पूजादि के प्रयोग में प्रति मन्त्र को **'पञ्च-तार'** द्वारा आदि में अनुलोम और अन्त में विलोम-क्रम से पुटित करना चाहिए।

पश्चिमाम्नाय की सन्ध्या

गृहस्थों के लिए 'सन्ध्या-विधि' का वर्णन करता हूँ।

प्रातः-काल 'समया-कुब्जिका' का पूर्वोक्त न्यास कर ध्यान करे—

तरुण-रवि-निभास्यां, सिंह-पृष्ठोपविष्टां। कुच-भर-नमिताङ्गीं, सर्व-भूषाभिरामाम्॥

अभय-वरद-हस्तामेक-वक्त्रां त्रिनेत्रां। मद-मुदित-मुखाब्जां, कुब्जिकां चिन्तयामि॥

इस सन्ध्या की अवस्था में भैरवाङ्क-स्थित रूप 'कुब्जिका' के सभी मन्त्रों में प्रयुक्त होता है। यह रूप 'वज्र-कुब्जिका' का सृष्टि-रूप माना जाता है।

ध्यान कर 'समया-कुब्जिका की 'द्वा-त्रिंशाक्षरी'-विद्या का जपकर सृष्टि-क्रम से 'वज्र-कुब्जिका' का जप करे। **सृष्टि-क्रम** में इनका ध्यान **'वृषभे संस्थितं देवं'** इत्यादि है।

मध्याह्न-काल में 'वीर-कुब्जिका' विद्या का पूर्वोक्त स्थिति-क्रम से 'वज्र-कुब्जिका विद्या' का जप करे। **स्थिति-क्रम** में इनका ध्यान **'परापर-कला-रूपा'** इत्यादि तथा कुब्जिकेश्वर का रूप **'पञ्च - वक्त्रं दश-भुजं'** इत्यादि है। भैरव के वामाङ्क-स्थिता 'कुब्जिका' का ध्यान करे।

सायं-काल 'अघोर-कुब्जिका विद्या' का जप कर संहार-क्रम से 'वज्र-कुब्जिका' विद्या का जप करे। **संहार-क्रम में इनका ध्यान है—**

दोर्भिः खट्वाङ्ग-विद्या-मुशर-जप-वटी-पाण्डु-जन्यांश्च दक्षैः ।
खड्गादर्श-त्रिशूलांकुश-मणि-गुटिका-चाप-वाणंर्दधानाम् ।।
नीलाङ्गीं षट्-प्रकारां रस-मुख-कमलामष्ट-नागेन्द्र-भूषाम् ।
वन्दे कुब्जिकाम्बां मद-मुदित-मुखीं वज्र-सिंहासनस्थाम् ।।

निशा-काल में पश्चिमाम्नाय सर्वाधिकार-दीक्षा का साङ्गोपाङ्ग जप करे। तब मेधा-दीक्षा का जप करे। इनकी मेधा-दीक्षा के साथ ही 'चतुरन्वय शाम्भव' की दीक्षा होगी। 'चतुरन्वय' का अर्थ है चार चक्रों की शाम्भव विद्या का समन्वय करना। इस कर्म में विशुद्धि - चक्र में 'विच्चेश्वर शाम्भव' अनाहत-चक्र में 'हंसेश्वर शाम्भव', स्वाधिष्ठान-चक्र में 'द्वीपेश्वर शाम्भव' न होकर 'सम्वर्त्तेश्वर शाम्भव' तथा मूलाधार-चक्र में 'नवात्मेश्वर शाम्भव' —ये ४ शाम्भव होंगे।

पश्चिमाम्नाय में 'कर्म-योग' से उपासना होगी। अतः इस विद्या में कम-से-कम दो - तीन मास गुरु के साथ रहकर बहिर्याग की हस्त-क्रिया तथा अन्तर्याग की कुण्डली-क्रिया सीखकर उपासना करनी चाहिए। यह आम्नाय बड़ा कठिन है। पग-पग में गुरु की आवश्यकता पड़ेगी। यह विद्या प्रत्यक्ष शीघ्र-फलदा और ऐहिक फल देनेवाली है, परन्तु कर्म में तनिक मात्र त्रुटि होगी, तो शीघ्र ही विघ्न पड़ जायगा।

पश्चिमाम्नाय (श्रीविद्या महा-कादि-कूट) के पंच-क्रम

अब श्रीविद्या का **'महा-कादि-कूट'** ग्रहण करना चाहिए। इस कूट को **'वाक्-कूट'** एवं **'कूटाक्षरी विद्या'** कहते हैं। 'मन्त्रोद्धार' है—**'ब्रह्म-झिंटीश-गोविन्द-धरा-माया'** अर्थात् **'कएईलह्रीं'**। ऋष्यादि निम्न प्रकार हैं—

ब्रह्मा ऋषिः, गायत्री छन्दः, वागधीश्वरी देवता, क वीजं, ह्रीं शक्तिः, ए-ई कीलकं।

षड्-दीर्घ-भाजा इस कूट के अन्त में **'ब्रह्म-वाग्-रूपिण्यै, रुद्र-वाग्-रूपिण्यै, शिव - वाग् - रूपिण्यै'** तथा **'अखिल-वाग्-रूपिण्यै'** लगाकर कर-षडङ्ग-न्यास करे। ध्यान—

शुक्लां स्वच्छ-विलेप-माल्य-वसनां शीतांशु-खण्डोज्ज्वलाम्,
व्याख्यामक्ष-गुण सुधाढ्य-कलशं विद्यां च हस्ताम्बुजैः।
विभ्राणां कमलासनां कुच-नतां वाग्-देवतां सस्मिताम्,
वन्दे वाग्-विभव-प्रदां त्रिनयनां सौभाग्य-सम्पत्करीम् ।

इसके बाद 'श्रीविद्या पञ्च-दशी' (पूर्वोक्त कादि-वाग्-भव कूट : **'कएईलह्रीं**, हादि - काम - राज कूट : **'हसकहलह्रीं'**, तत् - पश्चात् सादि - शक्ति कूट : **'सकलह्रीं'**) विद्या ग्रहण करे। फिर पादुका-दीक्षा चतुष्कूटा विद्या (पूर्वोक्त 'पञ्च-दशी विद्या' के अन्त में **'स्वर-भग-विन्दु माली लल-शिव-जीव-स्मर-शम्भु-धरा-भृगु काम-क्षमा-माया'**—यह त्रयोदशाक्षरात्मक कूट : **'क ए ई ल ह ल क ह ल स क ल ह्रीं'** लगाना होगा) ग्रहण कर कौलाभिषेक (लघु-पूर्णाभिषेक) ग्रहण करना चाहिए। तदनन्तर पञ्च-दशी के तीन कूट पूर्वोक्त-वत् ब्रह्म-गायत्री में मिलाकर 'मेधा-दीक्षा' ग्रहण करे।

श्रीविद्या में तीन मत हैं—१ हयग्रीव (इसमें पाशव कल्प से उपासना होती है), २ आनन्द-भैरव और ३ दक्षिणा-मूर्ति (केवल वीर - दिव्य - कल्प से)। दूसरा मत प्रायः लोक - प्रचलित है, परन्तु तीसरा मत सर्वोत्तम और अतीव गोप्य है। इसमें 'पश्चिमाम्नाय' की हस्त-क्रिया आवश्यक है।

अब तीनों ही मतों की 'पञ्च-दशी-विद्या' के ऋष्यादि-न्यास का वर्णन करता हूँ। 'हयग्रीव-मत' में–हयग्रीव ऋषिः गायत्री छन्दः, श्रीललिता-त्रिपुर-सुन्दरी देवता, वाक् - कूटं वीजं, शक्ति - कूटं शक्तिः, काम-कूटं कीलकम्।

'आनन्द भैरव-मत' में––आनन्द - भैरव ऋषिः (अथवा परम्परा-भेद से दक्षिणा-मूर्ति ऋषिः), गायत्री छन्दः (अथवा परम्परा-भेद से पंक्तिश्छन्दः), श्रीमन्महा-त्रिपुर-सुन्दरी पञ्च-दशी देवता, वाक्-कूटं वीजं, शक्ति-कूटं शक्तिः, काम-कूटं कीलकम्।

'दक्षिणा-मूर्ति-मत' में—दक्षिणामूर्ति ऋषिः, पंक्तिश्छन्दः, श्रीमन्महा-त्रिपुर-सुन्दरी पञ्चदशी देवता, वाक्-कूटं बीजं, शक्ति-कूटं शक्तिः, काम-कूटं कीलकम्।

'कर-न्यास' तीनों ही मत के एक ही हैं। 'ऐं आं सौः'–इन तीन वीजों की द्विरावृत्ति कर मध्यमाऽनामिका-कनिष्ठिकांगुष्ठ-तर्जनी-करतल-पृष्ठ में कर-शुद्धि कर पूर्वोक्त तीन कूटों की द्विरावृत्ति कर कर-षडङ्ग-न्यास करे। चतुष्कूटा में ऋष्यादि, कर-षडङ्ग-न्यास––सब पूर्व-वत् हैं, केवल नाम में 'चतुष्कूटा महा-त्रिपुर-सुन्दरी देवता' और न्यास के पश्चात् चतुर्थ-कूट से व्यापक (सर्वाङ्गे) होगा।

'पञ्चदशी विद्या' का भी पूर्वोक्त-वत् प्रातः-काल में सृष्टि-क्रम से, मध्याह्न-काल में स्थिति-क्रम से, सायं-काल में संहार-क्रम से और निशा-काल में 'चतुष्कूटा' का जप कर 'मेधा-दीक्षा' का जप करे। इनका रूप सृष्टि, स्थिति और संहार-क्रम से तीन प्रकार का है। यथा—

सृष्टि-क्रम में—विन्दु-त्रिकोण-वसु-कोण-दशार-युग्मं, मन्वस्र-नाग-दल-सङ्गित-षोडशारम्। वृत्त-त्रयं च धरणी-सदन-त्रयं च, मध्य-स्थितां भगवतीं त्रिपुरां नमामि ।। सूर्येन्द्वग्नि-मयैक-पीठ-निलयां बालार्क-बिम्बारुणाम्, त्र्यक्षां चन्द्र-कलावतंस-मुकुटां पीन-स्तनीं सुन्दरीम्। पाशं चांकुशमिक्षु-चाप-विधृतां पुष्पेषु-हस्तां पराम्, नाना-भरण-भूषितातिसुकुमाराङ्गीं भजे वन्दवे ।।

स्थिति-क्रम में––भू-बिम्ब-चक्रमथ षोडश चाष्ट-विन्दुरग्न्यष्ट-संयुत-मह-त्रितयं दशारम्। वेदार-संयुत-दशास्पद-मध्य-रूपां, त्वां वै महा-त्रिपुर-सुन्दरीं नौम्यहं श्रि ।। ऐङ्कारासन-गर्भितानल-शिखा-शौक्लीं कलां विभ्रतीम्, सौवर्णाम्बर-धारिणीं वर-सुधां धौतां त्रिनेत्रोज्ज्वलाम्। वन्दे पुस्तक-पाशमंकुश-धरां स्रग्-भूषितामुज्ज्वलाम्, त्वां गौरीं त्रिपुरां परात्पर-कलां श्रीचक्र-सञ्चारिणीम्।

संहार-क्रम में––भू-वेश्मग-त्रिवृत्त-षोडश चाष्ट-शक्र- दिग्-युग्म-वस्वनल-कोणग-विन्दु-मध्ये। सिंहासनोपरि-गतारक-पीठ-मध्ये, प्रोत्फुल्ल-पद्म-नयनां त्रिपुरां भजेऽहम्। स्मरे प्रथम-पुष्पिणीं रुधिर-विन्दु-नीलाम्बराम्, गृहीत-मधु-पात्रिकां स्मर-विघूर्ण-नेत्राञ्चलाम्, घन-स्तन-भरोन्नतां गलित-चूलिकां श्यामलां, त्रिलोचन-कुटुम्बिनीं त्रिपुर-सुन्दरीमाश्रये।

इनकी 'मेधा - दीक्षा' के साथ ही 'परमेश्वर - शाम्भव' को ग्रहण करना चाहिए, जो आज्ञा-चक्र में हैं।

विनियोग–शब्द-ब्रह्म ऋषिः, गायत्र्यादि नाना-विधानि छन्दांसि, परमात्मा देवता, वाणी वीजं।

व्योम-भृगु-रेफ-युत - फकार (ह्स्फ्र) के षड् - दीर्घ-भाजा (ह्स्फ्रां, ह्स्फ्रीं आदि) से 'कर-षडङ्ग-न्यास' करे।

ध्यान—प्रकाश-मध्ये स्थिति-चित्-स्वरूपां, वराभयेदं दधतीं त्रिनेत्राम्, सिन्दूर-वर्णामति-कोमलाङ्गीं, माया-मयीं नमामि।

'पञ्च-दशी' के मन्त्रान्तर के भेद बहुत हैं। उनमें से पूर्वोक्त 'कादि - पञ्च - दशी' सर्वोत्तम है। 'हादि-पञ्च-दशी' को 'लोपामुद्रा-पञ्च-दशी' भी कहते हैं। फिर 'सादि-पञ्च-दशी' को 'नान्दि-पञ्च-दशी' भी कहते हैं। 'पञ्च-दशी' के मन्त्रों के सब भेदों में ये ही तीन भेद मुख्य माने गए हैं। 'दक्षिणामूर्ति-मत' में गुर्वौघों के नाम निम्न प्रकार हैं—

दिव्यौघ—**पर-शिवानन्द-नाथ पर-शक्ति-देव्यम्बा, कौलिकानन्द - नाथ शुक्ला - देव्यम्बा तथा कुलेश्वरानन्द-नाथ कामेश्वरी-देव्यम्बा।**

सिद्धौघ—**भोगानन्द-नाथ, क्लिन्नानन्द-नाथ तथा सहजानन्द-नाथ।**

मानवौघ—**गगनानन्द-नाथ, विश्वानन्द-नाथ, विमलानन्द-नाथ, मदनानन्द - नाथ, भुवनानन्द-नाथ, लीलानन्द-नाथ, स्वात्मानन्द-नाथ तथा प्रियानन्द-नाथ।**

(षोडशी में विशेष) परौघ—**श्रीविद्यानन्द - नाथात्मक चर्यानन्द - नाथ, उड्डीशानन्द - नाथ, प्रकाशानन्द-नाथ, विमर्शानन्द-नाथ तथा आनन्दानन्द-नाथ। इति प्रथमः।**

षष्ठीशानन्द-नाथ, ज्ञानानन्द-नाथ, सत्यानन्द-नाथ तथा पूर्णानन्द-नाथ। इति द्वितीयः।

मित्रेशानन्द-नाथ, स्वभावानन्द-नाथ, प्रतिभानन्द-नाथ तथा सुभगानन्द-नाथ। इति तृतीयः।

'आनन्द-भैरव-मत' में भी बहुत-सी परम्पराओं में ऐसा ही है, परन्तु किसी - किसी परम्परा में नाम भिन्न हैं। यथा—

दिव्यौघ—**पर-प्रकाशानन्द-नाथ, पर-विमर्शानन्द-नाथ, कामेश्वर्यम्बा, मोक्षानन्द-नाथ, अमृतानन्द-नाथ, पुरुषानन्द-नाथ तथा अघोरानन्द-नाथ।**

सिद्धौघ **प्रकाशानन्द-नाथ, सदानन्द-नाथ तथा सिद्धौघानन्द-नाथ।**

मानवौघ—**उत्तमानन्द-नाथ, सर्वानन्द-नाथ, सर्व-ज्ञानानन्द-नाथ, सिद्धानन्द-नाथ, गोविन्दानन्द-नाथ तथा शङ्करानन्द-नाथ।**

हयग्रीव-मत में—दिव्यौघ—**पर-शिवानन्द-नाथ, कामेश्वरी-देव्यम्बा तथा दिव्यौघानन्द-नाथ।**

सिद्धौघ—**महोच्चानन्द-नाथ, सर्वानन्द-नाथ, प्रज्ञा-देव्यम्बा तथा प्रकाशानन्द-नाथ।**

मानवौघ—**दिव्यानन्द-नाथ, चित्रानन्द-नाथ, स्वात्मानन्द-नाथ तथा प्रतिभानु-नन्द-नाथ।**

जिस प्रकार सभी नदी-नाले जाकर समुद्र में मिल जाते हैं, उसी प्रकार स्वाम्नाय-क्रम के सिवा अन्य सब प्रकार के क्रम 'श्रीविद्या पञ्च-दशी' में ही मिलकर 'षोडशी-महा-षोडशी-साम्राज्य - मेधा' तक पहुँचते हैं।

स्वाम्नाय-क्रम, महा-क्रम तथा पूर्ण-क्रम के अतिरिक्त अन्य बहुत प्रकार के क्रम हैं। उनमें से जिन्हें मैं जानता हूँ, उनके नाम हैं—१ पञ्च-सरस्वती-क्रम, २ हाद्याम्नाय-पञ्च-क्रम, ३ काद्याम्नाय-पञ्च-क्रम, ४ पञ्च-लक्ष्मी-क्रम, ५ दुर्गा-क्रम, ६ महा-विद्या-क्रम, ७ चक्रेश्वरी-क्रम, ८ नित्या-क्रम। अशक्तों के लिए 'षडाम्नायात्मक लघु-क्रम' है

'हाद्याम्नाय पञ्च-क्रम' में 'श्रीविद्या-पञ्च-दशी तक पाँच क्रम इस प्रकार हैं—१ **अनिरुद्ध-सरस्वती** (पूर्वोक्त दक्षिणा-काली का नामान्तर) की पूर्वोक्त दक्षिण-काली द्वा-विंशाक्षरी-विद्या, २ **महा-नील-सरस्वती** (उग्र-तारा) की सार्द्ध-पञ्चाक्षरी विद्या, ३ **महा-बाल - सरस्वती** (पूर्वोक्त बाला - त्रिपुरा) की वागादि-त्र्यक्षरी विद्या तथा ४ **ज्ञान-सरस्वती** (द्वादश-स्वर-सबिन्दु-बिन्दु-युत-व्योम-भृगु-वह्नि एवं कूट,

आकाश-भृग्वन्तिमानल-स-वामाक्षी-विन्दू एवं कूट, हर-भृगु-लेख-वीज-प्रसू-वृहद्भानु - ससर्ग एवं कूट) की 'त्रिकूटाक्षरी विद्या'।

'ज्ञान-सरस्वती' का विनियोग निम्न प्रकार है—**दक्षिणामूर्ति ऋषिः, पंक्तिश्छन्दः, ज्ञान-सरस्वती देवता, द्वितीय-कूटं वीजं, तृतीय-कूटं शक्तिः, प्रथम-कूटं कीलकम्।**

प्रथम-कूट के षड्-दीर्घ-भाजा से कर-षडङ्ग-न्यास करे। ध्यान निम्न प्रकार है—

उद्यत्-सूर्य-निभां त्र्यक्षां, पीनोन्नत-पयोधराम्। पुस्तकाक्ष-वराभयैः, शोभितां च चतुर्भुजाम्॥
रक्ताम्बर-पराधीनां, शान्तां चन्द्र-कला-धरां। रक्त-पद्म-समासीनां, ध्यायेद् ज्ञान-सरस्वतीम्॥

५ **'श्रीविद्या-सरस्वती'** (पूर्वोक्त श्रीविद्या पञ्च-दशी) को 'मेधा-दीक्षा' तक ग्रहण करे। इस क्रम में पहले पूर्वोक्त 'श्यामा-काली' की त्र्यक्षरी विद्या को ग्रहण करते हैं।

हाद्याम्नाय पंच-क्रम

हंस-क्रम के अन्तर्गत 'हाद्याम्नाय पञ्च-क्रम' के पाँच क्रम निम्न प्रकार हैं—

१ **आद्या-काली** की पूर्वोक्त षोडशाक्षरी-विद्या।

२ **उग्र-तारा** की पूर्वोक्त सार्द्ध-पञ्चाक्षरी विद्या।

३ **छिन्नमस्ता** की उत्तराम्नायात्मक षडर्ण-विद्या (**ह्रींऐंहूंऐंहूं फट्**)। इस विद्या के भैरव ऋषि, सम्राट् छन्द, छिन्नमस्ता देवता, 'ऐं' वीज, 'हूं' शक्ति, 'फट्' कोलक है। प्रणव (ॐ) के पश्चात् षड्-दीर्घ-भाजा स्वर ('आं, ईं' आदि) के अन्त में **'खड्गाय स्वाहा, सु-खड्गाय स्वाहा, विराजाय स्वाहा, पाशाय स्वाहा, अंकुशाय स्वाहा, असुरान्तकाय स्वाहा'** पद लगाकर 'कर-षडङ्ग-न्यास' करे। 'ध्यान'— **'प्रत्यालीढ-पदां'** इत्यादि। इनका यन्त्र है—**अधो-मुख त्रिकोण, त्रि-वृत्त, पुनः अधो - मुख त्रिकोण, अष्ट - दल और त्रि-रेखात्मक तथा चतुर्द्वार - युक्त भूपुर।** इस यन्त्र में छिन्नमस्ता के सभी भेदों की, उत्तराम्नाय या दक्षिणाम्नाय—दोनों ही आम्नायों से, सपर्या हो सकती है। विशेष करके यह उत्तराम्नायात्मक यन्त्र है। इनका दक्षिणाम्नायात्मक यन्त्र अलग है। तथापि इस विद्या का मूल यन्त्र यही है, अतः इसमें दक्षिणाम्नाय से भी सपर्या हो सकती है।

४ ऊर्ध्वाम्नायात्मक **वगलामुखी** की गज-चत्वारिंशदक्षरी विद्या (ॐ **ह्लीं ऐं श्रीं श्रीवगलानने मम रिपुं नाशय नाशय ममैश्वर्याणि देहि देहि शीघ्रं मनोवाञ्छितं कार्यं साधय साधय ह्लीं स्वाहा**)। इस विद्या के भैरव ऋषि, विराट् छन्द, श्रीवगलानना देवता, 'श्रीं' वीज, **'ह्लीं'** शक्ति, 'ऐं' कीलक है। षड्-दीर्घ-भाजा माया ('ह्लां **ह्लीं**' इत्यादि) से 'कर - षडङ्ग - न्यास' करे। इनका 'ध्यान'—**'सौवर्णासन-संस्थितां'** इत्यादि है। वगलामुखी के सभी भेदों का यन्त्र है—**अधो-मुख त्रिकोण, षट् - कोण, अष्ट - दल, षोडश-दल और त्रिरेखात्मक तथा चतुर्द्वार-युक्त भूपुर।**

५ पूर्वोक्त **'श्रीविद्या पञ्च-दशी'**।

काद्याम्नाय पञ्च-क्रम

अब कुण्डलिनी-क्रम के अन्तर्गत **'काद्याम्नाय-क्रम'** का वर्णन करता हूँ। इसके पाँच क्रम निम्न प्रकार हैं—१ **काम-कला-काली** की अष्टादशाक्षरी विद्या, २ **भुवनेश्वरी** की पूर्वोक्त महा-पञ्चाक्षरी विद्या, ३ **त्रिशक्ति चामुण्डा** को पूर्वोक्त महा-नवार्ण-विद्या, ४ **समया-कुब्जिका** की पूर्वोक्त द्वा - त्रिंशाक्षरी विद्या, ५ **श्रीविद्या-पञ्च-दशी**।

यह क्रम '**ज्ञान-योग**' से आरम्भ होता है। '**ज्ञान-मार्ग**' विहङ्गम मार्ग है, अतः उत्तराम्नाय की अन्तिम विद्या ही इस क्रम के आदि में है। यह क्रम गृहस्थ के लिए नहीं है।

पञ्च-लक्ष्मी-क्रम

अब '**पञ्च-लक्ष्मी-क्रम**' का वर्णन करता हूँ। इसके पाँच क्रम निम्न प्रकार हैं—

१ **सौभाग्य-लक्ष्मी** की एकाक्षरी विद्या '**श्रीं**'। भृगु ऋषि, निवृच्छन्द, सौभाग्य-लक्ष्मी देवता, शं वीज, ईं शक्ति, रं कीलक। रमा-वीज का षड्-दीर्घ-भाजा ('**श्रां श्रीं**' इत्यादि) कर 'कर-षडङ्ग-न्यास' करे। 'ध्यान'—

तप्त-कार्त-स्वराभासां, दिव्य - रत्न - विभूषिताम्। आसिच्यमानममृतैर्मुक्ता - रत्न - द्रवैरपि ॥
शुभ्राभामेभ-युग्मेन, मुहुर्मुहुरपि प्रिये! रत्नौघ - बद्ध - मुकुटां, शुद्ध - क्षौमाङ्ग - रागिणीम् ॥
पद्माक्षीं पद्म-नाभेन, हृदि चिन्त्यां स्मरेद् बुधः। एवं ध्यात्वा यजेद् देवीं, पद्म-युग्म - धरां सदा ॥
वरदाभय-शोभाढ्यां, चतुर्बाहुं सु-लोचनाम् ॥

२ **महा-लक्ष्मी** की पूर्वोक्त पूर्वाम्नायात्मक रमाद्यष्टाविंशाक्षरी-विद्या।

३ **त्रि-शक्ति लक्ष्मी** की त्र्यक्षरी विद्या ('**श्रीं ह्रीं क्लीं**')। ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द, त्रि-शक्ति लक्ष्मी देवता, 'श्रीं' वीज, 'ह्रीं' शक्ति, 'क्लीं' कीलक। मूल-मन्त्र की द्विरावृत्ति कर 'कर - षडङ्ग - न्यास' करे। 'ध्यान' है—

नव - हेम - स्फुरद् - भूमौ, रत्न-कुट्टीर-मण्डपे। महा-कल्प-वनान्तस्थे, रत्न - सिंहासने वरे ॥
कमलासन-शोभाढ्यां, रत्न-मञ्जीर-कुण्डलाम्। स्फुरद्-रत्न-लसन्मौलीं, रत्न-कुण्डल-मण्डिताम् ॥
अनर्घ्य - रत्न - घटित - नाना - भूषण - भूषिताम्। दधतीं पद्म - युगलं, पाशांकुश-धनुः-शरान् ॥
षड्-भुजामिन्दु-वदनां, दूतिभिः परिवारिताम्। चारु-चामर-हस्ताभिः, रत्नादर्श - सुपाणिभिः ॥
ताम्बूलं स्वर्ण-पात्रीभिर्भूषा-पेटी-सुपाणिभिः। एवं त्रि-शक्ति-लक्ष्म्यम्बां, ध्यायेत् सर्व-समृद्धिदाम् ॥

४ **श्रीविद्या - लक्ष्मी** की पूर्वोक्त 'श्रीविद्या पञ्च - दशी'।

लक्ष्मी के सभी भेदों का वीर-भाव से अर्चन करने का 'लक्ष्मी श्री-यन्त्र' है—**अधो-मुख त्रिकोण, द्वि-रेखात्मक पञ्च-कोण, फिर परस्पर संश्लिष्ट तीन अधो-मुख, तीन ऊर्ध्व-मुख त्रिकोण, तब अष्ट - दल, दश-दल, पुनः दश-दल, फिर पञ्च-कोण और तब भू-पुर।**

पूर्वोक्त चारों लक्ष्मियाँ पूर्वाम्नाय से उपासिता हैं।

'लक्ष्मी-श्रीयन्त्र' में '**आवरण-पूजा**'— सबसे पहले त्रिकोण में षडङ्ग-पूजा कर उसके बाहर उनके अस्त्रों की पूजा करे। तब त्रिकोण की रेखाओं में गुरु-पंक्ति की पूजा कर कोणों में सशक्तिक ब्रह्मा, विष्णु तथा सदा-शिव की सपर्या कर पार्श्व में गङ्गा और यमुना का अर्चन करे। तत्-पश्चात् अन्तः-पञ्च-कोण में 'पञ्च-लक्ष्मी' की और बहिः-कोण-पञ्च-कोण में १ कोश, २ निधि, ३ काम-धेनु, ४ कल्प-वृक्ष तथा ५ कुबेर की; षट्-कोण में १ नन्दजा, २ रक्त-दन्तिका, ३ शाकम्भरी, ४ दुर्गा, ५ भीमा तथा ६ भ्रामरी की; फिर अन्तर्दशार में १ हिरण्य - वर्णा, २ हरिणी, ३ पद्मा, ४ पद्म - वर्णा, ५ पद्मस्था, ६ आर्द्रा, ७ तर्पयन्ती, ८ तृप्ता, ९ ज्वलन्ती तथा १० स्वर्ण - प्राकारा की; तब बहिर्दशार में १ अन्न - पूर्णा, २ भद्र - काली, ३ कराली, ४ प्रत्यङ्गिरा, ५ कुब्जिका, ६ चामुण्डा, ७ सुन्दरी, ८ जया, ९ विजया तथा १० चण्डिका की सपर्या करे।

तत्-पश्चात् अष्ट-दल में असिताङ्गादि अष्ट-भैरव सहित ब्रह्माण्यादि अष्ट-मातृका का; अन्तर्दश-दल में कालिकादि दश महा-विद्या का; बहिर्दश - दल में सूर्यादि नव-ग्रह तथा मुथहा का; तदग्र-भाग में अपने ग्रह के क्रम से मङ्गलादि अष्ट-मातृका तथा विकटा और योगिनी का अर्चन करे। तद् - बहिः-पञ्च-कोण में १ गणपति, २ दुर्गा, ३ वायु, ४ आकाश तथा ५ कुमार की; भूगृह के ४ द्वारों में १ गणेश २ क्षेत्र-पाल, ३ बटुक तथा ४ योगिनो की; तद्-बहिः इन्द्रादि दश दिक्पाल तथा उनके आयुधों की सपर्या कर आवरण को समाप्त करे। अब **'चक्रेश्वरी-क्रम'** की पन्द्रह विद्याओं का वर्णन करता हूँ—

चक्रश्वरी-क्रम की १५ विद्याएँ

१ **त्रिपुरा** की नवाक्षरी विद्या—**अँ आँ सौः त्रिपुरायै नमः**। दक्षिणामूर्त्ति ऋषि, पंक्ति छन्द, त्रिपुरा देवता, 'अँ' वीज, 'सौः' शक्ति, 'आँ' कीलक। वीज-त्रय (अँ आँ सौः) की द्विरावृत्ति से कर-षडङ्ग न्यास करे। 'ध्यान'—

'शुद्ध-स्फटिक-वर्णाभां, त्रिनेत्रां च चतुर्भुजां। पुस्तकश्चाक्ष-सूत्रं च, पद्म-द्वय-करां शुभाम्।
त्रैलोक्य - मोहने ध्यायेत्, त्रिपुरां चतुरस्रके॥

इस क्रम में 'अन्तर्याग' आवश्यक है। 'मूलाधार-चक्र' में शुक्लारुण-कृष्ण-त्रिरेखक भूपुर-चक्र की भावना कर मन्त्र के उच्चारण का प्रकम्पन उस चक्र में लगाए। उससे जो नाद निकले, उसका श्रवण कर उसमें लय होकर हृदय-कमल के 'धूँ' नाद में उस नाद को लय कर ध्यानोक्त रूप की कल्पना कर जप करे।

२ **त्रिपुरेशिनी** की दशाक्षरी विद्या—**ऐं क्लीं ह्रीं त्रिपुरेशिन्यै नमः**। वीज-त्रय **(ऐं क्लीं ह्रीं)** से कर-षडङ्ग-न्यास। 'ध्यान'—

'रक्त-वर्णां त्रिनेत्रां च, पुस्तकाक्ष-वराभयैः, शोभितां हस्त-कमलां, महा-वृत्त-त्रये स्मरेत्,
त्रैवर्ग्य - साधने चक्रे, ध्यायेच्छ्रीत्रिपुरेशिनीम्।'

इस क्रम में भो 'मूलाधार-चक्र' में पूर्व-वत् 'अन्तर्याग' करना आवश्यक है।

३ **त्रिपुरेशी** की नवाक्षरी विद्या—**ऐं क्लीं सौः त्रिपुरेश्यै नमः**। वीज - त्रय **(ऐं क्लीं सौः)** से कर-षडङ्ग-न्यास। 'ध्यान'—

'शुभां चतुर्भुजां ध्यायेत्, पाशांकुश-वराभयैः, भूषितां षोडशाराब्जे, त्रिपुरेशीं सुरेश्वरीम्।

'स्वाधिष्ठान-चक्र' में पूर्ण - चन्द्र - वत् शुद्ध-वर्ण के षोडश - दल चक्र की भावना कर पूर्व-वत् 'अन्तर्याग' करे।

४ **त्रिपुर-सुन्दरी** की एकादशाक्षरी विद्या—**ह्रीं क्लीं सौः त्रिपुर - सुन्दर्यै नमः**। वीज - त्रय **(ह्रीं क्लीं सौः)** से कर-षडङ्ग-न्यास। 'मणिपुर-चक्र' में जवा-कुसुम - प्रभ अष्ट - दल - चक्र की भावना कर अन्तर्याग करे।

यहाँ एक बात ध्यान में रखनी चाहिए। भूपुर, वृत्त-त्रय, षोडश-दल तथा अष्ट - दल—ये चक्र-चतुष्टय मिलकर 'पूर्वाम्नायात्मक' चक्र बनेगा। 'स्वाधिष्ठान' पूर्वाम्नायात्मक चक्र है। अतः—

५ **भुवनेश्वरी** की पूर्वोक्त पञ्चाक्षरी विद्या ग्रहण कर 'स्वाधिष्ठान' में पूर्वोक्त चक्र - चतुष्टय से निर्मित चक्र की भावना कर 'अन्तर्याग' करे।

६ **त्रिपुर-वासिनी** की एकादशाक्षरी विद्या—**हैं ह्क्लीं ह्सौः त्रिपुर-वासिन्यै नमः**। वीज - त्रय **(हैं ह्क्लीं सौः)** से कर-षडङ्ग-न्यास करे। 'ध्यान'—

'रक्त-वर्णां चतुर्हस्तां, पुस्तकाक्ष-वराभयैः, भूषितां सर्व-सौभाग्य-दायके मनु - कोणके,
त्रिपुर-वासिनीं ध्यायेत्, साधकः स्थिर-मानसः ।'

'अनाहत-चक्र' में सिन्दूराभ चतुर्दशार-चक्र की भावना कर 'अन्तर्याग' करे।

बहुत से लोग 'हृदय - पद्म' और 'अनाहत - चक्र' को एक ही समझते हैं, परन्तु ऐसा नहीं है। 'अनाहत-चक्र' फुफ्फुस (फेफड़े) के मध्य में अर्थात् वक्षः-स्थल के ठीक बीच में रहता है और 'हृत् - पद्म' धकधकानेवाला हृदय वक्षः-स्थल के बाईं ओर रहता है।

७ **त्रिपुराश्री** की दशाक्षरी विद्या—**ह्सैं ह्स्क्लीं ह्सः त्रिपुरा - श्रियै नमः**। वीज - त्रय (**ह्सैं ह्स्क्लीं ह्सः**) से कर-षडङ्ग-न्यास करे। 'ध्यान'—

'सहस्रार्क-समाभासां, पुस्तकाक्ष - वराभयैः, शोभितां हस्त - कमलां बहिर्दशार-चक्रके,
सर्वार्थ-साधकाख्याने, चिन्तयेत् त्रिपुरा-श्रियम् ।'

८ **त्रिपुर - मालिनी** की एकादशाक्षरी विद्या—**ह्रीं क्लीं ब्लें त्रिपुर-मालिन्यै नमः**। वीज - त्रय (**ह्रीं क्लीं ब्लें**) से कर-षडङ्ग-न्यास करे। 'ध्यान'—

'रक्त-वर्णां त्रिनयनां, पाशांकुश-कपालकम्, वराभयाक्ष-मालां च, दधतीं त्रिपुरां पराम्,
मालिन्यन्तर्दशाराख्ये, सर्व-रक्षा-करे स्मरेत् ।'

'आज्ञा-चक्र' में जवा-कुसुम-प्रभ अन्तर्दशार-चक्र की भावना कर अन्तर्याग करे।

९ पूर्वोक्त चतुर्दशार-चक्र तथा दशार-चक्र-द्वय दक्षिणाम्नायात्मक हैं। अतः दक्षिण - काली की पूर्वोक्त द्वा-विंशाक्षरी विद्या ग्रहण कर दक्षिणाम्नायात्मक मणिपुर-चक्र में पूर्व-वत् कर्म करे।

१० **त्रिपुरा-सिद्धा** की एकादशाक्षरी विद्या—**ह्रीं श्रीं ह्रीं त्रिपुरा-सिद्धायै नमः**। वीज-त्रय (**ह्रीं श्रीं ह्रीं**) से कर-षडङ्ग-न्यास करे। 'ध्यान'—

'शुक्ल-वर्णां त्रिनयनां, पाशांकुश-कपालिनीम्, अभयां सर्व-रोगघ्नेऽष्टारके चिन्तयेत् सदा।
साधकैस्त्रिपुरा-सिद्धां, सर्वालङ्कार - भूषिताम् ।।

इनका चक्र 'नाद' है। उसमें पद्म-राग-प्रभ अष्टार-चक्र की भावना कर पूर्व-वत् कर्म करे।

११ '**त्रिपुराम्बा**' की दशाक्षरी विद्या—**ह्स्रैं ह्क्लीं ह्स्रौः त्रिपुराम्बायै नमः**। कूट-त्रय (**ह्स्रैं ह्क्लीं ह्स्रौः**) से कर-षडङ्ग-न्यास करे। 'ध्यान'—

रक्ताम्बरां मुण्ड-मालीं, पुस्तकाक्ष-वराभयैः, भूषितां त्र्यस्र-मध्यस्थां, सर्व-सिद्धि-प्रदायिकाम्।
सर्वालङ्कार-संयुक्तां, ध्यायेच्छ्रीत्रिपुराम्बिकाम् ।।

इनका 'विन्दु-चक्र' है। उसमें बन्धूक - कुसुमारुण त्रिकोण - चक्र की भावना कर पूर्व - वत् कर्म करे।

१२ '**महा-त्रिपुर-भैरवी**' (महा-त्रिपुर-भैरवी के पूर्वोक्त कूट-त्रय के पश्चात् 'त्रिपुर-भैरव्यै' तथा नमः एवं एकादशाक्षरी विद्या)। उक्त कूट-त्रय से कर-षडङ्ग-न्यास करे। 'ध्यान'—'**उद्यद्भानु-सहस्र-कान्ति-मरुण**' इत्यादि। इनका 'सहस्रार-चक्र' है। उसमें शुक्लारुण-वैन्दव-चक्र की भावना कर पूर्व-वत् कर्म करे।

१३ पूर्वोक्त अष्टार, त्रिकोण तथा वैन्दव-चक्र पश्चिमाम्नायात्मक हैं। अतः पश्चिमाम्नाय की पूर्वोक्त '**वज्र-कुब्जिका**' की द्वा-त्रिंशाक्षरी विद्या ग्रहण कर पश्चिमाम्नायात्मक अनाहत - चक्र में पूर्व-वत् कर्म करे।

१४ पूर्वोक्त दश-वक्त्रा भरतोपासिता **'गुह्य-काली'** की षोडशाक्षरी विद्या ग्रहण करे। चतुर्दशार-चक्र से वैन्दव-चक्र तक दश-चक्रों का समष्टि-रूप उत्तराम्नायात्मक है। अतः उत्तराम्नायात्मक 'विशुद्धि-चक्र' में पूर्व-वत् कर्म करे।

१५ **'महा-त्रिपुर-सुन्दरी'** की त्रयो-दशाक्षरी विद्या—**कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं महा-त्रिपुर-सुन्दर्यै नमः।** सभी न्यास पञ्च-दशी के अनुसार। 'ध्यान'—पूर्वोक्त **'सूर्येन्द्वग्नि-मयैक-पीठ'** इत्यादि। 'सहस्रार' के ऊपर के मनो-वाचा-गोचरागम्य 'महा-वैन्दव-चक्र' में इनकी भावना कर पूर्व-वत् कर्म करे। 'महा-वैन्दवात्मक-चक्र' में भूपुर-चक्र-पर्यन्त समस्ताङ्ग-पूर्ण श्रीचक्र ऊर्ध्वाम्नायात्मक है। अतः ऊर्ध्वाम्नायात्मक 'आज्ञा-चक्र' में समस्ताङ्ग-पूर्ण 'श्रीचक्र' की भावना कर पञ्च-दशी के उच्चारण द्वारा उस चक्र को प्रकम्पित करे। उससे भ्रमर-नाद निकलेगा। उसे हृदय के 'धूँ' नाद में लय कर वहाँ ध्यानोक्त मूर्ति की कल्पना करे। फिर उस नाद को 'विशुद्धि' के 'त्रीं' नाद में, तब 'आज्ञा' के 'भ्रमर - नाद' में लय कर 'सहस्रार' में ले जाकर 'भनीं' नाद में लय कर किञ्चित् काल तक अनुभव-गम्य आनन्द का उपभोग करे। फिर मन्त्र - योग के विधान से मृणाल - तन्तु द्वारा मूलाधार में पहुँच कर वहाँ से अनाहत तक उद्यदादित्य-वर्ण के अति शीतल 'वाग्भव-कूट' की, अनाहत से आज्ञा तक इन्द्र-गोप-सम 'काम-राज-कूट' की और आज्ञा-चक्र में श्वेत-वर्ण के 'शक्ति-कूट' की भावना कर स्वयं मन्त्र-रूप बनकर पञ्च - दशी का जप करे। तब स्व-देह को समस्त श्रीचक्र-रूप भावना कर विश्राम करे।

यहाँ एक बात उल्लेखनीय है। सभी मतों में प्रातः - कृत्य और अजपा - समर्पण तथा अजपा-सङ्कल्प अपनी - अपनी परम्परानुसार किसी-न-किसी प्रकार के आवश्यक हैं, परन्तु 'दक्षिणामूर्ति-मत' में प्रातः-कृत्य का ढँग अलग है। निशा-कृत्य भी अत्यावश्यक है। यह निशा-कृत्य रात्रि में शैय्या में बैठ कर करे। तब सोना चाहिए। प्रायः बहुत से 'कौल' लोग 'आनन्द-भैरव-मत' से ही उपासना करते हैं।

भगवती दुर्गा के पंच-क्रम

१ **बीज-रूपा-दुर्गा** की (दुरित्येकाक्षर) एकाक्षरी विद्या—**दुः**। काश्यप ऋषि, गायत्री छन्द, वीजात्मिका दुर्गा देवता। इनके वीज, शक्ति तथा कीलक नहीं हैं। षड्-दीर्घ-भाजा वीज से कर-षडङ्ग-न्यास करे। 'ध्यान'—

दूर्वा-श्यामां त्रिनेत्रां च, कमलेऽष्ट-दले स्थिताम्, शूलं वाणं खड्ग-चक्रे, शङ्ख-खेटं शरासनम्।
कपालानि च दक्षाधः, क्रमेण दधतीं स्मरेत्।।

२ **दुर्गा** की अष्टाक्षरी विद्या—**ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै नमः**। नारद ऋषि, गायत्री छन्द, दुर्गा देवता। वीज, शक्ति तथा कीलक नहीं हैं। 'ध्यान'—

सिंहस्था शशि-शेखरा, मरकत-प्रख्यैश्चतुर्भिर्भुजैः।
शङ्खं चक्र-धनुः शरांश्च, दधती नेत्रैस्त्रिभिः शोभिता।।
आमुक्ताङ्गद-हार-कङ्कण-रणत्-काञ्ची-क्वणन्नूपुरा।
दुर्गा दुर्गति-हारिणी, भवतु वो रत्नोल्लसत्-कुण्डला।।

३ **जयदुर्गा** की एकादशाक्षरी विद्या—**ॐ दुं दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा**। नारद ऋषि, गायत्री-छन्द, जयदुर्गा देवता, ॐ वीज, स्वाहा शक्ति, 'रक्षिणि' कीलक। मूल के २, २, २, ३, १, सर्व अक्षरों से कर-षडङ्ग-न्यास करे। 'ध्यान'—

कालाभ्राभां कटाक्षैररि-कुल-भयदां मौलि-बद्धेन्दु-खण्डाम् ।
शङ्खं चक्रं कृपाणं त्रिशिखमपि करैरुद्वहन्तीं त्रिनेत्राम् ॥
सिंह - स्कन्धाधिरूढां त्रिभुवनमखिलं तेजसा पूरयन्तीम् ।
ध्याये दुर्गां जयाख्यां त्रिदश-परिवृतां सेवितां सिद्धि-कामैः ॥

४ पूर्वोक्त त्रिशक्ति-चामुण्डा (चण्डी दुर्गा) की महा-निर्वाण-विद्या ग्रहण करे ।

५ कात्यायनी की एक-विंशाक्षरी विद्या—स्ह्लक्ष्म्यीं स्ह्स्फ्रें क्लीं हूं ह्रीं क्ल्हीं कात्यायन्यै स्फ्रें काम-दायी हूं स्फ्रें नमः स्वाहा ।

इनका विनियोग नहीं है । 'डाकिनी अस्त्राय फट्' से कर-शुद्धि कर वीज का षड्-दीर्घ - भाजा कर कनिष्ठका से कर-षडङ्ग, फिर हृदयादि षडङ्ग-न्यास करे । 'ध्यान'—

जटा-जूट - समायुक्तामर्धेन्दु - कृत - लक्षणाम् । नेत्र - त्रय-समायुक्तां, पद्मेन्दु - सदृशाननाम् ।
अतसी - पुष्प - वर्णाभां, सुप्रतिष्ठां सुलोचनाम्, नव - यौवन - सम्पन्नां, सर्वाभरण - भूषिताम् ॥
सुचारु-दशनां तद्-वत्, पीनोन्नत-पयोधराम्, त्रिभङ्ग-स्थान - संस्थानां, महिषासुर - मर्दिनीम् ।
त्रिशूलं दक्षिणे दद्यात्, खड्गं चक्रं क्रमादधः, तीक्ष्णं वाणं तथा शक्तिं, वामतोऽपि निबोधत ॥
खेटकं पूर्ण - चापं च, पाशमंकुशमूर्ध्वतः, घण्टां च परशुं चापि, वामतः सन्निवेशयेत् ।
अधस्तान्महिषं तद्-वद्, विशिरस्कं प्रदर्शयेत्, शिरश्छेदोद्भवं तद्-वद्, दानवं खड्ग-पाणिकम् ॥
स - पाशं वाम - हस्तेन, धृत - केशं च दुर्गया, वमद्-रुधिर - वक्त्रं च, देव्याः सिंहं प्रदर्शयेत् ।
देव्यास्तु दक्षिणं पादं, समं सिंहोपरि - स्थिताम्, किञ्चिदूर्ध्वं तथा वाममंगुष्ठं महिषोपरि ॥
स्तूयमानं च तद् - रूपममरैः सन्निवेशयेत् ।

६ भद्र-काली दुर्गा की एकादशाक्षरी विद्या—स्ह्लक्ष्म्यीं स्ह्स्फ्रें हूं ह्रीं भद्र-काल्यै स्फ्रें हूं स्फ्रें ।
न्यासादि पूर्वोक्त कात्यायनी-वत् । ध्यान—'यदा तु षोडश-भुजा' इत्यादि ।

७ उग्रचण्डा दुर्गा । ८ पूर्वोक्त समया-कुब्जिका । ९ पूर्वोक्त श्रीविद्या-पञ्चदशी ।

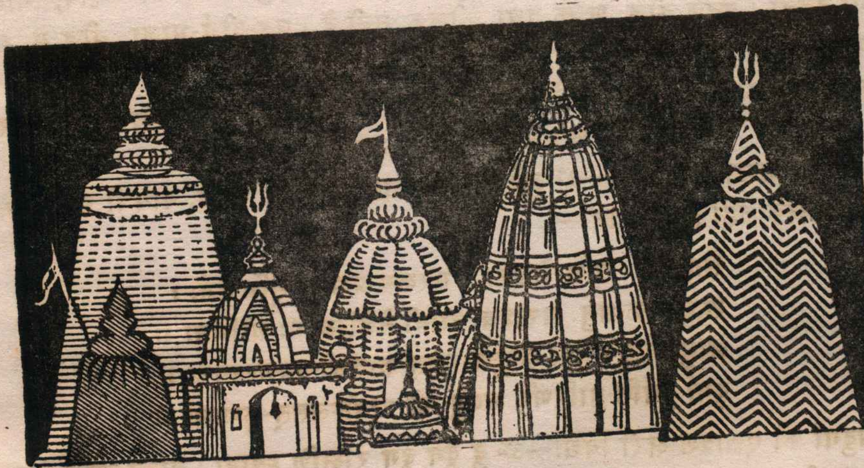

पूर्णाभिषेक-विधान

'पूर्णाभिषेक' के पहले दिन

'पूर्णाभिषेक' करने के पहले दिन 'पूर्णाभिषिक्त' गुरुदेव विघ्नों की शान्ति के लिए सर्व - प्रथम 'श्रीगणपति' का पूजन करें। यथा--

सङ्कल्प : ॐ अद्येत्यादि''' अमुक-गोत्रोत्पन्न-अमुक-शर्मणः शुभ - पूर्णाभिषेक - कर्मणि सम्भावित-सकल-विघ्न-शान्त्यर्थं श्रीगणपति-पूजनमहं करिष्ये।

विनियोग : ॐ अस्य श्रीगणपति-मन्त्रस्य श्रीगणक ऋषिः। निवृत् छन्दः। श्रीगणपति-देवता। शुभ-पूर्णाभिषेक-कर्मणि सम्भावित-सकल-विघ्न-शान्त्यर्थं जपे विनियोगः।

ऋष्यादि-न्यास : श्रीगणक-ऋषये नमः शिरसि। निवृच्छन्दसे नमः मुखे। श्रीगणपति-देवतायै नमः हृदि। शुभ-पूर्णाभिषेक-कर्मणि सम्भावित-सकल-विघ्न-शान्त्यर्थं जपे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे।

षडङ्ग-न्यास : (१) कर-न्यास—गां अंगुष्ठाभ्यां नमः। गीं तर्जनीभ्यां स्वाहा। गूं मध्यमाभ्यां वषट्। गैं अनामाभ्यां हुं। गौं कनिष्ठाभ्यां वौषट्। गः करतल-करपृष्ठाभ्यां फट्।

(२) अङ्ग-न्यास--गां हृदयाय नमः। गीं शिरसे स्वाहा। गूं शिखायै वषट्। गैं कवचाय हुं। गौं नेत्र-त्रयाय वौषट्। गः अस्त्राय फट्।

ध्यान— सिन्दूराभं त्रि-नेत्रं पृथुतर-जठरं हस्त - पद्मैर्दधानम्,
दन्तं पाशांकुशेऽष्टान्युरु-कर-विलसद्-वारुणी-पूर्ण - कुम्भम्।
बालेन्दु-द्योति-मौलिं करि-पति-वदनं वीजपूरार्द्र-गण्डम्,
भोगीन्द्राबद्ध-भूषं भजत गण-पतिं रक्त - वस्त्राङ्ग - रागम्॥

मानस पूजन : लं पृथिव्यात्मकं गन्धं श्रीगणपतये समर्पयामि नमः--अधो-मुख कनिष्ठा - अंगुष्ठ से। हं आकाशात्मकं पुष्पं श्रीगणपतये समर्पयामि नमः--अधो-मुख तर्जनी-अंगुष्ठ से। यं वाय्वात्मकं धूपं श्रीगणपतये घ्रापयामि नमः--ऊर्ध्व - मुख तर्जनी - अंगुष्ठ से। रं वह्न्यात्मकं दीपं श्रीगणपतये दर्शयामि नमः--ऊर्ध्व-मुख मध्यमा - अंगुष्ठ से। वं अमृतात्मकं नैवेद्यं श्रीगणपतये निवेदयामि नमः--ऊर्ध्व - मुख अनामिका - अंगुष्ठ से। सं सर्व-तत्त्वात्मकं ताम्बूलं श्रीगणपतये समर्पयामि नमः—ऊर्ध्व-मुख सर्वांगुलियों से।

मूल-मन्त्र (गं) का एक माला जप कर उसका फल श्रीगणपति को समर्पित करे—

ॐ गुह्यातिगुह्य-गोप्ता त्वं, गृहाणास्मत् कृतं जपम्। सिद्धिर्मे भवतु देव ! त्वत्-प्रसादान्महेश्वर !॥

अब श्री गणपति के पूजन-यन्त्र (अष्ट - दल - कमल, भूपुर) में पीठ - शक्तियों का पूजन करे। यथा--केशरों और मध्य में 'ॐ तीव्रायै नमः, ज्वालिन्यै, नन्दायै, भोगदायै, काम - रूपिण्यै, उग्रायै, तेजोवत्यै, सत्यायै, विघ्न-नाशिन्यै' मन्त्रों द्वारा पूजा कर 'सर्व-शक्ति-कमलासनाय नमः' मन्त्र से सम्पूर्ण यन्त्र की पूजा कर श्रीगणपति को आसन प्रस्तुत करे। पुनः श्रीगणपति का ध्यान कर, पञ्च-तत्त्वों और पञ्चोपचारों से उनकी पूजा करे। तब उक्त पूजन-यन्त्र में 'आवरण - पूजा' प्रारम्भ करे--(१) कर्णिकाग्रों में पूर्वादि-क्रम से—'ॐ गणाधिपतये नमः, गणेशाय, गण-नायकाय, गण - क्रीडाय' मन्त्रों से, (२) केशरों में

अग्नि आदि कोणों, मध्य में और चारों दिशाओं में––**'गां हृदयाय नमः'** क्रम से षडङ्ग-मन्त्रों से, (३) पद्म के दलों में पूर्वादि-क्रम से—**'ॐ वक्र-तुण्डाय नमः, एक-दन्ताय, महोदराय, गजाननाय, लम्बोदराय, विकटाय, विघ्न-राजाय, धूम्र-वर्णाय'** मन्त्रों से, (४) दलों के अग्र-भाग में––**'ॐ ब्राह्म्यै नमः'** आदि अष्ट-मातृकाओं के मन्त्रों से, (५) दलों के बाहर––**'ॐ इन्द्राय नमः'** आदि अष्ट - दिक् - पालों के मन्त्रों से, (६) दिक्-पालों के समीप––**'ॐ वज्राय नमः'** आदि उनके अस्त्र-मन्त्रों से पूजन करे।

आवरण-पूजन के बाद श्रीगणपति को पुनः धूप-दीप प्रदान कर पूजन का विसर्जन करे। अन्त में साधकों को भोजनादि से तृप्त कर दक्षिणा देकर उनसे आशीर्वाद ग्रहण करे।

'पूर्णाभिषेक' के दिन

दूसरे दिन 'स्नान', 'सन्ध्या', 'पाठ-पूजा' से निवृत्त होकर 'शिष्य' जन्म-जन्मान्तर के अपने पापों की निवृत्ति के लिए तिल और सोने का दान करे। इसके लिए निम्न प्रकार 'सङ्कल्प' करे—**'अद्य अमुक-गोत्रः श्रीमदमुक-देव-शर्मा आजन्म-कृताशेष-दुष्कृत-क्षय-काम अमुक-गोत्राय अमुक-शर्मणे ब्राह्मणाय प्रदातुं काञ्चन-सहितांस्तिलान् अहमुत्सृजे।'**

दान देने के बाद ब्राह्मणों को भोजन कराए। फिर 'सूर्यार्घ्य' देकर **ब्रह्मा, विष्णु, शिव, नव-ग्रह** और **षोडश मातृकाओं** का अर्चन करते हुए **'वृद्धि-श्राद्ध'** की **क्रिया** को करे।

तदनन्तर शिष्य 'श्रीगुरु-देव' से 'पूर्णाभिषेक' हेतु प्रार्थना करे। यथा––

त्राहि नाथ ! कुलाचार्य ! नलिनी-कुल-वल्लभ ! त्वत्-पादाम्भोरुहच्छायां, देहि मूर्ध्नि कृपा-निधे !
आज्ञां देहि महा - भाग ! शुभ - पूर्णाभिषेचने ! निर्विघ्नं कर्मणः सिद्धिमुपैमि त्वत् - प्रसादतः !

इस पर 'गुरु-देव' शिष्य को आशीर्वाद दें। यथा––

शिव-शक्त्याज्ञया वत्स ! कुरु पूर्णाभिषेचनम्। मनोरथ-मयी सिद्धिर्जायतां शिव-शासनात्॥

गुरु का आशीर्वाद पाकर शिष्य 'सर्वोपद्रव - शान्ति' के लिए तथा आयु, लक्ष्मी, बल और आरोग्यता प्राप्ति के लिए **'पूर्णाभिषेक'** हेतु **'सङ्कल्प'** करे। यथा—**'ॐ अद्य अमुक-गोत्र अमुक - शर्मा निःशेषोपद्रव-ध्वंस-काम आयु-लक्ष्मी-बलाऽऽरोग्य-कामश्च शुभ-पूर्णाभिषेचनमहं करिष्ये।'**

तब वस्त्राऽऽभूषणादि तथा प्रथम, द्वितीय, तृतीयादि तत्त्वों से 'गुरु - पूजन' कर उनका 'वरण' करे।

इसके बाद 'गुरुदेव' एक सुसज्जित कमरे में चार अंगुल ऊँची और डेढ़ हाथ लम्बी 'वेदी' बनाएँ। उसके ऊपर पीत, रक्त, असित, श्वेत और श्याम-वर्ण के अक्षत-चूर्णों से सुन्दर **'सर्वतो-भद्र-मण्डल'** बनाएँ। फिर स्व-कल्पोक्त विधि के अनुसार 'गुरुदेव' 'मानस-पूजन' पर्यन्त क्रिया करें, 'पञ्च - तत्त्वों' का शोधन करें। तब 'सर्वतो-भद्र-मण्डल' के मध्य में शिष्य की सामर्थ्य के अनुसार स्वर्ण, रजत, ताम्र या मृण्मय **'कलश'** को 'अस्त्र' **(फट्)** मन्त्र से प्रक्षालित कर तथा उसमें दधि, अक्षत छिड़क कर ब्रह्म - वीज **(प्रणव—ॐ)** द्वारा उसे 'गुरुदेव' स्थापित करें।

'घट-स्थापन' के अनन्तर 'कलश' को **'श्रीं'** वीज द्वारा सिन्दूर से अङ्कित कर 'क्ष-कार' से लेकर **'अ-कार'** पर्यन्त सानुस्वार विलोम मातृका-वर्णों सहित 'मूल-मन्त्र' का तीन बार जप करते हुए 'गुरुदेव' उस 'कलश' को 'कारण' अथवा 'तीर्थ-तोय' से परिपूर्ण करें। फिर उसमें 'सुवर्ण' और 'नव-रत्न' डालें। मुख के ऊपर सु-वर्ण या रजत या ताम्र के कटोरे या मृण्मय पात्र को 'कारण', फल तथा अक्षत से भर

कर उसे रमा (श्रीं) और माया-बीज (ह्रीं) के उच्चारण - पूर्वक रख दें। तब वाग्भव - बीज (ऐं) द्वारा पनस, उदम्बरु, अश्वत्थ, बकुल और आम के 'पञ्च-पल्लवों' को मुखस्थ पात्र के ऊपर रख दें।

'कलश' को ग्रीवा से लेकर नीचे तक दो रक्त वस्त्रों से आच्छादित कर दें। फिर पञ्च-तत्त्वों को 'कलश' में डालकर 'नौ' पात्रों को स्थापना करनी चाहिए।

'शक्ति' के लिए 'चाँदी' का, 'गुरु' के लिए 'स्वर्ण' का तथा इष्ट - देवता के लिए 'कपाल' या नारिकेल का पात्र होना चाहिए। शेष पात्र 'ताम्र' के उचित हैं। पाषाण, काष्ठ और लौह के पात्रों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

'पात्र-स्थापन' के बाद 'गुरु-मण्डल' तथा भगवती का 'तर्पण' कर 'गुरुदेव' अमृत - पूर्ण 'कलश' का पूजन करें। तदनन्तर 'सर्व-भूत-बलि' प्रदान कर 'सर्वतो-भद्र-मण्डल' में पीठ-देवताओं की अर्चना कर, अन्त में 'षडङ्ग - न्यास' करें। न्यास के बाद 'प्राणायाम' कर श्रीजगदम्बा का 'ध्यान', 'आवाहन' तथा 'पूजन' कर 'हवन' करें।

इसके बाद 'कुमारी-पूजन', 'शक्ति-सपर्या' तथा 'वीरावली' का समर्चन कर उन्हें नैवेद्य, वस्त्र, दक्षिणादि से सन्तुष्ट कर अन्त में शिष्य के पूर्णाभिषेक के लिए कौलों से आज्ञा लेनी चाहिए। यथा—

अनुगृह्णन्तु कौला मे, शिष्यं प्रति कुल-व्रताः। पूर्णाभिषेक - संस्कारे, भवद्भिरनुमन्यताम् ॥

उपस्थित 'कौल' साधक निम्न प्रकार अपने शुभाशीष दें—

महा-माया-प्रसादेन, प्रभावात् परमात्मनः। शिष्यो भवतु पूर्णस्ते, पर-तत्त्व-परायणः ॥

इस प्रकार आशीर्वाद मिल जाने पर 'गुरुदेव' शिष्य द्वारा अर्चित 'कलश' के ऊपर श्री जगदम्बा का पूजन कराएँ। फिर 'गुरुदेव' काम, माया और रमा-बीज (**क्लीं ह्रीं श्रीं**) का जप करते हुए 'कलश' का स्पर्श करें और निम्न मन्त्र पढ़ें—

उत्तिष्ठ पूर्ण-कलश ! देवतात्मक ! सिद्धिद ! त्वत्-तोय-पल्लवैः सिक्तः, शिष्यो ब्रह्म-रतोऽस्तु मे ॥

अब 'गुरुदेव' शिष्य को उत्तर दिशा की ओर मुख कर बैठाएँ और उसके शिर के ऊपर 'पञ्च-पल्लव' के गुच्छे द्वारा कलश-जल से प्रोक्षण (अभिषेक) करें। पहले वे निम्न 'विनियोग' पढ़ें—

'**एषां शुभ-पूर्णाभिषेक-मन्त्राणां श्रीसदा-शिव ऋषिः। अनुष्टुप् छन्दः। अमुक देवता** (यहाँ इष्ट-देवता का नामोच्चारण करें)। **ॐ बीजं। शुभ-पूर्णाभिषेकार्थे विनियोगः।**'

इसके बाद निम्न मन्त्रों द्वारा उक्त प्रकार अभिषेक करना प्रारम्भ करें—

गुरवस्त्वाऽभिषिञ्चन्तु ब्रह्म-विष्णु-महेश्वराः। दुर्गा-लक्ष्मी-भवान्यस्त्वामभिषिञ्चन्तु मातरः ॥
षोडशी तारिणी नित्या स्वाहा महिष-मर्दिनी। एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्र-पूतेन वारिणा ॥
जय-दुर्गा विशालाक्षी ब्रह्माणी च सरस्वती। एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु बगला वरदा शिवा ॥
नारसिंही च वाराही वैष्णवी वन-मालिनी। इन्द्राणी वारुणी रौद्री त्वाऽभिषिञ्चन्तु शक्तयः ॥
भैरवी भद्र-काली च तुष्टिः पुष्टिरुमा क्षमा। श्रद्धा कान्तिर्दया शान्तिरभिषिञ्चन्तु ते सदा ॥
महा-काली महा-लक्ष्मीर्महा-नील-सरस्वती। उग्र-चण्डा प्रचण्डा त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वदा ॥
मत्स्यः कूर्मो वाराहश्च नृसिंहो वामनस्तथा। रामो भार्गव-रामस्त्वामभिषिञ्चन्तु वारिणा ॥

असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोधोन्मत्तो भयङ्करः। कपाली भीषणश्च त्वामभिषिञ्चन्तु वारिणा ॥
काली कपालिनी कुल्ला कुरु-कुल्ला विरोधिनी। विप्र-चित्ता महोग्रा त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वदा॥
इन्द्रोऽग्निः शमनो रक्षो वरुणः पवनस्तथा। धनदश्च महेशानः सिञ्चन्तु त्वां दिगीश्वराः ॥
रविः सोमो मङ्गलश्च बुधो जीवः सितो शनिः। राहुः केतुः स-नक्षत्रा अभिषिञ्चन्तु ते ग्रहाः ॥
नक्षत्रं करणं योगो वाराः पक्षौ दिनानि च। ऋतुर्मासो हायनस्त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वदा ॥
लवणेक्षु-सुरा-सर्पिर्दधि-दुग्ध-जलान्तकाः। समुद्रास्त्वाऽभिषिञ्चन्तु मन्त्र-पूतेन वारिणा ॥
गङ्गा सूर्य-सुता रेवा चन्द्र-भागा सरस्वती। सरयूर्गण्डकी कुम्भी श्वेत-गङ्गा च कौशिकी ॥
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु मन्त्र-पूतेन वारिणा ॥
अनन्ताद्या महा-नागाः सुपर्णाद्याः पतत्रिणः। तरवः कल्प-वृक्षाद्याः सिञ्चन्तु त्वा महीधराः॥
पाताल-भूतल-व्योम-चारिणः क्षम-कारिणः। पूर्णाभिषेक-सन्तुष्टास्त्वाऽभिषिञ्चन्तु पाथसा ॥
दौर्भाग्यं दुर्यशो रोगाः दौर्मनस्यं तथा शुचः। विनश्यन्त्वभिषेकेण परम-ब्रह्म-तेजसा ॥
अलक्ष्मी काल-कर्णी च डाकिन्यो योगिनी-गणाः। विनश्यन्त्वभिषेकेण काली-बीजेन ताडिताः ॥
भूताः प्रेता. पिशाचाश्च ग्रहा येऽरिष्ट-कारकाः। विद्रुतास्ते विनश्यन्तु रमा-बीजेन ताडिताः ॥
अभिचार-कृता दोषा वैरि-मन्त्रोद्भवाश्च ये। मनो-वाक्कायजा दोषाः विनश्यन्त्वभिषेचनात् ॥
नश्यन्तु विपदः सर्वाः सम्पदः सन्तु सु-स्थिराः। अभिषेकेण पूर्णेन पूर्णाः सन्तु मनोरथाः ॥

अर्थात्—गुरु - मण्डल, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, दुर्गा, लक्ष्मी, भवानी, षोडशी, तारा, नित्या, स्वाहा, महिष-मर्दिनी, जय-दुर्गा, विशालाक्षी, ब्रह्माणी, सरस्वती, बगलामुखी, वरदा शिवा, नारसिंही, वाराही, वैष्णवी, वन-मालिनी, इन्द्राणी, वारुणी, रौद्री, भैरवी, भद्र - काली, तुष्टि, पुष्टि, उमा, क्षमा, श्रद्धा, कान्ति, दया, शान्ति, महा-काली, महा-लक्ष्मी, महा-नील-सरस्वती, उग्र - चण्डा और प्रचण्डा महा-शक्तियाँ तुझे अभिषिक्त करें।

मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, राम, परशुराम (सात अवतार), असिताङ्ग, रुरु, चण्ड ,क्रोध, उन्मत्त, भयङ्कर, कपाली और भीषण (अष्ट - भैरव), काली, कपालिनी, कुल्ला, कुरु-कुल्ला, विरोधिनी, विप्र-चित्ता और महोग्रा शक्तियाँ, इन्द्र, अग्नि, शमन, रक्ष, वरुण, पवन, कुबेर, ईशान (अष्ट लोक-पाल), रवि, सोम, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु, केतु (नव - ग्रह) के साथ नक्षत्र, करण, योग, वार, दोनों पक्ष, दिन, षड्-ऋतु, मास और संवत्सर तुझे अभिषिक्त करें।

लवण, इक्षु, सुरा, घृत, दधि, दुग्ध, जल (सप्त समुद्र), गङ्गा, यमुना, रेवा, चन्द्र - भागा, सरस्वती, सरयू, गण्डकी, कुन्ती, श्वेत - गङ्गा, कौशिकी, आदि सब नदियाँ मन्त्रों से पवित्र जल से तेरा अभिषेक करें।

अनन्त आदि महा-नाग, गरुड़ आदि पक्षी, कल्प-वृक्ष आदि तरु और पर्वत तेरा अभिषेक करें।

स्वर्ग (आकाश), मृत्यु, पाताल लोकों में विचरण करनेवाले कल्याणकारी विग्रह 'पूर्णाभिषेक' से सन्तुष्ट होकर तेरा अभिषेक करें।

दुर्भाग्य, दुर्यश, रोग, दौर्मनस्य आदि तेरे शोक पर-ब्रह्म के तेज से सर्वथा नष्ट हो जायँ।

अलक्ष्मी, काल-कर्णी, डाकिनी आदि दुष्ट योगिनियाँ 'काली'-बीज 'क्रीं' से ताडित होकर नाश को प्राप्त हों। भूत, प्रेत, पिशाच और अनिष्ट करनेवाले दुष्ट - ग्रह आदि 'रमा' - बीज 'श्रीं' से ताडित होकर नष्ट हो जायँ। अभिचार (दुष्ट प्रयोग) द्वारा उत्पन्न या अरि-मन्त्र की प्राप्ति से प्रकट हुए समस्त दोष तथा मनसा वाचा कर्मणा उद्भूत जो दोष हैं, वे सब विलीन हो जायँ।

हे शिष्य ! तेरी निखिल विपत्तियाँ नष्ट हों, सम्पत्तियाँ स्थिर हों तथा पूर्णाभिषेक के प्रभाव से तेरे समस्त मनोरथ पूर्णता को प्राप्त हों।

इस प्रकार शिष्य का 'अभिषेक' करे। यदि शिष्य ने पहिले 'पशु-गुरु' से मन्त्र ग्रहण किया हो, तो 'कौलिक गुरु' पूर्वोपदिष्ट मन्त्र का भी उपदेश पुनः कर दें और आद्या (इष्ट - देवता) की पूर्ण विद्या को प्रदान करें। साथ ही 'गुरु-पादुका' और 'स्व-पादुका' भी उपदिष्ट करनी चाहिए।

इसके उपरान्त शिष्य के किसी अङ्ग को स्पर्श कर अङ्ग-मातृकाऽक्षर से शिष्य का 'दीक्षा-नाम' उच्चारण करें, जिसके अन्त में 'आनन्द-नाथ' आए। यथा—अमृतानन्द-नाथ, घनानन्द-नाथ, भासुरानन्द-नाथ इत्यादि। शिष्य के पूर्व-नाम का उच्चारण कर दूसरा नाम उसे सुनाएँ, जैसे—'हे देवदत्त ! आज से तुम्हारा नाम 'उमानन्द-नाथ' हो गया है।'

'नाम-करण' के बाद शिष्य, 'गुरुदेव' द्वारा स्थापित 'यन्त्र' में स्वेष्ट-देवता की सपर्या कर, पुनः पञ्च - तत्त्वोपचारों से 'गुरुदेव' का अर्चन करे तथा गो, भूमि, हिरण्य, वस्त्र, अलङ्कार आदि यथा - शक्ति दक्षिणा प्रदान कर उन्हें सन्तुष्ट करे।

तदनन्तर शिव-स्वरूप कौल साधकों का पूजन कर नम्रता से श्रीगुरु - चरणों का स्पर्श करता हुआ प्रार्थना करे—

श्रीनाथ ! जगतां नाथ ! मन्नाथ ! करुणा-निधे ! परामृत-प्रदानेन, पूरयास्मन्मनोरथम् ॥

'हे नाथ ! हे करुणानिधे ! परमाऽमृत प्रदान से मेरी मनोकामना पूर्ण कीजिए।'

शिष्य की प्रार्थना सुनकर 'गुरुदेव' वीर साधकों की आज्ञा माँगें—

आज्ञा मे दीयतां कौलाः, प्रत्यक्ष - शिव - रूपिणो। सच्छिष्याय विनीताय, ददामि परमामृतम् ॥

'हे कौल साधकों ! विनीत शिष्य को मैं परमामृत देता हूँ। कृपया अपनी प्रत्यक्ष शिव - रूपिणी आज्ञा प्रदान करें।

उपस्थित 'कौल' साधक 'गुरुदेव' को निम्न प्रकार अनुमति प्रदान करें—

चक्रेश ! परमेशान ! कौल-पङ्कज-भास्कर ! कृतार्थं कुरु सच्छिष्यं, देह्यामुष्मै कुलामृतम् ॥

हे चक्रेश्वर ! आप कौल-कमलों को प्रफुल्लित करनेवाले सूर्य के समान परमेश्वर हैं। अपने इस शिष्य को 'कुलामृत' देकर कृतार्थ करिए।

तब 'गुरुदेव' द्वितीय - तृतीय खण्डों के साथ 'कारण' - पूर्ण 'चषक' (पात्र) 'शिष्य' के कर में प्रदान करें।

तदनन्तर गुरुदेव जगदम्बिका को विदा कर हृदय-मन्दिर में स्थापित करें और वीर-साधकों के मस्तक पर होम की भस्म का तिलक करें। अन्त में 'चक्रानुष्ठान' की विधि से साधकों के साथ बैठकर पान-भोजनादि क्रिया का सम्पादन करें।

'पूर्णाभिषेक-संस्कार' का उक्त विधान **नव-रात्र, सप्त-रात्र, पञ्च-रात्र** अथवा **त्रि - रात्र** पर्यन्त करना उचित है। असमर्थता हो, तो 'एक - रात्र' का भी विधान है, किन्तु कम-से-कम त्रि-रात्र - पर्यन्त अवश्य होना चाहिए।

ध्यान रहे कि शाक्त - क्रम में शाक्त, शैवी दीक्षा में शैव, विष्णु - मन्त्र में वैष्णव, सूर्य मन्त्र में सूर्योपासक और गणेश जी की दीक्षा-ग्रहण करने में गणेश-भक्त गुरु ही प्रशस्त हैं, किन्तु कौल साधक पाँचों देवताओं के मन्त्रों का उपदेश कर सकते हैं। अतः बुद्धिमान् शिष्य को यथा-सम्भव 'कौल-गुरु' से दीक्षा ग्रहण करनी चाहिए। लिखा भी है—

शाक्ते शाक्तो गुरुः शस्तः, शैवे शैवो गुरुर्मतः। वैष्णवे वैष्णवः सौरे, सौरो गुरुरुदाहृतः॥
गाणपे गाणपश्चैव, कौलः सर्वत्र सद्-गुरुः। अतः सर्वात्मना धीमान्, कौलाद् दीक्षां समाचरेत्॥

यदि 'पशु-गुरु' से मन्त्र ग्रहण किया जाए, तो शिष्य 'पशु-भाव' में ही रहता है। यदि 'वीर-गुरु' से दीक्षित हो, तो शिष्य 'वीर-साधक' बनता है, किन्तु यदि 'कौल-गुरु' से उपदेश ग्रहण करे, तो शिष्य ब्रह्म-वेत्ता (ब्रह्मज्ञ) होता है। शास्त्रों में स्पष्ट कहा है--

पशोर्वक्त्राल्लब्ध-मन्त्रः, पशुरेव न संशयः। वीराल्लब्ध - मनुर्वीरः, कौलाद् भवति ब्रह्म - वित्॥

'वीर-साधक' की परिभाषा

शाक्ताभिषेकी वीरः स्यात्, पञ्च-तत्त्वानि शोधयेत्। स्वेष्ट-पूजा-विधाने हि, न तु चक्रेश्वरो भवेत्॥

अर्थात्– जिस साधक का शाक्ताभिषेक हुआ हो, वह 'वीर' कहलाता है। वह अपने घर पर अपने शिष्यों के बीच स्वेष्ट-पूजन-समय में पञ्च-तत्त्वों का संशोधन कर सकता है, किन्तु पूर्णाभिषिक्तों के समक्ष 'चक्रेश्वर' नहीं बन सकता।

'कौल-साधक' की परिभाषा

सर्वं ब्रह्मणि सर्वत्र, ब्रह्मैव परिपश्यति। ज्ञेयः स एव सत् कौलो, जीवन्मुक्तो न संशयः॥

अर्थात्--जो प्रत्येक वस्तु में ब्रह्म और ब्रह्म में प्रत्येक वस्तु विद्यमान देखता है (सब जगह केवल ब्रह्म को ही देखता है), उसी को सच्चा 'कौल' समझना चाहिए। वह सदैव 'जीवन्मुक्त' है, इसमें तनिक भी संशय नहीं।

पूर्णाभिषिक्त कौलों की प्रशंसा

पूर्णाभिषेक-सिद्धानां, निर्मलात्मनाम् कौलानां। दर्शनात् स्पर्शनात्, घ्राणात्, द्रव्य-शुद्धिर्विधीयते॥

अर्थात्--निर्मल आत्मावाले पूर्णाभिषिक्त कौल महात्माओं के दर्शन से, स्पर्श से तथा सूँघने मात्र से द्रव्य-मात्र की शुद्धि हो जाती है। वे जिस वस्तु को एक बार देख लें, या छू लें अथवा सूँघ लें, वह वस्तु सर्वदा को शुद्ध हो जाती है।

दीक्षा

'मुक्ति-साधन' की विवेचना

वैष्णव, शैव, दक्षिण, वीर, सिद्धान्त तथा कौल-मार्ग का वर्णन

चार प्रकार की 'मुक्ति'

मुक्ति के विषय में 'महा-काल-संहिता' में लिखा है—

सालोक्यं चैव सामीप्यं, सारूप्यं च तृतीयकम् । सायुज्यमिति देवेशि ! मुक्तिरुक्ता चतुर्विधा ।।

अर्थात्—१ सालोक्य, २ सामीप्य, ३ सारूप्य तथा ४ सायुज्य–ये चार प्रकार की मुक्तियाँ होती हैं। जिस देवता की आराधना की गई है, उसके लोक का वास होना 'सालोक्य' मुक्ति है; उसके ही निकट का वास अर्थात् उसका गण बनना 'सामीप्य'-मुक्ति है; 'सारूप्य'-मुक्ति उसका ही जैसा रूप बनकर उसका गण बनता है और 'सायुज्य'-मुक्ति को निर्वाण-मुक्ति भी कहते हैं। इस मुक्ति से साधक ब्रह्म-पद को प्राप्त कर लेते हैं अर्थात् ब्रह्म ही बन जाते हैं। अन्य मुक्तियों से साधक पुण्य-क्षय के बाद फिर जन्म लेते हैं। लिखा भी है कि **'क्षीणे पुण्ये मर्त्य-लोके विशन्ति'** परन्तु निर्वाण-मुक्ति को प्राप्त साधक फिर कभी नहीं लौटता। कहा भी है कि **'न स पुनरावर्तते, न स पुनरावर्तते।'** विविध साधकों को कैसी-कैसी मुक्ति मिलती है, इस विषय में 'मेरु-तन्त्र' में लिखा है—

दक्षिणोपासकः कालः, ऊर्ध्वः सायुज्यमाप्नुयात् । देवतायास्तथा पूर्वः, सारूप्यं लभते परम् ।
सामीप्यं चोत्तरो लोके, पश्चिमस्त्वैहिकं फलम् । लाभस्त्यागश्चोपकारो, ह्यधो-मार्गेऽप्युदर्क-युक् ।।

अर्थात् दक्षिणाम्नायात्मक देवता (दक्षिणा-काली आदि, श्रीसूर्य, राम तथा कृष्णादि) के उपासक 'काल' बन जाते हैं अर्थात् 'जीवन्मुक्त' हो जाते हैं। ऊर्ध्वाम्नायात्मक देवता (श्रीविद्या) के उपासक 'सायुज्य' अर्थात् 'निर्वाण-मुक्ति' को प्राप्त कर ब्रह्म बन जाते हैं। पूर्वाम्नायात्मक देवता (लक्ष्मी, सरस्वती, भुवनेश्वरी, विष्णु तथा सदा-शिव आदि) के उपासक 'सारूप्य'-मुक्ति को प्राप्त करते हैं। उत्तराम्नायात्मक देवता (गुह्य-काली आदि) के उपासक 'सामीप्य'-मुक्ति को प्राप्त करते हैं। पश्चिमाम्नायात्मक देवता (कुब्जिका-विद्या आदि) के उपासक 'सालोक्य'-मुक्ति तथा ऐहिक (भोग-विलासादि स्वाभीष्ट) फल को प्राप्त करते हैं।

मुक्ति-साधन के लिए साधक को जिस प्रकार की 'मुक्ति' की अभिलाषा हो, उसी 'आम्नाय' से उपासना करे। छत पर चढ़ने के लिए जैसे 'सोपान' (सीढ़ी) की आवश्यकता होती है, वैसे ही 'उपासना' द्वारा 'मुक्ति' जैसे उच्च पद को पाने के लिए 'उपासना-क्रम' जैसे 'सोपान' का सहारा लेना पड़ता है। कोई मूढ़ बिना 'सोपान' (सीढ़ी) ऊपर चढ़ने को उत्सुक होगा, तो वह अवश्य ही गिर जायगा।

'आगम' के अनुसार नीचे से ऊपर जाने के मार्ग

अपने पूर्व-जन्म के कर्मानुसार जिसको जैसा अधिकार होगा, वैसे ही 'क्रम' से उसे ऊपर पहुँचना होगा। नीचे से ऊपर जाने के मार्ग 'आगम' में निम्न प्रकार बताए हैं—

सर्वेषामुत्तमो वेदो, वेदाद् वैष्णवमुत्तमम् । वैष्णवादुत्तमं शैवं, शैवाद् दक्षिणमुत्तमम् ।
दक्षिणादुत्तम वीरं, वीरात् सिद्धान्तमुत्तमम् । सिद्धान्तादुत्तमं कौलं, कौलात् पर-तरं नहि ।।

अर्थात् 'सबसे उत्तम वेद, वेद से उत्तम वैष्णव, वैष्णव से उत्तम शैव, शैव से उत्तम दक्षिण, दक्षिण से उत्तम वीर, वीर से उत्तम सिद्धान्त तथा सिद्धान्त से उत्तम कौल है।'

उक्त वचन रहस्य-मय है। इसकी 'व्याख्या' यह है कि 'उपनयन' के पूर्व विविध देवताओं के नाम-जप, कीर्तन, तीर्थाटन, दानादि करे। फिर 'उपनयन' द्वारा उत्तम वैदिक मन्त्र 'गायत्री' ग्रहण करे। वैदिक गायत्री के बाद वैष्णव-दीक्षा, उसके बाद शैव-दीक्षा, तदनन्तर शाक्त-दीक्षा, तत्पश्चात् वीर-दीक्षा ग्रहण कर श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन कर सिद्धान्त का मत ग्रहण करे। उसके बाद 'कौल - दीक्षा' ग्रहण करके 'कौल' बने। यही 'उपासना-क्रम' है।

वैष्णवों के भेद

'उपनयन' के बाद अभीष्ट मन्त्र की 'दीक्षा' लेने का नियम है। 'दीक्षा' गुरु-परम्परा के अनुसार होती है। उदाहरण के लिए वैष्णवों के अनेक भेद हैं। यथा--

१ वैखानस, २ राधा-वल्लभ, ३ गोकुलेश, ४ वृन्दावनी, ५ पञ्च-रात्र, ६ वीर-वैष्णव, ७ रामानन्दी, ८ हरि-व्यासी, ९ निम्बार्क और १० भागवत।

इनमें से किसी एक भेद का आश्रय लेकर 'वैष्णव' उपासना होती है। इन भेदों में किस प्रकार उपासना करते हैं, इस विषय का संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार है—

(१) 'वैखानस' वेद से अधिक 'स्मृति' को मानते हैं। किसी - किसी 'परम्परा' में 'गायत्री' तक नहीं जपते। अतः इस मत को द्विज लोग प्रायः ग्रहण नहीं करते। इस मत में शुष्क 'पशु - भाव' से उपासना होती है।

(२) 'राधा-वल्लभ' मत में राधा-कृष्ण के मन्त्र की दीक्षा लेकर दिव्य 'पशु-भाव' से उपासना करते हैं।

(३) 'गोकुलेश' मत में 'गोपाल-सुन्दरी' (सुन्दरी-गोपाल) मन्त्र की दीक्षा लेकर बहिर्वैष्णवाचार का पालन कर अन्त में कौलाचारी बन कर गन्धर्व-क्रम से उपासना करते हैं।

(४) 'वृन्दावनी' मत में द्विभुज वंशी-धर कृष्ण की उपासना दिव्य 'पशु-भाव' से करते हैं।

(५) 'पञ्च-रात्र' मत में शुष्क 'पश्वाचार' से उपासना होती है।

(६) 'वीर वैष्णव' मत में केवल 'विष्णु' को ही मानते हैं। अन्य सब देव - देवियों की निन्दा करते हैं और शुष्क 'पश्वाचार' से उपासना करते हैं।

(७) 'रामानन्दी' मत में राम के 'षडक्षर' या 'एकाक्षर' मन्त्र की दीक्षा ग्रहण कर 'रा' को प्रकृति तथा 'म' को पुरुष मानकर शुष्क 'पाशव-कल्प' से उपासना करते हैं।

(८) 'हरि-व्यासी' मत में 'पाशव'-कल्पोक्त यम-नियम से उपासना करते हैं।

(९) 'निम्बार्क' मत में वेद तथा तन्त्र के अनुसार आर्द्र 'पशु-भाव' से उपासना करते हैं।

(१०) 'भागवत' मत में स्मृति और पुराण के अनुसार उपासना करते हैं।

शैवों के भेद

शैव-उपासना के भेद सात प्रकार के हैं। यथा—

१ शिखी, २ मुण्डी, ३ जटी, ४ द्वि-दण्डी, ५ त्रि-दण्डी, ६ एक-दण्डी तथा ७ वीर-शैव।

इनमें से किसी एक भेद का आश्रय लेकर उपासना होती है। इनका संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है—

१ 'शिखी' मत में गृहस्थ द्विज योगाभ्यास से समाधि द्वारा शिव-रूप बननेवाले रुद्राक्ष - धारी होते हैं और विभूति धारण कर शान्त-चित्त प्रसन्नात्मा रहते हैं तथा ब्रह्मचारी रहकर श्रीविन्दु - मालिनी के आश्रय से 'दिव्य पशु-भाव' की उपासना करते हैं।

(२) 'मुण्डी' मत में संन्यासी होते हैं।

(३) 'जटी' मत में कोई तीन जटा, कोई एक जटा, तो कोई वक्त्र - जटा धारण कर नङ्गे रहते हैं। इन्हें 'नागा' कहते हैं।

(४) 'द्वि-दण्डी' मत में 'वचन' तथा 'मन' में दो दण्ड धारण करते हैं। यहाँ 'दण्ड' का अर्थ लाठी नहीं है। इस 'मत' में अन्तर्याग कर आर्द्र 'दिव्य-भाव' से उपासना करते हैं।

(५) 'त्रि-दण्डी' मत में 'काय', 'वचन' तथा 'मन' में तीन दण्ड धारण करते हैं।

(६) 'एक-दण्डी' मत में केवल 'मन' में एक 'दण्ड' धारण करते हैं। इनमें से कोई **'वीर-भाव'** से, तो कोई 'दिव्य-पशु-भाव' से उपासना करते हैं।

(७) 'वीर-शैव' मत में केवल 'शिव' की ही उपासना शाम्भवाचार से करते हैं।

शैव तथा वैष्णव उपासना का उक्त परिचय **'शक्ति-सङ्गम'** तन्त्र के आधार पर दिया गया है। अधिक एवं प्रामाणिक परिचय तो तत्सम्बन्धी साहित्य के अध्ययन और उन उपासकों के सत्सङ्ग से ही मिल सकता है। पाशव कल्पवाले तन्त्र-शास्त्र-निन्दक जो तथा-कथित **'वैष्णव'** और **'शैव'** हैं, उन लोगों को यह बात दिखाने के लिए कि 'शैव' तथा 'वैष्णव' धर्म भी 'तन्त्र' से ही निकले हैं, यह परिचय यहाँ दिया गया है। वास्तव में 'आगम' (तन्त्र) तथा 'निगम' (वेद) में कोई भेद नहीं है।

वैष्णव, शैव और कुल-मार्ग

'वैष्णव' से **'शैव'** उत्तम होने के कारण जो वैष्णव हैं, वे 'शैव' तथा 'शाक्त' बन सकते हैं, परन्तु शैव तथा शाक्त लोग 'वैष्णव' नहीं बन सकते। फिर 'शैव' तथा 'शाक्त' में से एक दूसरा बन सकता है, किन्तु 'वाम' दक्षिण नहीं बन सकता, न 'दक्षिण' वाम बन सकता है। हाँ, ये दोनों ही 'कौल' बन सकते हैं (मेरु - तन्त्र) क्योंकि 'वाम - मार्गी' को दक्ष-मार्ग अपनाने से विघ्न होगा और उसे सिद्धि नहीं मिल सकेगी। दक्ष-मार्गी के 'वाम-मार्ग' अपनाने से उसके दोनों ही लोक बिगड़ जाएँगे। अतः अपने **'कुल-मार्ग'** को जानकर उपासना करनी चाहिए।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 'कुल-मार्ग' यानी 'कौलों' का कल्प 'कुल-कल्प' और आचार **'कुलाचार'** के नाम से प्रसिद्ध है। यदि **'कुल'** शब्द के पूर्व 'स्व' या 'निज' शब्द हो अर्थात् 'स्व-कुलाचार' या 'निज-कुलाचार' हो, तो उससे अपने पितृ-परम्परागत आचार समझना चाहिए। अतः **'कुल-धर्म'** का अर्थ है **'कौल-मार्ग'** का विहित धर्म और **'स्व-कुल-धर्म'** है ब्राह्मण के लिए ब्रह्म- धर्म, क्षत्रिय के लिए क्षात्र धर्म इत्यादि। ब्राह्मणों का जो **'स्व-कुल-धर्म'** है, वह क्षत्रियों के लिए 'अधर्म' है, क्षत्रियों का जो स्व-कुल-धर्म है, वह ब्राह्मणों के लिए 'अधर्म' है इत्यादि, परन्तु जो **'कुल-धर्म'** है, वह सकल सनातनियों के लिए **'धर्म'** है। अतः शङ्कर-वचन है—**'कुल-धर्मः सनातनः'**।

'निर्वाण'-मुक्ति की प्राप्ति और क्रम-पूर्वक उपासना

उपासना के **'क्रम'** को जाननेवाले गुरु से ही **'क्रम-दीक्षा'** लेनी चाहिए। तभी साधना में सिद्धि मिलेगी। **'क्रम-दीक्षा'** के पूर्ण होने पर **'पूर्णाभिषेक'** होगा।

'क्रम-दीक्षा' का क्रम अपनी-अपनी 'गुरु-परम्परा' के भेद से अनेक प्रकार का होता है, जिसके सम्बन्ध में प्रकाश डाला जा चुका है। अब यहाँ भगवती काली के विषय में कुछ लिखकर इस विषय का उपसंहार किया जाता है।

'काल' = समय, 'ईकार' = शक्ति। अतः **'काली'** काल का विभाजन करनेवाली है। फिर **'क्'** रचना-तत्त्व, **'आ'** अनन्त, **'ल्'** विश्वात्मा तथा **'ई'** सूक्ष्मा है। अतएव 'काली' अति सूक्ष्म पदार्थ चैतन्य-मात्र है। उसे 'शून्य' ही कह सकते हैं। तात्पर्य यह कि जब अकेला 'शून्य' ही रह जाएगा, तब उसका कुछ भी भाव नहीं होगा। जब १ में शून्य लगाया जाएगा, तब वह १० बन जाएगा। इस प्रकार जितने ही शून्य बढ़ेंगे, उतना ही उस १ का भाव बढ़कर अन्त में अनन्त बन जाएगा। अतः 'काली' अति-सूक्ष्मा और अति-स्थूला है। उस 'एक' को ब्रह्म, आत्मा तथा देह कोई भी उपाधि मान सकते हैं। जैसी उपाधि मानते हैं, वैसा ही फल मिलता है। अतएव 'काली' अरूपा है। उसमें नाम की 'उपाधि' लगाने से वह साकार बनकर भक्तों की मनो - कामना पूरी कर देगी। **'दक्षिणा'** उपाधि से 'दक्षिणा - काली', **'गुह्य'** उपाधि से 'गुह्य-काली', **'रक्त'** उपाधि से 'रक्त-काली' (महा-त्रिपुर-सुन्दरी)—इस प्रकार 'उपाधि' के भेद से स्वरूप तथा मन्त्रादि में भेद हो जाता है।

विधि-वत् 'दीक्षा' ग्रहण करने से उक्त रहस्यों का ज्ञान साधक को क्रमशः होता जाता है और 'श्रद्धा' एवं 'विश्वास' के साथ निरन्तर साधना में लगे रहने से अपनी योग्यता और अधिकार के अनुसार वह सभी प्रकार की **'मुक्तियों'** के रहस्यों को भी अनुभव करता जाता है तथा अन्त में **'निर्वाण-मुक्ति'** का अधिकारी बन जाता है।

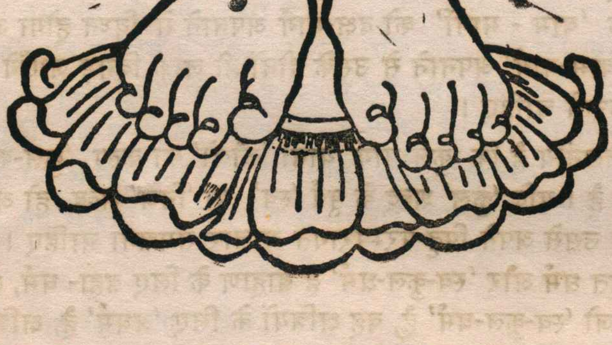

परमहंस श्री पूर्णानन्द गिरि

कृत

शाक्त-क्रम

नत्वा श्रीपर-देवतांघ्रि-युगलं 'शाक्त-क्रमं' कामदं, 'पूर्णानन्द-गिरि'स्तनोति शिवयोस्तन्त्रानुसार-क्रमान् ।
श्रीदीक्षा-गुरु-पाद-पद्म-युगल-ध्यानात्मनो निर्मलो, द्वैत-ज्ञान-विनाशनाय विदुषामात्मोद-संवृद्धये ।।१

श्रीदीक्षा-गुरु के कमल-रूपी चरणों के ध्यान से, जिन विद्वानों का मन निर्मल हो गया है, उनके द्वैत-ज्ञान को नष्ट करने के लिए तथा उनकी आत्म-शक्ति की वृद्धि करने के लिए, श्री पर-देवता के युगल चरणों को नमस्कार कर, समस्त कामनाओं की पूर्ति करनेवाले शिव-पार्वती के सम्वाद-रूप निगम-आगम-स्वरूप तन्त्र-शास्त्रानुसार क्रमों वाले 'शाक्त-क्रम' को पूर्णानन्द गिरि विस्तार-पूर्वक वर्णित करते हैं ।।१

प्रातः-कृत्य

सहस्रारे पद्मे सदा, प्रातः शिरसि निर्मले । पूर्णेन्दु-मण्डल-युते, शुद्ध-स्फटिक-सन्निभम् ।।२
गन्धानुलेपनं शान्तं, वरदाभय-पाणिनम् । मन्द-स्मितं निज गुरुं, कारुण्येनावलोकितम् ।।३
वामोरु-शक्ति-सहितं, मुक्तालङ्कार-भूषितम् । परमानन्द-संयुक्तं, स्मरेत् तन्नाम-पूर्वकम् ।।४

प्रातः-काल शिर में, निर्मल पूर्ण-चन्द्र - मण्डल से युक्त 'सहस्र - दल - कमल' में, शुद्ध स्फटिक के समान वर्णवाले, सुगन्ध-लेप से युक्त, शान्त, वर और अभय-मुद्रा धारण किए हुए, मन्द - मन्द मुस्कराते हुए, करुणा-पूर्ण दृष्टि से देखनेवाले अपने गुरु का, जो मुक्ता-अलङ्कारों से भूषित और परम आनन्द से युक्त हैं तथा जिनके वाम-पार्श्व में शक्ति विराजमान हैं, उनके नाम के सहित स्मरण करे ।।२–४

मनसा गन्ध-पुष्पाद्यैः, सम्पूज्य वाग्भवं जपेत् । ततो जपं समर्प्याथ, स्तवेन तोषयेद् गुरुम् ।।५

मानसिक भावना से, गन्ध-पुष्पादि द्वारा श्रीगुरु-देव का पूजन कर वाग्भव ('ऐं'-बीज) का जप करे । फिर जप समर्पित कर स्तुति द्वारा उन्हें प्रसन्न करे ।।५

तदुक्तमस्मत्-कुल-कृत-'शक्ति-तन्त्र-मन्त्रिकागम-सर्वस्वे'—

गुरु-स्तुति

नमो भूयो भूयः परम-गुरु - पादाब्ज - युगलेष्वमन्दानन्दौघ - प्रकट - मकरन्देषु नियतम् ।
मुदा स्वाहाद् वृत्तौ विरमति न मे स्वान्त-निरता, सुधा-धारा-पानादमर-रसनैव प्रति-मुहुः ।।१
सहस्रारे पद्मे शश-हरिण-हीने हिम-करे, स्मृतं श्रीमद्-दीक्षा-गुरु-चरण - पङ्केरुह - युगम् ।
नख-श्रेण्या चन्द्रावलि-किरण-वृन्दानि तनुते, हृदि-ध्वान्त-हारी हिम-कर-वरीयांशु भजताम् ।।२
न देवेशो ब्रह्मा हरिरपि न शम्भुर्न गणपो, न वा देवी देवासुर-नर - विधाता स्वयमपि ।
विचार्यान्यं देवं दिन-पतिमिवात्यन्त-तिमिरान्, महा-मोहात् त्रातुं प्रभवति न कोऽपि प्रथमतः ।।३
मनुं वा देवं वा गुरु-पदमनादृत्य भजताम्, समीचीना सिद्धिर्नहि भवति पूर्वाङ्ग-विरहात् ।
तदेतत् पूर्णत्वे गुरु - चरण - सेवैव शरणं, न केषां देवानां हुत - भुजि - मुखे तृप्तिरतुला ।।४

शिवा-वत् कन्या-वच्छिव-युवति-वत् साधु-यति-वत्, समाराध्यं शिष्यैरखिल-जन-सन्तोष-जननम् ।
भजे भूयः श्रीमद्-गुरु-चरण-पङ्केरुह-युगम्, युगान्तेऽप्यौदास्यं न खलु कुरुते प्रेम - निविडम् ।।५

कनीयान् कोऽप्येषां परम-गुरु-युग्मांघ्रि-सरसो - रुह-द्वन्द्वानन्द-स्रवदमृत - धारा-मधु-लिहाम् ।
अहं सत्यान् नाहं कृतिमथ परा यामि सुदृढा, मतिर्यस्यै तादृग् जयति जगदाराध्य-चरणः ।।६

निराकारे पारे भव - जल-निधाने स्व-परता, परा हृत्या भूत्या लसति भुवि भूताधिप इव ।
स किं वाच्योऽस्माभिर्गुरु-चरण-पङ्केरुह-भुवाममन्दानन्दानां धुरि मधुरिताऽन्तः-करण-भाक् ।।७

प्रसिद्धं पद्मेन्दोरहि-नकुल-वद् वैरमनयोः, सहस्रारे पद्मे गुरु - चरण - पङ्केरुह - नखाः ।
तदेतद् व्यत्यासं विदधति सदा दीधिति परा, गुरूणां साधूनां निखिल - समतैवाति - शयिता ।।८

आमोदाय सु-चेतसां गुरु-पदाम्भोजैक-सेवा-रतां, पाखण्डाचल-नाश-नाशनि परं सिद्धि-प्रदं सर्वतः ।
श्रीदीक्षा-गुरु-देवतांघ्रि-सरसी जन्मानुकम्पा भवा, ब्रह्मानन्द-यतेर्मतेः परिणतात् स्तोत्रं समुन्मीलितम् ।।९

मेरे कुल द्वारा संगृहीत **'शक्ति-तन्त्र-मन्त्रिकागम-सर्वस्व'** ग्रन्थ में निम्न 'गुरु-स्तुति' दी गई है—

श्री गुरु-देव के कमल-रूपी दोनों चरणों में बारम्बार नमस्कार हो । जिस कमल - रूपी व्यक्त पराग के आनन्द-रूपी समुद्र में साधक अहर्निश मग्न रहते हैं, उस आनन्द के स्वाद से मेरे चित्त की तृप्ति नहीं होती । जैसे अमृत का नित्य पान करने से भी देवता की रसना पुनः-पुनः अमृत-पान के लिए लालायित रहती है, कभी तृप्त नहीं होती ।।१

सहस्र-दल-कमल में शश तथा मृग-लाञ्छन से हीन पूर्ण-चन्द्र का प्रकाश है । उस स्थान में श्री गुरु-देव के दोनों कमल-रूपी चरण सुशोभित हैं । नखों की पंक्तियाँ अनेक पूर्ण - चन्द्रों की पंक्तियों के समान शोभित हैं । उस स्थान में अनेक चन्द्रों की किरणों से अपूर्व प्रकाश भासित होता है । उस प्रकाश का निरन्तर ध्यान करने से साधकों के हृदय का अज्ञानान्धकार दूर होता है ।।२

इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, शम्भु, गणेश, देवी, देवता, असुर, मनुष्य की कौन कहे, साक्षात् ब्रह्मा भी जब अज्ञान को दूर करने में असमर्थ होते हैं, तब दूसरे देवों की गणना ही क्या ? ऐसा बारम्बार विचार करने से ज्ञात होता है कि महा-मोह-रूपी अज्ञानान्धकार से रक्षा करनेवाले, प्रचण्ड सूर्य-रश्मि के समान देदीप्यमान, श्री गुरु-देव को छोड़ संसार में सर्व-प्रथम कोई भी समर्थ नहीं होता ।।३

जो लोग श्री गुरु-देव की शरण में न जाकर अपने प्रगल्भ पाण्डित्य के गर्व से मन्त्र अथवा देवता की उपासना करते हैं, उन्हें पूर्ण सिद्धि नहीं प्राप्त होती, क्योंकि अनुष्ठान का सर्व-प्रथम कर्तव्य गुरु-उपासना ही है । उससे वे वञ्चित ही रहते हैं । इसलिए पूर्णता प्राप्त करने में श्री गुरुदेव के कमल-रूपी चरणों की सेवा को छोड़ संसार में दूसरा मार्ग ही नहीं है । जिस प्रकार अग्नि के मुख में विधि-पूर्वक हवन करने से समस्त देवों की अतुल तृप्ति होती है, अन्यथा तृप्ति नहीं होती, उसी प्रकार श्री गुरु-देव की चरण-सेवा से निगमागम में प्रतिपादित सभी सिद्धियाँ-ऋद्धियाँ, श्री गुरु-चरण-सेवी साधक की चरण - सेवा में अहर्निश उपस्थित रहती हैं ।।४

शिवा-वत् (दक्षिण-मार्गोपासना) श्री भगवती जी की आराधना के समान, (कन्या-वत्) कुमारी-पूजन के समान, (शिव-युवति-वत्) शक्ति-मार्गोपासना, कुण्डलिनी-उत्थापन-सहित पश्चिम-मार्ग से—शिव-शक्ति-योग-रूपोपासना के समान, (साधु-यति-वत्) परम श्रोत्रिय, ब्रह्म - निष्ठ, पूर्णावधूत की सेवा-रूपी

उपासना के समान, समस्त संसार के मनुष्यों के हृदय को पूर्ण सन्तोष देनेवाले शिष्य-गणों से भली-भाँति आराधित श्री गुरु-देव के दोनों कमल-रूपी चरणों का बारम्बार भजन करता हूँ, क्योंकि युगान्त में सभी देव-देवी अपने-अपने भक्तों पर से अपनी-अपनी छत्र-छाया समेट लेते हैं, क्योंकि उस समय वे अपने-अपने को स्वतः सँभालने में असमर्थ रहते हैं। उस समय भी गुरु-शिष्य का जो प्रेम-रूपी बन्धन है, वह सुदृढ़ रहता है। वराभय-पाणि से आशीर्वाद देते हुए श्री गुरु-देव अपने शिष्य की सदैव रक्षा करते रहते हैं। प्रलय-काल में भी श्री गुरु-देव का कृपा-कटाक्ष उदासीनता धारण नहीं करता ।।५

श्री परम गुरु-देव के कमल-रूपी दोनों चरणों से निकलती हुई परमानन्दामृत - मयी धारा को पान करनेवाले भ्रमर-रूप सभी शिष्यों में कौन छोटा है, कौन बड़ा है—यह भाव नहीं रह जाता। श्री गुरु-देव-सन्निधान में 'अहं ब्रह्मास्मि' से भी परे होने पर, 'अहं' शब्द भी विलीन हो जाता है। उस अवस्था में भली-भाँति स्थित प्रज्ञा है, जिस महा-महेश्वर श्री गुरु-देव की, ऐसे जगद्-वन्दनीय श्री परम गुरु के कमल-रूपी दोनों चरणों में जय-शब्द सहित बारम्बार नमस्कार स्वीकृत हो।

तात्पर्य यह है कि शास्त्रों में उपासनारूढ़ साधकों की तीन कोटियाँ वर्णित हैं, चतुर्थ कोटि वर्णनातीत—अवाच्य है। शास्त्रों में उन कोटियों को अलङ्कार-रूप से इस प्रकार समझाया है—प्रथम कोटि में साधक अपने इष्ट के प्रति, **'तस्यैवाहं'** शब्द का प्रयोग करता है अर्थात् मैं उसका हूँ, दूसरी कोटि में इष्ट की प्रत्यक्षता होने से वही शब्द **'तवैवाहं'** का रूप धारण करता है अर्थात् मैं तुम्हारा ही हूँ, तीसरी कोटि में इष्ट के अत्यन्त सन्निकट होने पर वही शब्द **'त्वमेवाहं, सोऽहं, अहं ब्रह्मास्मि'** आदि महा-वाक्यों का रूप धारण करता है, परन्तु **'अहं'** शब्द वहाँ भी लगा है। चौथी अवस्था अप्रमेय-अनिर्वाच्य है, जहाँ पर जगद्-व्यापिका पर-ब्रह्म-स्वरूपिणी श्रीआद्या-मय साधक हो जाता है और कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुं समर्थ होता है। ऐसी पूर्णावस्था में स्थित जो श्री परम गुरु-देव हैं, ऐसे जगदाराध्य-चरण श्री परम गुरु-देव के दर्शन मात्र से ही संसार के समस्त प्राणियों का त्रय-ताप दूर हो जाता है ।।६

नाम-रूपात्मक जल भरा है जिसमें, ऐसे संसार-रूपी सागर से परे महज्ज्योति में स्थिति है जिन श्री परम गुरु-देव की; (अहं) तत्त्व से उत्पन्न जो अपने और पराए-पन का भाव है, उस (अहं) तत्त्व को पर-ज्योति महा-कुण्ड में हवन कर उस कुण्ड की विभूति धारण कर भूताधिप श्री भगवान् शङ्कर के समान जिनकी विभूति है, उसके वर्णन में हम सभी साधक असमर्थ हैं। परम बुद्धिमान् आनन्द-स्वरूप साधकों में जो अग्रगण्य हैं, उनका जो अन्तः-करण है, वही श्रीगुरु-देव के चरण-कमल-पराग से निकले हुए परमामृत का रसास्वादन कर सकता है, परन्तु वर्णन नहीं कर सकता ।।७

नकुल-सर्प-वैर के समान चन्द्रमा और कमल का भी संसार में विरोध प्रसिद्ध है, परन्तु सहस्र-दल-कमल पर श्रीगुरु-देव के कमल-रूपी दोनों चरणों में जो दश नख हैं, वे दशो नख कलङ्क-रहित पूर्ण-चन्द्र के समान दशो दिशाओं में व्याप्त हैं। इस विपरीत स्थिति में भी चन्द्र और कमल दोनों में म्लानता नहीं आती। इसे देख कर श्रेष्ठ बुद्धिमान् की भी बुद्धि चकित हो जाती है। ऐसी दशा में संसार की चकराई हुई बुद्धि को देखकर पूर्ण साधक भक्त कहता है कि श्री गुरुदेव के तथा परम साधु के हृदय में जो समता का भाव है, उसके कारण वैर-भाव भूल कर पद्म-चन्द्र की मैत्री पूर्ण-रूप से यहाँ प्रकट है। यह श्रीगुरु-देव के कमल-चरण की महिमा का द्योतक है ।।८

अनेक जन्मान्तरों के सञ्चित पुण्य से श्री गुरु-देव के कमल-रूपी चरणों की अनुकम्पा जिन्होंने प्राप्त कर ली है, जो एक-मात्र गुरु-देव की चरण-सेवा ही में रहते हैं, ब्रह्मानन्द में मग्न जिनके बुद्धि-रूपी सरोवर से निकली हुई जो यह श्री गुरु-देव की स्तुति है, शुद्ध हृदय के साधकों के कल्याण के लिए प्रभावी हो तथा पाखण्ड के पहाड़ को नाश कर समस्त सिद्धियों की—समस्त कामनाओं की सब तरह से पूर्ति करनेवाली हो ।।९

स्तवेनानेन संस्तुत्य, साधको वीर-वल्लभः । मूलाधारे मूल-विद्यां, स्वरूपां कुल - कुण्डलीम् ।।१५
तडित्-कटि-प्रभां सूक्ष्मां, विस-तन्तु-तनीयसीम् । प्रसुप्त-भुजगाकारां, सार्ध-त्रिवलयाङ्किताम् ।।१६
हंस-मन्त्रेण तां देवीं, समुत्थाय रसाम्बुजम् । भेदयित्वा सहस्रारे, परे शम्भौ समर्पयेत् ।।१७

वीर-भाव में स्थित वीरों का परम प्रिय जो वीर साधक है, वह पूर्वोक्त स्तुति से श्रीगुरु-देव के चरण-कमलों की वन्दना कर मूलाधार (चतुर्दल कमल) में स्थित सम्पूर्ण विद्याओं की जननी मूल-विद्या-स्वरूपा जो 'कुल-कुण्डलिनी' कोटि-विद्युत्-प्रभा के समान, अत्यन्त सूक्ष्म मृणाल-तन्तु के समान पतली, सोए हुए सर्प के समान आकारवाली, साढ़े तीन मण्डलों से संयुक्त है, उस परम शक्ति-स्वरूपा कुण्डलिनी देवी को 'हंसः' मन्त्र से जागृत कर चतुर्दल-कमल को भेदन कर मूल-द्वार से उस शक्ति को सहस्रार में ले जाकर परम शिव को समर्पित करे ।।१५-१७

ततः कुल-मुखस्योर्ध्वं, ध्यायेत् कुल-गुरून् क्रमात् । प्रह्लादानन्द-नाथाख्यं, सनकानन्दमेव च ।।१८
कुमारानन्द-नाथं च, वशिष्ठानन्द-नाथकम् । क्रोधानन्द-सुरानन्दौ, ध्यानानन्दं ततः परम् ।।१९
बोधानन्द-शुकानन्दौ, क्रमेणानेन साधकः । महा-रस-रसोल्लासि, हृदयाघूर्ण-लोचनाः ।।२०
कुलालिङ्गन-सम्भिन्न-चूर्णिताशेष-तामसाः । कुल-शिष्यैः परिवृताः, पूर्णान्तःकरणोद्यताः ।।२१
वराभय-युताः सर्वे, सर्वालङ्कार-भूषिताः । शक्ति कुल-गुरुं सर्वं, कथितं च सुखावहम् ।।२२

अनन्तर सहस्रार में जो पहुँची हुई 'कुल-कुण्डलिनी' है, उसके मुख के ऊपर प्रदक्षिणा - क्रम से कुल-गुरुओं का क्रम से ध्यान करे। यथा—१ प्रह्लादानन्दनाथ, २ सनकानन्दनाथ, ३ कुमारानन्दनाथ, ४ वसिष्ठानन्दनाथ, ५ क्रोधानन्दनाथ, ६ सुरानन्दनाथ, ७ ध्यानानन्दनाथ, ८ बोधानन्दनाथ, ९ शुकानन्द-नाथ । इस क्रम से साधक ध्यान करे कि महदव्यक्त-रस के रसास्वादन द्वारा इन कुल-गुरुओं के हृत्कमल परमोल्लास से प्रफुल्लित हैं तथा उसी रस से इनके अनिमेष लोचन उल्लसित हैं। महच्छक्ति-स्वरूपा श्री कुल-कुण्डलिनी के आलिङ्गन से अज्ञानान्धकार-रूपी जन्म-जन्मान्तर के बन्धनों को इन्होंने नष्ट कर दिया है। कुल-शिष्यों से परिवेष्ठित ये पूर्ण अन्तःकरण से शिष्यों के कल्याणार्थ वर और अभय - मुद्रा तथा समस्त अलङ्कारों से मण्डित समस्त सुखों के देनेवाले हैं। इन शक्ति - सम्पन्न गुरुओं को नमस्कार है ।।१८-२२

एवं कुल-गुरून् नत्वा, चन्द्रामृतेन तान् सुधीः । तर्पयित्वा पुनर्मूले, द्रावयेत् तेन वर्त्मना ।।२३
अहं देवी न चान्योऽस्मि, ब्रह्मैवाहं न शोक-भाक् । सच्चिदानन्द-रूपोऽहमात्मानमिति चिन्तयेत् ।।२४

इस प्रकार कुल-गुरुओं को नमस्कार कर चन्द्र-कला से बहते हुए अमृत से गुरुओं का तर्पण कर, पुनः उसी मार्ग से श्रीकुण्डलिनी-शक्ति को लौटा कर मूलाधार में स्थापित करे। उस कुण्डलिनी के प्रभा-पटल से व्याप्त हूँ अर्थात् दिव्य तेजो - मय प्रकाश पृष्ठ-वंश के छिद्रों में मूलाधार से सहस्रार - पर्यन्त शरीर में भासित हो रहा है, ऐसा चिन्तन करे। 'मैं देवी ही हूँ, ब्रह्म मैं ही हूँ, सच्चिदानन्द-स्वरूप मैं ही हूँ'—समस्त चिन्ताओं से मुक्त होकर ऐसी भावना भली-भाँति दृढ़ रूप से आत्मा में स्थिर करे ।।२३-२४

यदि पश्येत् कुल-तरुं, साधकः प्रणमेत् तदा । अशोकः केशरः कर्णिकारश्च तिल्वकस्तथा ।
नमेरुश्च प्रियालुश्च, सिन्धुवार - कदम्बकौ ।।२५

मधूकश्चाथ चिञ्चैव, कुल-वृक्षाश्च वै दश । ततो मालाऽऽदिकं त्यक्त्वा, कुर्याच्छौचादिकाः क्रियाः ।।२६

साधक यदि कुल-वृक्षों को देखे, तो भक्ति-पूर्वक उसी क्षरण प्रणाम करे। कुल-वृक्ष हैं–१ अशोक, २ नाग-केशर, ३ कर्णिकार (कनेर), ४ तिल्वक (लोध), ५ नमेरु (विल्व), ६ प्रियालु(चिरौंजी), ७ सिन्धु-वार (निर्गुण्डी), ८ कदम्ब, ६ महुआ, १० इमली—ये दश कुल-वृक्ष हैं ।।२५–२६

प्रातः-कृत्यमकृत्वा तु, यो देवीं भक्तितोऽर्चयेत् । तस्य पूजा च विफला, शौच-हीना यथा क्रिया ।।२७

प्रातः-कृत्य के अनन्तर माला, आसन छोड़ शौचादि क्रिया करे। प्रातः-कृत्य न करके जो भक्ति से श्री जगदम्बा की पूजा करता है, शौच-हीन समस्त क्रियाएँ जैसे निष्फल होती हैं, उसी प्रकार साधक की समस्त पूजा विफल होती है ।।२७

स्नान-पूजादिकं सर्वं, स्व-कल्पोक्तं समाचरेत् । एक-लिङ्गे श्मशाने वा, शून्यागारे चतुष्पथे ।।२८
बिल्व-मूले प्रान्तरेऽथ, नदी-पर्वत-मस्तके । उर्जटे निर्जने वासे, स्व - गृहे देवताऽऽलये ।।२९

अश्वत्थ - सन्निधौ वापि, पशु - दृष्टि-विवर्जिते । पूजयेद् भुवनेशानीमिति पीठं समीरितम् ।।३०
पञ्च - क्रोशान्तरे यत्र, न लिङ्गान्तरमीक्ष्यते । तदेक - लिङ्गमाख्यातं, तत्र सिद्धिरनुत्तमा ।।३१

स्नान-पूजादि समस्त क्रिया स्व-गुरु-परम्परागत शास्त्रानुसार ही करना चाहिए। एक-लिङ्ग में, श्मशान में, सूने घर में, चौराहे में, विल्व के नीचे, ग्राम के बाहर, नदी के तीर, पर्वत पर, उजाड़ निर्जन स्थान में, अपने घर में, देव-स्थान में अथवा पीपल वृक्ष के नीचे, परन्तु पशु-दृष्टि-वर्जित इन सब स्थानों में भुवनेशानी श्रीपराम्बा जगज्जननी की पूजा करनी चाहिए। ऐसे स्थानों को 'पीठ' कहते हैं, इन स्थानों में पूजा सफल होती है। पाँच कोस के भीतर जहाँ कोई दूसरा शिव-लिङ्ग स्थापित नहीं है, उस स्थान को एक-लिङ्ग कहते हैं। वहाँ पूजन करने से शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है ।।२८-३१

विशेषः कथ्यते चात्र, कूर्म - चक्रस्य लक्षणम् । रेखा - चतुष्टयं कार्यं, पूर्व-पश्चिम-योगतः ।।३२
उत्तराद् दक्षिणं यावत्, नव-कोष्ठं यथा भवेत् । पूर्वाग्नि-याम्य-निरृतिः, प्रतीच्यां पञ्च-वर्गकम् ।।३३

मरुत्-कुबेर-शम्भौ च, यदि वर्णाश्चतुश्चतुः । लक्षौ क्रमात् समालिख्य, साधको वीर-वल्लभः ।।३४
मध्य-कोष्ठं ततः कार्यं, पूर्व-वन्नवधा क्रमात् । पूर्वादि शम्भु - पर्यन्ते, येष्वेष्वक्षरमालिखेत् ।।३५
क्षेत्राद्यक्षर - वर्णं तु, यत्र कोष्ठे प्रदृश्यते । दीप - स्थानं तदेव तु, तत्र सिद्धिरनुत्तमा ।।३६

विशेष जानने योग्य कूर्म-चक्र का लक्षण बताते हैं—पूर्व से पश्चिम को चार रेखा करे। उत्तर से दक्षिण को भी चार सीधी रेखा करे, जिससे नौ कोठे बन जाएँ। पूर्व, दक्षिण, निऋति, पश्चिम के कोठों में पञ्च वर्गों को लिखे। वायु-कोण में, उत्तर में, ईशान में यादि वर्ण (य, र, ल, व) चार-चार वर्ण लिखे। 'ल' और 'क्ष' क्रम से वीराचार का प्रेमी साधक लिखे। पहिले की भाँति मध्य में भी चार रेखा करे, जिससे नव कोठे फिर बन जाएँ। पूर्व से ईशान-पर्यन्त सबमें अक्षर लिखे—अकारादि-क्रम से दो-दो के विधान से उस चक्र में क्षेत्र का आदि अक्षर-वर्ण जहाँ दीख पड़े, वही 'दीप' का स्थान है। वहाँ 'दीप' रखने से अपूर्व सिद्धि मिलती है। 'दीप- स्थान' के बिना जो जप, होम करता है, उसकी समस्त क्रिया निष्फल होकर अभिचार के लिए ही होती है ।।३२–३६

दीप-स्थानं बिना यो हि, जपं होमं समाचरेत् । तत्-सर्वं निष्फलं याति, चाभिचाराय कल्प्यते ।
मृदु-चूडकमासोनश्चान्येषु कोमलेषु वा । विष्टरेषु समाश्रित्य, साधयेत् सिद्धिमुत्तमाम् ।।३७
अर्वाक् षण्मासतो गर्भ - च्युतमाहुर्मृदुं बुधाः । चूडोपनयनैर्हीनं, मृतं तं चूडकं विदुः ।।३८
निवृत्त-चूडको बालो, हीनोपनयनः पुमान् । यो मृतः पञ्चमे वर्षे, तमेव कोमलं विदुः ।।३९
मृतासनं बिना यो हि, यजेत् त्रिलोक-तारिणीम् । तावत्-कालं नारकी स्याद्, यावदाभूत-सम्प्लवम् ।
मृताभावे विष्टरं च, शव-रूपं प्रकल्पयेत् ।।४०

मृदु, चूडक, कोमल–इनमें से किसी पर बैठे या अन्य आसन तद्-रूप कल्पित कर साधना करने से उत्तम सिद्धि प्राप्त होती है। छः मास के पूर्व जो गर्भ गिर जाता है, उसकी **'मृदु'** संज्ञा है। मुण्डन तथा उपनयन होने के पूर्व जो बालक मर गया है, उसके शव की **'चूडक'** संज्ञा है। जिस बालक का मुण्डन हो गया है, परन्तु यज्ञोपवीत-संस्कार नहीं हुआ है, ऐसे मरे हुए पञ्चम वर्ष के भीतरवाले बालक के शव की **'कोमल'** संज्ञा है। शवासन के बिना जो त्रिभव-तारिणी भगवती का भजन करता है, वह महा-प्रलय-पर्यन्त नरक-गामी होता है। उपर्युक्त शव यदि न प्राप्त हो, तो विष्टर को ही शव-रूप से कल्पित करे ।।३७–४०

अन्तर्यजन

अथान्तर्यजनं वक्ष्ये, दृष्टादृष्ट-फल-प्रदम् ।।४१
गुरु-ध्यानं प्रकुर्वीत, यथा-पूर्वं विशाल-धीः । स्नायाच्च विमले तीर्थे, पुष्करे हृदयाश्रिते ।।
विन्दु-तीर्थेन वा स्नायात्, पुनर्जन्म न विद्यते ।।
इडा-सुषुम्णे शिव - तीर्थकेऽस्मिन्, ज्ञानाम्बु - पूर्णे वहतश्शरीरे ।
ब्रह्माम्बुभिः स्नाति तयोः सदा यः, किं तस्य गाङ्गैरपि पुष्करैर्वा ।।४३

अब दृष्ट और अदृष्ट दोनों फलों के देनेवाले अन्तर्यजन की विधि को बतलाते हैं। श्रीगुरुदेव के ध्यान की जो विधि पहले कही है, तदनुसार ध्यान करे और हृदय - रूपी विमल पुष्कर - तीर्थ (द्वादश दल-कमल के अनाहत-चक्र) में स्नान करे अथवा विन्दु-तीर्थ (द्वि-दल-कमल के 'हं, क्षं'–– इन दो दलों से विभूषित आज्ञा-चक्र-तीर्थ) में जो स्नान करता है, उस साधक का पुनर्जन्म नहीं होता। इडा - सुषुम्णा के शिव-तीर्थ (शाम्भवी मुद्रा) से (पूर्ण ज्ञान-रूपी परम ज्योतिर्मय) जो जल निरन्तर शरीर में बहा करता है, उस ब्रह्म - रूपी जल से गङ्गा (सूर्य-नाड़ी) यमुना (चन्द्र-नाड़ी—इन दोनों के सङ्गम में सरस्वती-रूपा सुषुम्णा में जो साधक स्नान करता है, उसके लिए ये गङ्गा-पुष्कर क्या ? ।।४१-४३

इति स्नानं समुद्दिष्टमथ सन्ध्यां समाचरेत् । शिव-शक्त्योः समायोगो, यस्मिन् काले प्रजायते ।।४४
सा सन्ध्या कुल-निष्ठानां, समाधिस्थैः प्रजायते । चन्द्रार्कानल-सङ्घट्टाद् गलितं यत् परामृतम् ।।४५
तेनामृतेन दिव्येन, तर्पयेत् पर-देवताम् । तर्पणं कथितं दिव्यमर्घ्य-साधनमुच्यते ।।४६

स्नान के बाद साधक सन्ध्या करे। जिस काल में साधक मूलाधार से कुण्डलिनी को ले जाकर सहस्रार में परम शिव को समर्पित करता है, कुल-कर्म-निष्ठ साधकों की वही सन्ध्या है। अतः समाधिस्थ गुरु-जनों से सेवित उस सन्ध्या को करे। अग्नि, सूर्य और चन्द्र—इन तीनों के संयोग से निकला हुआ जो परामृत है, उस दिव्य अमृत से पर-देवता का तर्पण करे। इस दिव्य तर्पण को कह कर अर्घ्य की विधि बतलाते हैं ।।४४-४६

ब्रह्म-रन्ध्रादधो भागे, यच्चान्द्रं पात्रमुत्तमम् । कला-सारेण सम्पूर्य, तर्पयेत् तेन खेचरीम् ॥४७

ब्रह्म-रन्ध्र के अधो भाग में चन्द्र का पात्र है, उस पात्र को समस्त कलाओं से पूरित कर उससे ब्रह्म (आकाश) में स्थित पर-देवता को अर्घ्य से तृप्त करे ॥४७

आधारे लिङ्ग-नाभौ हृदय-सरसिजे तालु-मूले ललाटे, द्वे पत्रे षोडशाब्जे द्वि-दश-दश-दले द्वादशार्धे चतुष्के ।
वासान्ते बाल-मध्ये डफ-कठ सहिते कण्ठ-देशे स्वराणाम्,
हक्षौ कोदण्ड-मध्ये न्यसतु विमल - धीर्न्यास-सम्पत्ति-सिद्ध्यै ॥४८

मूलाधार में चतुर्दल-कमल, लिङ्ग-मूल में षट्-दल कमल, नाभि में दश - दल - कमल, हृदय में द्वादश-दल-कमल, नाभि में दश-दल-कमल, ललाट में द्वि-दल-कमल है। इन कमलों में सम्पत्ति की सिद्धि के लिए साधक क्रम से वर्ण-मातृकाओं का न्यास करे। मूलाधार में 'व' से 'स' पर्यन्त ४ वर्ण, लिङ्ग-मूल के कमल में 'ब' से 'ल' पर्यन्त ६ वर्ण, नाभि के कमल में 'ड' से 'फ' पर्यन्त १० वर्ण, हृदय के कमल में 'क' से 'ठ' पर्यन्त १२ वर्ण, कण्ठ के कमल में सम्पूर्ण स्वरों का और ललाट के कमल में 'ह' एवं 'क्ष' २ वर्णों का न्यास करे ॥४८

इत्यन्तर्मातृका-वर्णान्, ध्यायेत् कण्ठादिषु क्रमात् । षडङ्गमथ कुर्यात्तु, येन देवी-मयो भवेत् ॥४९

इस प्रकार अन्तर्मातृका-वर्णों का कण्ठ-प्रदेश आदि के क्रम से ध्यान करे। उसके बाद षडङ्ग-न्यास करे, जिसके करने से साधक देवी-रूप हो जाता है ॥४९

ईडचमान-हृदर्घ्योऽयं, हृदये स्याच्चिदात्मकः । क्रियते तत्परत्वेन, हृन्मन्त्रेण ततः परम् ॥५०
सर्वज्ञादि-गुणोत्तुङ्गे, सम्विद्-रूपे परात्मनि । क्रियते विषयाहारः, शिरो-मन्त्रेण देशिकैः ॥५१
हृच्छिरो-रूप-चिद्-धाम, मयैषा भावना दृढा । क्रियते निज-देहस्य शिखा-मन्त्रेण देशिकैः ॥५२
मन्त्रात्मकस्य देहस्य, मन्त्र-वाक्येन तेजसा । सर्वतो वर्म-मन्त्रेण, क्रियते हस्त-संस्कृतिः ॥५३
यद्-ददाति परं ज्ञानं, सम्विद्-रूपे परात्मनि । हृदयादि-मयं तेजः, स्यादेतन्-नेत्र-संज्ञकम् ॥५४
अध्यात्मिकादि-रूपं यत्, साधकस्यापि सीदयेत् । अविद्या-जात-मन्त्रं यत्, परं धाम समीरितम् ॥५५

सर्व-प्रथम चेतना का जो स्थान साधकों से प्रशंसनीय है, उस स्थान में चित्-शक्ति को समाहित कर **'हृदयाय नमः'** का चिन्तन करे। सर्वज्ञादि श्रेष्ठ गुणों से युक्त सम्विद् - रूप परमात्मा का निवास-स्थान जो शिर - प्रदेश है, जहाँ पर स्थिति होने से विषयों का निरोध होता है, वहाँ **'शिरसे स्वाहा'** का चिन्तन-द्वारा स्पर्श करे। हृदय और शिर-प्रदेश चेतना के मुख्य स्थान हैं, ऐसी दृढ़ भावना का चिन्तन करता हुआ साधक **'शिखायै वषट्'** का शिखा-प्रदेश में चिन्तन करे। जिस साधक का शरीर मन्त्रात्मक है, मन्त्र-वाक्य के तेज से कवच के समान समस्त शरीर सब तरफ से रक्षित है, **'कवचाय हुं'** इस वर्म-मन्त्र द्वारा चिन्तन से हाथों का संस्कार करे। सम्विद-रूप परमात्मा का जो पर-ज्ञान हृदय-प्रदेश है उस चिद्-रूप आत्मा के स्थान का लक्ष्य करानेवाले परम-तेजोमय द्वि-दल-कमल में **'नेत्र-त्रयाय वौषट्'** का चिन्तन करे। अविद्या-जात जो परम-तेजस्-तत्त्व-युक्त है, जिससे समस्त अज्ञान-रूपी बन्धन कट जाते हैं, अध्यात्म का आवरण शिथिल हो गिर जाता है, उस मन्त्र **'अस्त्राय फट्'** का चिन्तन करे ॥५०-५५

इति न्यासं समाचर्य, ततो ध्यायेच्चिदात्मकम् । शक्ति-द्वय-पुटान्तस्थमलक्ष्य - द्वय-संस्थितम् ॥५६
ज्योतिस्तत्त्व-मयं ध्यायेत्, कुलाकुल-नियोजनात् । शृङ्गाट-द्वय-मध्यस्थं, शक्ति-द्वय-पुटी-कृतम् ॥५७
सदा सम-रसं ध्येयं, ध्यानं तत् कुल-योगिनाम् । किरणस्थं तदग्निस्थं, चन्द्र-भास्कर-मध्यगम् ॥५८
महा-शून्ये लयं कृत्वा, पूर्णस्तिष्ठति योगि-राट् । निरालम्बे पदे शून्ये, यत् तेज उप-जायते ॥५९

इस अन्तर्न्यास के अनन्तर चिदात्मक ध्यान करे। शक्ति - द्वय के पुट के भीतर अलक्ष्य जो दो तत्त्व स्थित हैं–'कुल' और 'अकुल' से सम्बन्धित ज्योतिस्तत्त्व-मय का ध्यान करे। दो शृङ्गाटकों के बीच में दो शक्तियों से सम्पुटित मध्य भाग में जो समान-रूप स्थिति है, वही कुल-योगियों का ध्यान है। किरण में स्थित उस अग्नि में स्थित सूर्य - चन्द्र के मध्य में जो तेज पैदा होता है, उस तेज - दर्शन पर्यन्त समस्त क्रियाओं का नित्य अभ्यास करे, यही योगियों का ध्यान है ॥५६-५९

तदन्तमभ्यसेन्नित्यं, ध्यानमेतद्धि योगिनाम्, अथ पूजां प्रवक्ष्यामि यथा तन्त्रानुसारतः।
अर्चयन् विषयैः पुष्पैस्तत्-क्षणात् तन्मयो भवेत्। न्यासस्तन्मयता-बुद्धिः, सोऽहं भावेन पूजयेत् ॥६०

ध्यान के अनन्तर अन्तः-पूजन तन्त्र-शास्त्रानुसार कहते हैं। विषय - रूपी पुष्पों से अर्चन करता हुआ साधक तत्काल ही तन्मय हो जाता है। न्यास से तन्मयता-बुद्धि जागृत होती है। **'मैं इष्ट का स्वरूप ही हूँ'**—इस भाव से पूजन करे ॥६०

अमानमनहङ्कारमरागममदं तथा। अमोहकमदम्भं चाद्वेषाक्षोभकौ तथा ॥६१
अमात्सर्यमलाभं च, दश पुष्पं विदुर्बुधाः। अहिंसा परमं पुष्पं, पुष्पमिन्द्रिय - निग्रहम् ॥६२
दया-पुष्पं क्षमा-पुष्पं, ज्ञान-पुष्पं च पञ्चमम्। इत्यष्ट-सप्तभिः पुष्पैः, पूजयेत् पर-देवताम् ॥६३

१ अमान, २ अनहङ्कार, ३ अराग, ४ अमद, ५ अमोह, ६ अदम्भ, ७ अद्वेष, ८ अक्षोभ, ९ अमात्सर्य, १० अलाभ—ये दश - पुष्प विद्वानों ने कहे हैं। ११ अहिंसा - रूपी श्रेष्ठ पुष्प, १२ इन्द्रिय-निग्रह, १३ दया - पुष्प, १४ क्षमा - पुष्प, १५ ज्ञान - पुष्प—इन पञ्च - दश पुष्पों से पर - देवता का पूजन करे ॥६१-६३

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि, जपं तन्त्रानुसारतः। माला पञ्चाशको प्रोक्ता, सूत्रं शक्ति-शिवात्मकम् ॥६४
ग्रथिता कुण्डली-शक्तिः, कलान्ते मेरु-संस्थितिः। अनुलोम-विलोमेन, जपं हृदि समर्पयेत् ॥६५

अन्तः - पूजन के बाद तन्त्र - शास्त्रानुसार 'अन्तर्जप' बताते हैं। पचास मातृका - रूपी दाने हैं, जिनमें शक्ति-शिवात्मक सूत्र है। कुण्डलिनी-शक्ति से ग्रथित है, कलान्त ही जिसमें मेरु है—ऐसी माला से अनुलोम-विलोम जप करके हृदय-स्थित इष्ट-देवता को जप-समर्पण करे ॥६४-६५

अथ होमं प्रवक्ष्यामि, येन चिन्मयता भवेत्। अथात्मानमपरिच्छिन्नं, जानीयात् साधकोत्तमः ॥६६
आत्मान्तरात्म-परम-ज्ञानात्मानः प्रकीर्तिताः। एतद्-रूपं तु चित्-कुण्डं, चतुरस्रं विभावयेत् ॥६७
आनन्द-मेखला रम्यं, विन्दु-त्रि-वलयाङ्कितम्। अर्ध-मात्रा योनि-रूपं, ब्रह्मानन्द-मयो भवेत् ॥६८
पर-देव-मये-सर्पिर्ज्ञान-दीप विजृम्भिते। कचिचदग्नौ प्रजुहुयात्, साधकः स्थिर-मानसः ॥६९
शब्दाख्यं मातृका-रूपः, अक्षरं तु विराजितम्। अक्षराणि हुतान्यत्र, निशब्दो ब्रह्म जायते ॥७०
कृत्याकृत्यं पाप - पुण्यं, सङ्कल्पं च विकल्पकम्। धर्माधर्मौ साधकेन्द्रो, हविष्वेव प्रकल्पयेत् ॥७१

अब 'अन्तर्हवन' की विधि बतलाते हैं, जिसके करने से साधक चिन्मयता को प्राप्त होता है। साधकों में श्रेष्ठ जो साधक है, वह आत्मा के सर्व - व्यापक (अपरिच्छिन्न) रूप को जाने। आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा, ज्ञानात्मा—ये चार चित्-कुण्ड के किनारे हैं, ऐसी भावना करे। आनन्द - रूपी सुन्दर मेखला विन्दु-रूप तीन वलयों से सुशोभित है। अर्ध-मात्रा योनि-रूप से जिसमें अङ्कित है, जिसमें हवन करने से साधक ब्रह्मानन्द-मय हो जाता है। पर-देव - मय घृत को ज्ञान - रूपी दीप-शिखा से पिघलाकर पूर्वोक्त कथित चित्-कुण्ड में साधक स्थिर मन से हवन करे। शब्द-मातृका-रूप अक्षरों से जो सुशोभित है,

उन मातृकाओं का हवन कर साधक निःशब्द ब्रह्म-रूप हो जाता है। कृत्य, अकृत्य, पाप, पुण्य, सङ्कल्प, विकल्प, धर्म इन सबको साधक श्रेष्ठ हवि कल्पित करे ।।६६-७१

चिदग्नौ जुहुयान्मन्त्री, मूलान्तेन तथा क्रमात् । नाभि-चैतन्य-रूपेऽग्नौ, हविषा मनसा स्रुचा ।।७२
ज्ञान-प्रदीपिते नित्यमक्ष-वृत्तोर्जहोम्यहम् । वह्नि-जायान्त-मन्त्रेण, दद्याच्च प्रथमाहुतिम् ।।७३
धर्माधर्मौ हविर्दीप्ते, स्वात्माग्नौ मनसा स्रुचा । सुषुम्ना-वर्त्मना नित्यमक्ष-वृत्तीर्जुहोम्यहम् ।।७४
वह्नि-जायान्त-मन्त्रेण, द्वितीयाहुतिमादिशेत् । प्रकाशाकाश-हस्ताभ्यामवलम्ब्यात्मना स्रुचा ।।७५
धर्माधर्म-कला-स्नेह-पूर्ण-वह्नौ जुहोम्यहम् । वह्नि-जायान्त-मन्त्रेण, तृतीयाहुतिमादिशेत् ।।७६
अन्तर्निरन्तर - निरिन्धन - मेधमाने, मायान्धकार - परि - पन्थिनि सम्विदग्नौ ।
कस्मिश्चिदद्भुत - मरीचि - विकाश - भूमौ, विश्वं जुहोमि वसुधादि - शिवावसानम् ।।७७

मन्त्र-वेत्ता चिद्-रूपी अग्नि में मूल-मन्त्र के साथ यथा-क्रम से हवन करे। नाभि के चैतन्य-रूप अग्नि में पूर्वोक्त हवि को मन - रूपी स्रुवा से, अहर्निश ज्ञान से प्रदीप्त अग्नि में, इन्द्रिय - वृत्तियों का मैं हवन करता हूँ। वह्नि जाया (स्वाहा) मन्त्र के अन्त में जोड़ कर प्रथम आहुति दे। धर्म-अधर्म ही हवि है, आत्मा ही प्रदीप्त अग्नि है, मन ही स्रुवा है, सुषुम्णा-मार्ग से अक्ष-वृत्तियों का उस अग्नि में मैं नित्य हवन करता हूँ। वह्नि-जायान्त मन्त्र से दूसरी आहुति दे। प्रकाश तथा आकाश - रूपी हाथों से आत्मा - रूपी स्रुवा से, धर्म - अधर्म कला-रूपी घृत को लेकर मैं पूर्ण वह्नि में हवन करता हूँ। वह्नि-जायान्त मन्त्र से तीसरी आहुति दे। अन्तर भाग में जो निरन्तर माया-रूपी अन्धकार-पथ में सम्विद्-रूप अग्नि माया-रूपी भित्ति के आधार से बढ़ती हुई प्रज्वलित हो रही है—ऐसी किन्हीं अद्‌भुत किरणों की जो विकाश-भूमि है उस भूमि में संसार से लेकर शिव-पर्यन्त समस्त विश्व का मैं हवन करता हूँ ।।७२-७७

इत्यन्तर्जनं कृत्वा, साक्षाद् ब्रह्म - मयो भवेत् ।।

इस अन्तर्यजन को करके साधक साक्षात् ब्रह्म-मय हो जाता है।

अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि, यजनं चान्तरं महत् । स्वकीय-हृदये ध्यायेत्, पञ्चाशदक्षरात्मकम् ।।७८
तन्मूले भावयेन्मन्त्री, नाना-मन्त्रोप-शोभितं । उद्यदादित्य-सङ्काशं, व्याप्तं ब्रह्माण्ड-मण्डलम् ।।७९
शत-योजन-विस्तीर्णं, ज्योति-मन्दिरमुत्तमम् । चतुर्द्वार-समायुक्तं हेम - प्राकार-भूषितम् ।।८०
बहु-चामर - घण्टादि- वितानैरुप - शोभितम् । मन्द-वायु-समाक्रान्तं, गन्ध-पुष्पैरलंकृतम् ।।८१
तन्मध्ये वेदिकां ध्यायेन्, नानारत्नोप-शोभिताम् । सुवर्ण-सूत्र - रचितं, चिन्तयेच्छत्रमुत्तमम् ।।८२

अब एक दूसरे विस्तृत-'अन्तर्यजन' को बताता हूँ। साधक अपने हृदय में पचास मातृकाओं का ध्यान करे, उस मातृका के मूल में साधक अनेक मन्त्रों से शोभित ब्रह्माण्ड - मण्डल की भावना करे, जो उदीयमान सूर्य के समान सर्व - व्यापी है, उस स्थान में सौ योजनों तक विस्तृत एक उत्तम ज्योति-मन्दिर का ध्यान करे, जो चतुर्द्वार-युक्त है, हेम-प्राकार से विभूषित है, बहुत से चामर-घण्टा - वितानों से शोभित है। वहाँ सुगन्धित पुष्पों की सुन्दर गन्ध से युक्त मन्द-मन्द वायु बह रही है। उस मन्दिर के मध्य में अनेक रत्नों से शोभित वेदी का ध्यान करे, जिसके ऊपर सुवर्ण के तारों से रचित उत्तम छत्र का चिन्तन करे। उस वेदी पर पीयूष-रस से पूरित महा-यन्त्र की भावना करे ।।७५-७९

विभावयेन्महा - यन्त्रं, पीयूष-पूर - पूरितम् ।।८३

पीठ-पूजां ततः कुर्यात् स्व-कल्पोक्त-क्रमेण तु ।।८४

पाद्य-पात्र-त्रयं कुर्यादर्घ्य-पात्र-त्रयं तथा । षडाचमन - पात्राणि, मधुपर्क-त्रयं तथा ।।८५
एकं तु भोग-पात्रं च, साधकः षोडशे दले । सहस्रारामृतेनैव, पात्राणि पूरयेद् यथा ।।८६
सर्वोपरि ततो ध्यायेत्, पश्चिमानन-पङ्कजम् । स्रवन्तममृतं नित्यं, दिव्याङ्ग-कमलान्तरे ।।८७
शिव-शक्ति-समायोगादमृतानन्द-नन्दिनीम् । ब्रह्म-मयीं समावाह्य, परिवार-समन्विताम् ।।८८
मानसैरुपचारैस्तु, दीयते द्रव्यमुत्तमम् । पाद्यं चरणयोर्दद्यान्, मौले चार्घ्यं प्रकल्पयेत् ।।८९
सहस्र-दल-भृङ्गार-तुम्बिकानन-विच्युतम् । परामृतं च पानीयं, भाव-पुष्पैः सु-वासितम् ।।९०
स्वर्ण-पात्रे जलं कृत्वा, दद्यादाचमनं मुखे । मधुपर्कं मुखे दद्यात्, पुनराचमनीयकम् ।।९१
चतुर्विंशति-तत्त्वेन, गन्धं दद्याद् विचक्षणः । स्वयम्भू-कुसुमं दद्यात्, कुंकुमं रक्त-चन्दनम् ।।९२
पूर्वोक्त-भाव-कुसुमैः, सम्पूज्य धूप-दीपकम् । मनः-कल्पितं नैवेद्यं, दद्याद् देव्यै मनोरमम् ।।९३

अनन्तर उस यन्त्र पर अपने कुलोक्त क्रम के अनुसार पीठ-पूजा करे। पाद्य-पात्र तीन करे, अर्घ्य-पात्र भी तीन ही करे, आचमन-पात्र छः करे, मधुपर्क-मात्र तीन करे, भोग - पात्र एक करे । साधक उन्हें षोडश-दल में कल्पित करे । सहस्रामृत से पात्रों को पूर्ण करे । समस्त पात्र अधो - मुख कमल से आच्छादित हैं । पात्रों पर जो आच्छादित कमल हैं, उन कमलों में से दिव्य अमृत चू रहा है। शिव-शक्ति-समायोग से अमृतानन्द-नन्दिनी ब्रह्म-मयी भगवती का परिवार-सहित आवाहन कर मानस उपचारों से उत्तम द्रव्य समर्पित करे । चरणों में पाद्य, मस्तक पर अर्घ्य प्रदान करे । सहस्र-दल-कमल में भृङ्ग - रूपी साधक के भावना-मय मुख-द्वारा चूता हुआ जो परामृत है, उसे भाव-रूपी पुष्पों से सुवासित कर स्वर्ण - पात्र में रखकर मुख में आचमन प्रदान करे । मुख में मधुपर्क दे । फिर आचमनीय दे । चौबीस तत्त्वों से गन्ध प्रदान करे । स्वयम्भू कुसुम, कुंकुम, रक्त-चन्दन तथा पूर्वोक्त भाव - पुष्पों से पूजन कर धूप - दीप करे । मन को प्रसन्न करनेवाली कल्पना-द्वारा देवी को नैवेद्य अर्पित करे । षडङ्ग-देवता तथा गुरु - पंक्ति को और इष्ट-देवता की साधक पूजा करे ।।८३-९३

षडङ्गं गुरु-पंक्तिं च, पूजयेदिष्ट - देवताम् । स्व-वामे मण्डलं कृत्वा, रत्न-सिंहासनान्वितम् ।।९४
तत्र देवीं समानीय, नाना-गन्ध - समन्वितम् । उद्वर्त्तनादिकं कृत्वा, स्नानीयं दापयेद् यथा ।।९५
नयने तैजसं तत्त्वं, प्रोक्षयेत् तेन वै तनुम् । आकाश-तत्त्वं श्रोत्रे च, तेन वस्त्रं प्रकल्पयेत् ।।९६
विधि-वद् वन्दनं कृत्वा, केश-संस्कारमाचरेत् । नाना-रक्त - समायुक्तं कङ्कत्या साधकोत्तमः ।।९७
पट्ट-गुच्छं केश-पाशे, नाना-रत्न - समाकुलम् । ललाटे तिलकं दद्यात्, सिन्दूरं केश - मध्यगे ।।९८
नागेन्द्र - दन्त-रचितं, चूडां दद्यान् मनोरमम् । हस्ते केयूरकं चैव, कङ्कणं कटकं तथा ।।९९
पादाङ्गुलीयके दद्यान्, नाना-रत्नोप-शोभितं । पादयोर्नूपुरं दद्यात्, कट्यां च क्षुद्र-घण्टिकाम् ।।१००
शिरो-रत्नं प्रदद्यात्तु, मुकुटं रत्न-निर्मितम् । ताटङ्कं कुण्डलं कर्ण - भूषणं सु - परिष्कृतम् ।।१०१
नयने कज्जलं दद्यान्, नासाग्रे गज-मौक्तिकं । ग्रीवा-पत्रं कण्ठ-भूषां, मुक्ता-मणि-विराजितम् ।।१०२
आनन्द - हार - त्रितयमंगुलीयक - रत्नकम् । सर्वाङ्ग-लेपनं कार्यं, गन्ध-चन्दन-शिल्हकैः ।।१०३
काञ्चनां चेलिकां चोलीमलक्तं रदनच्छदे । सुवर्ण-पादुकां दत्वा, प्रवाल-दण्ड-चिह्निताम् ।।१०४

अपने वाम भाग में मण्डल बनाकर उसके मध्य में रत्न-सिंहासन कल्पित करे । अनेक सुगन्धित पदार्थों से युक्त उस सिंहासन पर देवी को आसीन कराए । उपटन आदि लगाकर स्नान कराए । नेत्र में जो तैजस्-तत्त्व स्थित है, उसी से देवी के शरीर का प्रोक्षण करे । श्रवण में स्थित आकाश-तत्त्व द्वारा वस्त्र

कल्पित करे। विधि-पूर्वक वन्दना कर केश-संस्कार करे। अनेक रत्नों से जड़ित कङ्घी से केशों को झाड़ कर रेशमी गुच्छ लगाकर केश बाँधने की डोरी में अनेक रत्न ग्रथित करके विधि - वत् जटा को बाँध दे। ललाट में तिलक करके केश-मध्य में सिन्दूर लगाए। हस्ति - दन्त से निर्मित सुन्दर चूड़ियों को हाथों में प्रदान करे। हाथ में केयूर, कङ्कण, कटक प्रदान करे। पैर की अँगुलियों में अनेक रत्नों से शोभित मुद्रिका प्रदान करे। चरणों में नूपुर, कटि में क्षुद्र-घण्टिका प्रदान करे। बहुमूल्य रत्नों से जड़ित सुन्दर मुकुट शिर पर पहनाए। ताटङ्क, कुण्डल, सुपरिष्कृत कर्ण-भूषण कानों में प्रदान करे। नेत्र में कज्जल, नासाग्र में गज - मौक्तिक, मुक्ता तथा मणियों से शोभित कण्ठ - भूषण प्रदान करे। सुन्दर तीन लरोंवाला हार तथा रत्न-जड़ित अँगूठी हाथ की अँगुलियों में प्रदान करे। गन्ध, चन्दन, पद्म, केशर द्वारा सर्वाङ्ग-लेपन करे। सुवर्ण के तारों से निर्मित चोली तथा ओष्ठ-राग प्रदान करे। सुवर्ण-पादुका, जिसमें प्रवाल की खूँटी लगी है, प्रदान करे ॥९४-१०४

मण्डलेषु समानीय, रत्न-निर्मित-दोलया। पुनः पाद्यादिकं दत्वा, पूजयेत् तां सनातनीम् ॥१०५
गन्धादिकं ततो दत्वा, भाव-पुष्पैः प्रपूजयेत्। स-मेखलां पद्म-मालां, पुष्पं नाना-विधं तथा ॥१०६
सप्त-द्वीप-समुद्भूतं, दद्याद् देव्यै सु-साधकः ॥१०७

कुण्ड-गोलोद्भवं चैव, धूपं दद्यात् समीरणम्। सहस्रार - कर्णिका - पात्रं तैलं तु परामृतम् ॥१०८
मूलाधारं वास्तु-रूपं, चिदग्निना प्रदीपकम्। आमूलाद् ब्रह्म-रन्ध्रान्तं, सुषुम्णा-वायु-नाम्ना ॥१०९
अनाहत-ध्वनि-मयीं, घण्टामेतां च वादयेत्। नैवेद्यं षड् - रसोपेतमम्बरं चामरं तथा ॥११०

रत्न-निर्मित पालकी पर बिठा, मण्डल में भगवती को लाकर पाद्यादिक से पूजन करे। गन्धादि देकर भाव-पुष्पों को समर्पित करे, अनेक पुष्पों से ग्रथित पद्म-माला देवी को अर्पित करे। सातों द्वीपों में उत्पन्न हुए पुष्प, कुण्ड-गोलोद्भव पुष्प अर्पित कर वायु-रूप धूप अर्पित करे। सहस्रार की कर्णिका ही पात्र है, जिसमें परामृत ही तैल है, मूलाधार जिस दीवट की पेंदी है, चिद् - रूपी अग्नि से दीप को प्रज्वलित करे, पराम्बा को अर्पित करे। मूलाधार से ब्रह्म-रन्ध्र - पर्यन्त सुषुम्णा - द्वारा बहती हुई वायु से अनाहत-ध्वनि-मय घण्टा देवी को अर्पित करे। नैवेद्य में षड्-रस-युक्त व्यञ्जन तथा आकाश - रूपी चामर प्रदान करे। सूर्य-रूप दर्पण तथा चन्द्र-मण्डल-रूप उत्तम छत्र प्रदान करे ॥१०५-११०

सूर्यं च दर्पणं चन्द्र-मण्डलं छत्रमुत्तमम्। सुधाऽम्भोधिः मांस-शैलं, मत्स्य - रूपं पलानि च ॥१११
स्व-वक्त्रं चरुकं चैव, घृताक्तं परमान्नकम् ॥११२
भक्ष्यं भोज्यं तथा चोष्यं, लेह्यं पेयं च चर्वणम्। दद्याच्छेषाम्बु - तोयेन, पुनराचमनीयकम् ॥११३
वाद्य-चक्रं ततो दद्यात्, मूल-मन्त्रेण साधकः। रजः-सत्त्व-गुणाभ्यां तु, कर्पर-चूर्ण-मिश्रितम् ॥११४
रत्न-पात्रे परिष्कृत्य, ताम्बूलं च निवेदयेत्। पुष्प-शय्यां च संस्कुर्यात्, तत्र देवीं सुरेश्वरीम् ॥११५
मनो-नर्त्तक-तालैश्च, शृङ्गारादि-रसोद्भवैः। गीतैर्नाना - विधैर्देवीं, तोषयेत् साधकोत्तमः ॥११६
तस्मात् कामेश्वरीं देवीं, पिता कामेश्वरश्च सः। मनसैक्यं विधायाथ, साधकः सिद्धिमालभेत् ॥११७

समुद्र ही सुधा-रूपी पेय है। मत्स्य-मांस के पर्वत कल्पित करे। घृत-मिश्रित सुन्दर चरु अपने मुख को कल्पित करे। भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, लेह्य, पेय—पाँचों प्रकार के चर्वण को समर्पित कर फिर आचमन कराए। मूल-मन्त्र से साधक वाद्य-चक्र अर्पित करे। रजो-गुणी रत्न-पात्र में सत्त्व - गुण - रूपी कर्पूर-चूर्ण से मिश्रित ताम्बूल अर्पित करे। पुष्पों की शय्या बिछाकर उस पर श्री भगवती को विश्राम

कराए । मन-रूपी नर्तक के द्वारा शृङ्गारादि अनेक रसों के उद्भव करनेवाले अनेक प्रकार के गीत-वादित्र तालों से देवी को प्रसन्न करे । मनोयोग से श्रीकामेश्वरी--मातृ-रूपा पराम्बा का पितृ - रूप परम शिव के साथ ऐक्य कराकर साधक सिद्धि को प्राप्त होता है ।।१११-११७

इत्यन्तर्यजनं प्रोक्तं, भुक्ति - मुक्ति - फल - प्रदम् । रक्त - पद्म - सहस्राणि, मनसा यः प्रयच्छति ।।११८

कल्प-कोटि-सहस्राणि, कल्प-कोटि-शतानि च । स्थित्वा देवी-पुरे धीमान्, ततो राजा क्षितौ भवेत् ।।११९

मनसाऽपि महा - देव्यै, नैवेद्यं दातुमिच्छति । यो नरो भक्ति - संयुक्तो, स दीर्घायुः सुखी भवेत् ।।१२०

मनसाऽपि च यो भक्त्या, देव्यै कुर्यात् प्रदक्षिणाम् ।।१२१

देवी - गृहे वसेत् सोऽपि, नरकान्नैव पश्यति । नमनं मनसा देव्यै, यो भक्त्या कुरुते नरः ।।१२२

सोऽपि लोकान् विजित्यान्ते, देवी-लोके महीयते ।।१२३

यह अन्तर्यजन जो कहा है, भुक्ति-मुक्ति दोनों फलों का देनेवाला है ।

सहस्र रक्त-कमल जो मन से अर्पित करता है, वह कोटि-सहस्र कल्प-पर्यन्त तथा शत-कोटि कल्प-पर्यन्त देवी के पुर में निवास करने के अनन्तर पृथ्वी पर राजा होता है । जो साधक भक्ति-पूर्वक देवी को मानसिक नैवेद्य अर्पित करता है, वह दीर्घायु तथा सुखी रहता है । जो मन से भक्ति - पूर्वक देवी की प्रदक्षिणा करता है, वह देवी-गृह में वास करता है तथा नरक को नहीं देखता । देवी को मन से भक्ति-पूर्वक जो नमस्कार करता है, वह इस संसार में सुखी रह कर अन्त में देवी - लोक में पहुँच जाता है ।।११८-१२३

ब्रह्मात्मकं महा-यज्ञ

अथोच्यते महा-यज्ञं, ब्रह्म-ज्ञानी यतेस्सदा । मनसैव मनो-दृष्ट्वा, यथा सिन्धु-गता नदी ।।१२४

तथा सर्व-शरीराणि, महा-शून्ये नियोजयेत् । यज्ञ-कर्त्ता महा-योगी, सर्व-मन्त्रं जपेत् पुनः ।।१२५

आत्मस्थं सर्व-यज्ञस्तु, वह्नि-यज्ञ-विवर्जितः । कर्म-यज्ञो महा-यज्ञः, प्राण - यज्ञो हुताशनः ।।१२६

मन्त्र-यज्ञः सुषुम्नान्तस्सर्व-यज्ञ-फलं लभेत् । ब्रह्मार्पणं ब्रह्म - हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।।१२७

ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं, ब्रह्म-कर्म-समाधिना । ब्रह्म-वत् सर्व-मार्गेषु, ब्रह्म - कर्म समभ्यसेत् ।।१२८

ब्रह्म-ज्ञानी यति को जो सदा करना चाहिए, ऐसे 'महा-यज्ञ' को कहते हैं । मन से ही मन को देखे । जैसे समुद्र-गामिनी नदी समुद्र में जा मिलती है, उसी प्रकार समस्त शरीर को महा-शून्य में नियोजित करे । यज्ञ-कर्ता महा-योगी समस्त मन्त्रों का जप करे । वह्नि-यज्ञ से वर्जित आत्मा में स्थित समस्त यज्ञ की पूर्ति होती है । कर्म-यज्ञ ही महा-यज्ञ है, प्राण - यज्ञ ही हुताशन - यज्ञ है । मन्त्र - यज्ञ सुषुम्णान्त गमनागमन है, जिससे सम्पूर्ण यज्ञ के फल को प्राप्त करता है । ऐसे साधक के समस्त कर्म ब्रह्मार्पण होते हैं । ब्रह्म ही हवि है, ब्रह्म ही अग्नि है, ब्रह्म ही ब्रह्म का हवन करता है, ब्रह्म ही में लीन होता है । समाधि-द्वारा भी ब्रह्म ही ब्रह्म को प्राप्त करता है । ब्रह्म ही की तरह सब मार्गों में समस्त कर्मों को करें ।।१२४-१२८

।। श्री पूर्णानन्द गिरि परमहंस-विरचित शाक्त-क्रम का प्रथम अंश पूर्ण हुआ ।।

भावानां परि-निर्णयम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि, भावानां परि-निर्णयम् । दिव्यो वीर-पशुश्चैव, तथैव गुरु-दैवते ।।१

अब भावों की व्याख्या करूँगा । १ दिव्य, २ वीर और ३ पशु—इन तीन भावों में से जिस 'भाव' का साधक होता है, गुरु तथा देवता के प्रति भी वह वैसा ही 'भाव' रखता है ।।१

आद्यो भावो महा-श्रेयान्, द्वितीयो मध्यम स्मृतः । तृतीयो बहु-जापाच्च, काय-क्लेशात् तु सिद्धयति ।।२

पहला 'दिव्य-भाव' अत्यन्त श्रेयस्कर है, दूसरा 'वीर-भाव' मध्यम है, तीसरा 'पशु-भाव' बहुत जप और काय-क्लेश से सिद्ध होता है ।।२

भावेनैव भवेन्मन्त्री, मन्त्र-तन्त्र-फल-प्रदः । किं वीर-साधनेनैव, किं कन्या-भोजनादिभिः ? ।।३
किं कुलाकर्षणेनैव, किं पीठ-पूजनेन च ? स्व-कुल - प्रीति-दानेन, किं परेषां तथैव च ? ।।४
किं जितेन्द्रिय-भावेन, किं कुलाचार-कर्मणा ? यदि भाव-विशुद्धात्मा, न स्यात्-कुल-परायणः ।।५

साधक के 'भाव' से ही मन्त्र और तन्त्र फल-प्रद होते हैं । वीर-साधन, कुमारी-पूजन, कुलाकर्षण, पीठ-पूजन, स्व-कुल-प्रीति-दान, पर-कुल-प्रीति-दान, जितेन्द्रिय-भाव, कुलाचार-कर्म, कुल - परायण होता हुआ भी यदि 'भाव' नहीं है, तो सर्व-प्रयत्न व्यर्थ होते हैं ।।३-५

भावेन लभते मुक्तिं, भावेन कुल-वर्द्धनम् । भावेन गोत्र-वृद्धिः स्यात्, भावेन कार्य-साधनम् ।।६
किं न्यास-विस्तरेणैव, किं भूत-शुद्धि-विस्तरैः । किं यथा पूजनेनैव, यदि भावो न जायते ।।७
केन वा पूज्यते विद्या, न वा केन प्रजायते । फलाभाव क्व नियतं, भावादेव प्रजायते ।।८

'भाव' से ही मुक्ति होती है, 'भाव' से ही कुल की वृद्धि होती है, 'भाव' से ही गोत्र की वृद्धि होती है, 'भाव' से ही कार्य की सिद्धि होती है । यदि 'भाव' का उदय नहीं हुआ, तो न्यास, भूत - शुद्धि, पूजनादि सभी निष्फल होते हैं । 'भाव' से ही मूल-विद्या का पूजन तथा उत्थान होता है । यदि 'भाव' नहीं है, तो परिश्रम करने पर भी फल प्राप्त नहीं होता ।।६-८

प्रथमं दिव्य-भावस्तु, कथ्यते तन्त्र-वर्त्मना । यद्-वर्ण-देवता-यन्त्रः, तत्-तेजः पुञ्ज - पूरितम् ।।९
तेजो-मयं जगत्-सर्वं, विभाव्य मूर्ति-कल्पनम् । आत्मानं तन्मयं पश्येच्छक्तिं चैव विशेषतः ।।१०
अष्टाब्दात् षोडशान्तं, युवतीति प्रचक्षते । तत्र भाव - प्रकाशश्चेत्, स भावः परमो मतः ।।११
शुद्धांशोरर्जने धीरो, निर्विकारः सदा भवेत् । दिव्य-भावः साधकेन्द्रो, मर्त्ये शक्र-समो भवेत् ।।१२
न देयं यस्य कस्यापि, पशौ गोप्यं प्रयत्नतः । अथातः सम्प्रवक्ष्यामि, वीर - भावस्य लक्षणम् ।।१३

तन्त्र-शास्त्र के अनुसार प्रथम 'दिव्य-भाव' का वर्णन करता हूँ । उपास्य देवता का वर्णात्मक-यन्त्र उस देवता के तेज-पुञ्ज से पूरित है । सारे जगत् को तेजोमय समझ कर उसमें इष्ट-देवता की मूर्ति की भावना करे । उस मूर्ति में आत्मा को तन्मय कर विशेष रूप से 'शक्ति' को देखे । आठ वर्ष से लेकर सोलह वर्षवाली शक्ति की 'युवती' संज्ञा है । यदि उसके प्रति 'भाव' का प्रकाश हो, तो परम श्रेष्ठ भाव है । शुद्ध किरण के सञ्चय में सदैव धीर और निर्विकार रहे । 'दिव्य-भाव' का साधक मृत्यु-लोक में इन्द्र के समान होता है । 'दिव्य-भाव' हर एक को नहीं बताना चाहिए, 'पशु' भाववाले से तो उसे यत्न-पूर्वक गुप्त ही रखना चाहिए । इसके बाद 'वीर-भाव' के लक्षण बताऊँगा ।।९-१३

निर्द्वन्द्व-मानसो भूत्वा, कृत्वा काम-लता तनुः । निशि-पूजा प्रकर्त्तव्या, हेतु - युक्तः सदैव हि ।।१४
नैजं कुलं समादाय, स्वयं भैरव-रूप-धृक् । कुलं च भैरवी - रूपं, तद् - गात्रे न्यासमाचरेत् ।।१५

निर्द्वन्द्व-मन होकर रात्रि में हेतु-द्रव्य से युक्त होकर पूजन करे। स्व-शक्ति का आवाहन कर स्वयं भैरव-रूप में और शक्ति को भैरवी-रूप में मान कर उसके शरीर में न्यास करे।।१४-१५

प्रसून-तूलिका मध्ये, पुष्प-प्राकार-शोभिते । नाना-गन्ध - समाकीर्णे, कुल - द्रव्येण यन्त्रकम् ।।१६
लिखित्वा पूजयेच्छक्ति, घट-स्थापन-पूर्वकम् । स्व-वाम-भागे षट्-कोणं, तन्मध्ये ब्रह्म-रन्ध्रकम् ।।१७
लिखित्वा तत्र कुम्भं वै, सौवर्णं रजतं तथा । ताम्रं भूमि-मयं वापि, यद्वा लौह-विवर्जितम् ।।१८
संस्थाप्य हेतुनाऽऽपूर्य, ब्राह्मणादि-विभेदतः । तत्र यन्त्रं लिखित्वाऽथ, ध्यात्वा चावर्तयेत् ततः ।।१९

पुष्प-शय्या और पुष्प-मण्डप सु-सज्जित कर अनेक सुगन्धित द्रव्यों की संयोजना करके कुल-द्रव्य से यन्त्र को लिखे। यन्त्र लिखकर घट-स्थापन-पूर्वक शक्ति का पूजन करे। अपने वाम - भाग में षट्-कोण, उसके बीच में ब्रह्म-रन्ध्र (विन्दु) लिखकर, वहाँ पर सुवर्ण, चाँदी, ताँबे, मिट्टी अथवा लौह-वर्जित किसी धातु का कुम्भ स्थापित कर उसे हेतु-द्रव्य से पूर्ण कर ब्राह्मणादि-भेद से कुम्भ-स्थापन करे। उस कुम्भ में यन्त्र लिखकर अवगुण्ठन-मुद्रा से उसे अवगुण्ठित करे।।१६-१९

अष्टोत्तर-शतं जप्त्वा, धेनु-मुद्रां प्रदर्शयेत् । अर्घ्य-पात्रं समालोक्य, नृत्यन्ति योगिनी-गणाः ।।२०
ब्रह्मा-विष्णु-महेशाद्या, नृत्यन्ति हर्ष-तत्पराः । अर्घ्य-पात्रं द्विधा कृत्वा, गुरवे चैक-भागकम् ।।२१
साक्षाद् यदि गुरुर्न स्यात्, तदा तोये विसर्जयेत् । एकं मूलाय दातव्यमेकेन देव - तर्पणम् ।।२२

अष्टोत्तर-शत जप करके धेनु-मुद्रा प्रदर्शित करे। 'अर्घ्य - पात्र' को देखकर योगिनियाँ नृत्य करने लगती हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवता भी हर्ष-युक्त हो नृत्य करते हैं। ऐसे अर्घ्य - पात्र के दो भाग करे। एक भाग श्रीगुरुदेव को समर्पित करे। यदि गुरुदेव वहाँ पर उपस्थित न हों, तो उनके भाग को जल में विसर्जित कर दे। एक भाग मूल-देवता को दे और एक से देव-तर्पण करे।।२०-२२

पीत्वा कुल-रसं पश्चान्नानाऽलङ्कार-भूषितः । विशेषार्घ्य-प्रतिष्ठानं, ततः कुर्यात् समाहितः ।।२३
पात्रं काञ्चन-रौप्य-कर्म-जनितं मुक्ता-कपालोद्भवम्,
विश्वामित्र - मयं च कामदमिह हैमं श्रियं स्फाटिकम् ।
भाव - प्रीतिदमष्ट - सिद्धि - जनकं श्रीनारिकेलोद्भवम्,
कापालं स्फुट-मन्त्र - सिद्धि-जनकं मुक्ति - प्रदं मौक्तिकम् ।।२४

कुलामृत का पान कर अनेक प्रकार के आभूषणों से सुशोभित हो, तब एकाग्र - चित्त से विशेषार्घ्य स्थापित करे। सोना, चाँदी, मोती, कपाल, नारियल के पात्र कामना-पूर्ति करनेवाले हैं। सोने का पात्र लक्ष्मी-दायक है, स्फटिक का मन को शान्ति-दायक है, नारिकेल का अष्ट-सिद्धि-प्रद है, कपाल का मन्त्र-सिद्धि-दायक है, मुक्ता का मुक्ति-प्रद है।।२३-२४

सुवर्ण-रौप्य-पात्राणि, सर्व-सिद्धि-कराणि च । शान्तिके च शिला-पात्रं, स्तम्भे चैव तु मृन्मयम् ।।२५
नारिकेलं सर्व-वश्ये, मोक्षे चैव तु मौक्तिकम् । ज्ञान - प्रदं कपालं स्यात्, मारणे लौहमुत्तमम् ।।२६

दूसरी जगह भी कहा है—सोना तथा चाँदी के पात्र सर्व-सिद्धि-प्रद होते हैं। शाप में शिला-पात्र, स्तम्भन में मिट्टी का पात्र, वशीकरण में नारिकेल-पात्र, मोक्ष में मुक्ता-पात्र विहित है। कपाल-पात्र ज्ञान-प्रद है। मारण-कार्य में लौह-पात्र उत्तम है।।२५-२६

आनन्द-रूप-वान् भूत्वा, पूजयेत् परमेश्वरीम् । तन्त्र-कल्पोक्त-विधिना, साधको वीर-वल्लभः ।।२७
विवर्जनं विधायाथ, स्व-कुले योजयेत् ततः । नत्वाऽऽत्म - रसदानन्दं, देवी भुक्ते रसामृतम् ।।२८
तत्-फल-ग्रहणादेव, सुमेरु-शृङ्ग-रोहणम् । लताऽऽलिङ्गन - मात्रेण, सुधा-धौत - कलेवरः ।।२९

आनन्द-स्वरूप होकर भगवती का पूजन करना चाहिए। जिस कुल - परम्परा का साधक हो, उसी क्रम से पूजन करना चाहिए। रक्षा-विधान करके अपने कुलानुसार क्रिया आरम्भ करे। शक्ति का पात्र ग्रहण करे, परन्तु अपना उच्छिष्ट पात्र शक्ति को कभी नहीं दे। शक्ति-पात्र के ग्रहण से ही साधक अन्तर्मुखी वृत्तिवान् होने लगता है। लताऽऽलिङ्गन मात्र से, अमृत-विन्दु ग्रहण करने से शरीर शुद्ध हो जाता है ।।२७–२९

मूल-योगे कृते तत्र, जपेन्मन्त्रं निराकुलः । नित्य-जापे च होमे च, यत्र संख्या न चोदिता ।।३०
तत्रेयं गणना प्रोक्ता, गजान्तक-सहस्रकम् ।।३१
जप-पूतं हविर्द्रव्यं, गृहीत्वा तर्पयेत् ततः । प्रदक्षिणं ततः कृत्वा, स्तवेन तोषयेत् ततः ।।३२

मूलाधार में मूल-विद्या में योग करके शान्त चित्त से मन्त्र का जप करे। नित्य - जप में और हवन में जहाँ संख्या नहीं बताई है, वहाँ अष्टोत्तर-शत जानना चाहिए। जप तथा हवन से पवित्र हवि-द्रव्य को ग्रहण कर तर्पण करे। प्रदक्षिणा करके स्तुति से देवता को प्रसन्न करे ।।३०–३२

यद्-देशे विद्यते वीरस्तत्-कुलं चापि तत्-सुता । न च मारी-भयं तत्र, न च राज-भयादिकम् ।।३३
सु-मङ्गलं सदा तत्र, धन-पुत्र-विवर्धनम् । वीराणां जप-कालस्तु, सर्व-कालः प्रशस्यते ।।३४
सर्व-देशे सर्व-पीठे, कर्त्तव्यं नात्र संशयः । दिव्ये वीरे न भेदोऽस्ति, यो भेदः स तु कथ्यते ।।३५

जिस देश में 'वीर'-साधक, उसके कुल के लोग तथा पुत्रादि वास करते हैं, वहाँ महा-मारी का भय और राज-भय नहीं होता। सदैव मङ्गल और धन-पुत्र की वृद्धि होती रहती है। वीरों के लिए सभी समय में जप प्रशस्त है। सब देशों में, सब पीठों में संशय-रहित होकर जप करना चाहिए। 'दिव्य' तथा 'वीर' में विशेष भेद नहीं है। जो थोड़ा भेद है, उसे कहता हूँ ।।३३–३५

शान्तो विनीतो मधुरः, कला-लावण्य-संयुतः । दिव्यस्तु देवता-प्रायो, वीरश्चोद्धत - मानसः ।।३६
विभूति-भूषणो वापि, चन्दनैर्वा विलेपितः । आकार-गोपनो वापि, व्यक्तो च कुल - भैरवः ।।३७
रक्त-चन्दन-दिव्याङ्गो, वैष्णवो वाप्यवैष्णवः । असंस्कृतः संस्कृतो वापि, नित्य-युक्तः कुलेश्वरः ।।३८
अपमाने च पूजायां, हृष्ट-पुष्टः सदा भवेत् । देव-निन्दा-परो वापि, तत्-पूजाऽऽदि-रतोऽपि वा ।।३९

'दिव्य' साधक शान्त, विनीत, मधुर-भाषी, कला-लावण्य-युक्त होता है। वह प्रायः देवता ही होता है। 'वीर'-साधक उद्धत स्वभाववाला होता है, कभी विभूति धारण करता है, कभी चन्दन। वह कुल-भैरव कभी आकृति को छिपानेवाला वेश धारण करता है, कभी व्यक्त होनेवाला वेश। कभी रक्त-चन्दन लगाता है, कभी राजसी ठाठ में रहता है। कभी वैष्णव वेश में, कभी किसी भी वेश में नहीं। कभी शरीर का संस्कार करता है, कभी नहीं, परन्तु अपने लक्ष्य में नित्य लगा रहता है। अपमान तथा पूजा में सदैव एक-रस रहता है। कभी देव-निन्दा में रत, कभी देव-पूजा में रत ।।३६–३९

स्व-कुलान्ते पुरश्चर्या, कार्या रात्रौ न चान्यथा । कुलं विना नाधिकारी, दिव्यो वा वीर-साधकः ।।४०
इदं वीर-कुलं चैव, दिव्यादपि - मनोरमम् । पशु - भावं प्रवक्ष्यामि, समासेन यथा-क्रमात् ।।४१
यथा-विधि पशोर्विद्यां, गृहीत्वा भाव-तत्परः । प्रथमं पूर्व-सेवार्थे, यत्नतः शुद्धिमाचरेत् ।।४२

अपने कुलानुसार रात्रि में पुरश्चरण करना चाहिए, इसमें त्रुटि नहीं होनी चाहिए। बिना 'कुल'-ज्ञान के कोई भी साधक 'दिव्य-भाव' अथवा 'वीर-भाव' का अधिकारी नहीं माना जाता। यह 'वीर'-साधना 'दिव्य' से भी मनोरम है। 'पशु-भाव' को भी यथा-क्रम संक्षेप में वर्णन करता हूँ ।।४०-४२

न मत्स्य-भोजनं कार्यं, न स्त्रियं मनसा स्मरेत् । न पर-द्रव्य-लोभः स्यान्, न भोजे मानसं भजेत् ।।४३
सिन्धु-तीरे पर्वते वा, कानने वा सुरालये । विल्व-मूले विविक्ते तु, पुण्य-क्षेत्रे सु-शोभने ।।४४
न शूद्र-दर्शनं कुर्यात्, कौटिल्यं दूरतस्त्यजेत् । देवता शुभ्र-वर्णा तु, ध्यातव्या सु-समाहितैः ।।४५

'पशु-भाव' का साधक यथा-विधि गुरु-मुख से पशु-विद्या को ग्रहण कर सबसे पहले सेवा-भाव में रत हो यत्न-पूर्वक शुद्ध आचार-विचार का पालन करता है। मत्स्य-भोजन नहीं करता, स्त्री को मन से भी स्मरण नहीं करता। दूसरे के द्रव्य का लोभ नहीं करता, भोग में चित्त को नहीं लगाता। समुद्र-तट, पर्वत, जङ्गल, देवालय, बिल्व-मूल, सुन्दर पुण्य-क्षेत्र में भजन करता है। शूद्र-दर्शन नहीं करता, कुटिलता से दूर रहता है, शुभ्र-वर्ण देवता का समाहित-चित्त से ध्यान करता है ।।४३–४५

त्रि-सन्ध्यं देव-पूजा च, त्रि-सन्ध्यं जपमारभेत् । रात्रौ पूजां च मालां च, स्पृशेन्नैव कदाचन ।।४६
न यन्त्रं पूजयेद् भुक्त्वा, मौनी स्यात् सर्व-कर्मसु । पर्व-काले स्त्रियं चैव, स्पृशेन्नैव कदाचन ।।४७

तीनों काल में देव-पूजा तथा जप करता है। रात्रि में माला तथा प्रतिमा का स्पर्श नहीं करता। भोजन करके यन्त्र का पूजन नहीं करता। सब कार्यों में मौन रहता है। ऋतु-काल में स्त्री का स्पर्श कभी नहीं करता ।।४६–४७

कुश-पुष्प-समिद्-वारि, स्वयमानीय पूजयेत् । मैथुनं तत्-कथाऽऽलापं, तद्-गोष्ठीं परि-वर्जयेत् ।।४८
ऋतु-कालं विना गच्छेन्न च स्व-स्त्रियमादरात् । पुराण - श्रवणे श्रद्धा, वेद-वेदार्थ - तत्परः ।।४९

कुश, पुष्प, समिधा, जल स्वयं लाकर पूजन करता है। मैथुन, उसकी कथा, संलाप की गोष्ठी से दूर रहता है। ऋतु-काल के बिना प्रेम-पूर्वक अपनी स्त्री के पास नहीं जाता। पुराण-श्रवण में श्रद्धा, वेद-वेदार्थ में तत्पर रहता है ।।४८ ४९

न रात्रौ भोजयेद् विद्वान्, नाक्तं च तथैव च । गुरुणा यद्-यदादिष्टं, तत्-सर्वं यत्नतश्चरेत् ।।५०
स्व-जात-कुसुमं चैव, हेतु-द्रव्यादिकं तथा । एतत् स्पृष्ट्वा त्रि-रात्रिं च, पञ्च-गव्येन शुद्धयति ।।५१

रात्रि का बनाया हुआ तथा रात्रि में भोजन भी नहीं करता। गुरु ने जो-जो आदेश दिया है, उसका यत्न-पूर्वक पालन करता है। स्वजात-कुसुम, हेतु-द्रव्यादि का स्पर्श होने पर तीन रात्रि पञ्च-गव्य-पान करके शुद्ध होता है ।।५०–५१

रक्त-वस्त्रं न गृह्णाति, देवी-भक्ति-परायणः । विष्णु-तन्त्रोक्त - कल्पानि, तदनुष्ठानमेव च ।।५२
वीरालापो न कार्यश्च, न कुर्याद् वीर-वन्दनम् । नित्य-श्राद्धं गवां ग्रासं, सन्ध्या-वन्दनमेव च ।।५३

देवी-भक्ति-परायण होकर भी लाल वस्त्र को नहीं पहनता। विष्णु-तन्त्रोक्त कल्प का ही अनुष्ठान करता रहता है। वीरालाप, वीर-वन्दना नहीं करता। नित्य-श्राद्ध, गो-ग्रास, सन्ध्या - वन्दन नित्य करता है ।।५२–५३

तीर्थ-स्नानं पीठ-देशे, गमनं धर्म-तत्परः । पशुश्च द्विविधश्चात्र, पूर्वेण सह वै भवेत् ।।५४
तस्याधिकारः पूजायां, न गुरुत्वे कदाचन । पूर्वस्य नाधिकारोऽस्ति, पूजा-देश-गतागतौ ।।५५
स्व-देशतः कुलीनैस्तु, बहिः कार्यो महा-पशुः । पूर्व-दर्शन-मात्रेण, कुल - दर्शनमाचरेत् ।।५६

तीर्थ-स्थान, पीठ-देश में धर्म-युक्त होकर जाता है। 'पशु-भाव' वाले ये साधक दो प्रकार के होते हैं—१ महा-पशु और २ पशु। 'पशु' को पूजन करने का अधिकार है, परन्तु गुरु बनने का वह कभी अधिकारी नहीं होता। 'महा - पशु' को पूजन में जाने का भी अधिकार नहीं है। कुलीनों को अपने देश से ऐसे महा-पशु को बाहर कर देना चाहिए। यदि वह दिखाई पड़ जाय, तो 'कुल' का दर्शन कर अपने को पवित्र करना चाहिए ।।५४-५६

ब्रह्म-हत्याऽऽदिकं चैव, वरं सह्यं कथञ्चन । पूर्वस्य दर्शनं नैव, सत्यं सत्यं सु-निश्चितम् ।।५७
दिव्यात्मा सोऽपि नियतं, विभूत्याऽपि निश्चितम् । तथापि तत्र शङ्का च, जायते तु पदे-पदे ।।५८

ब्रह्म-हत्या किसी प्रकार सह्य हो सकती है, परन्तु 'महा-पशु' का दर्शन सह्य नहीं है, यह निश्चय ही सत्य है। यद्यपि विभूति - ज्ञान से वह भी दिव्यात्मा ही है, फिर भी पशु-संसर्ग से पग - पग पर शङ्का होती है ।।५७–५८

वरं कुल-परित्यागः, वरं स्व-कुल-हिंसनम् । वरं स्व-कुल-निन्दा स्याद्, वरं स्व-कुल-बन्धनम् ।।५९
पूर्व-सङ्गो न कर्त्तव्यो, दिव्याङ्ग-क्षय-कारणात् । कुल-शास्त्रे कुलीनस्य, गरिष्ठं पाप-युग्मकम् ।।६०

'कुल' का परित्याग श्रेष्ठ है, स्व-कुल की हिंसा श्रेष्ठ है, स्व-कुल का बन्धन श्रेष्ठ है, किन्तु दिव्याङ्ग का नाश होने के कारण पशु - संसर्ग कदापि न करना चाहिए। 'कुल - शास्त्र' में ये दो बड़े पाप हैं ।।५९–६०

स्व-कुले महती निन्दा, पर-योगेषु निश्चितम् । तस्माद् यदि महत् पापं, पशु-सङ्गात् प्रजायते ।।६१
सर्वथा तत्र भावौ द्वौ, न प्रकाश्यौ कदाचन । स-भावश्च विभावश्च, पशुर्द्वेधा व्यवस्थितः ।।६२

पशु-संसर्ग से अपने-अपने कुल में कुलीनों से बड़ी निन्दा होती है, दूसरे कुल-विरुद्ध-संसर्ग से भारी कष्ट तथा विघ्न निश्चय उपस्थित होते हैं। इसलिए पशु-सङ्ग से यदि कोई पाप आ पड़े, तो दिव्य तथा वीर - भाव का साधक अपने भावों को कभी प्रकाशित न करे। 'सभाव' तथा 'विभाव' भेद से पशु दो प्रकार के होते हैं ।।६१-६२

स भावः पशु-भावेन, जन्म-त्रय - विभावनात् । वीर - भावो भवेच्चैव, ततो देवः प्रजायते ।।६३

'सभाव पशु' तीन जन्म साधना के बाद वीर-भाव को प्राप्त होता है। अनन्तर साधना करते-करते देवत्व को प्राप्त कर लेता है ।।६३

भावस्तु मानसो धर्मः, शाब्दः स हि कथं भवेत् ? तथापि शाक्त-तन्त्रेषु, दिङ्-मात्रं समुदाहृतम् ।।६४

'भाव' मन का धर्म है। वह शब्द से यथार्थ रूप से व्यक्त नहीं किया जा सकता, फिर भी तन्त्र-शास्त्र में उसका दिग्दर्शन करा दिया है ।।६४

यथेक्षु-गुड-माधुर्यं, रसनया एव जायते । तथा भाव-विभावस्तु, मनसा परि-भाव्यते ।।६५

जिस प्रकार ईख और गुड़ के माधुर्य का अनुभव जिह्वा से ही होता है, उसी प्रकार 'भाव-विभाव' का अनुभव यथार्थ रूप से मन द्वारा ही भासित होता है ।।६५

एक एव महा-भावो, नानात्वं भजते ततः । उपाधि-भेद-भावेन, भाव - भेदः प्रजायते ।।६६

एक ही 'महा-भाव' अनेक भावों में परिणत हो जाता है। उपाधि-भेद से भाव-भेद होता है ।।६६

आनन्द-घन-सन्दोहः, प्रभुः प्रकृति-रूप-धृक्, रस-रूप स एवात्मा, स विभुर्वर-मोहितः ।
श्रोतव्यः स च मन्तव्यो, निधातव्यः स एव तु ।।६७

आनन्द-घन-सन्दोह महा-प्रभु प्रकृति-रूप धारण करते हैं। रस-रूपी वही आत्मा अपने ही स्वरूप पर मोहित हो जाता है। वही श्रवण, मनन और निदिध्यासन के योग्य है ।।६७

साक्षात्कारस्ततो वीरैरागमैर्विविधैर्यथा । श्रोतव्यः श्रुति-वाक्येभ्यो, मन्तव्यो मननादिभिः ।।६८
सोपपत्तिभिरेवायं, ध्यातव्यो गुरु-देशिकैः ।।६९

जिस प्रकार विविध आगमों ने आदेश किया है, उसी प्रकार साधकों को साक्षात्कार भी करना चाहिए। गुरूपदिष्ट वाक्यों का सावधान चित्त से श्रवण, मन और ध्यान करना चाहिए ।।६८-६९

श्रुत-वाक्यार्थोपक्रमोपसंहार-मन्महत्-तात्पर्यं श्रवणं नाम । श्रवणं त्वङ्गित्वादन्य-निरपेक्षयाऽऽत्म-ज्ञानं जनयामि । तस्य ज्ञानस्यादृढत्वादसम्भावना-विपरीत-भावने उप-पद्येते । प्रथमाधिकारिणः सहस्रधा श्रुतोऽपि श्रुत्यर्थो देहेन्द्रिय-व्यतिरिक्त-आत्मानं सम्भाव्यते । इत्यसम्भावना बहुधा विचार्यान्यार्थे प्रतीति-रात्मन्यप्रतीतिर्विपरीत-भावना । तस्मादसम्भावना निवृत्त्यर्थं मननं कार्यम् ।

सुने हुए शब्द के अर्थ को उपक्रम - उपसंहार से युक्त 'भाव' के बोध को—'श्रवण' कहते हैं। 'श्रवण' अङ्गी होने से आत्म-ज्ञान उत्पन्न होता है। उस ज्ञान के दृढ़ न होने से 'असम्भावना' तथा 'विपरीत भावना' की उत्पत्ति होती है। प्रथमाधिकारी सहस्रों बार 'श्रवण' करने पर भी श्रुति के अर्थ को देहेन्द्रिय से भिन्न 'आत्मा' को मानता है। इसे 'असम्भावना' कहते हैं। बहुत विचार करने पर भी अन्य अर्थों की प्रतीति होकर आत्मा में अप्रतीति हो, तो उसे 'विपरीत भावना' कहते हैं। इसलिए 'असम्भावना' की निवृत्ति के लिए मनन करना चाहिए।

गुरु-मुखाच्छ्रुत्वा यः श्रुत्यर्थोऽवधारितस्तस्य युक्त्या प्रति-पादनं मननम् । मननस्य युक्ति-परत्वाद-सम्भावना-निवर्तकत्वम् । यथा—ग्रामादि स्थिते अज्ञानिने चन्दन-वृक्षेन्धनस्यासम्भावना भवति । 'अयं तु चन्दनं'—इति तं कोऽपि कदाचिद्युक्त्या प्रति-बोधयति ।

गुरु के मुख से श्रवण करके जो अर्थ निश्चित हो, उसे युक्ति - पूर्वक प्रतिपादन करने को 'मनन' कहते हैं। 'मनन' युक्ति - परक होने से 'असम्भावना' की निवृत्ति होती है। जिस प्रकार ग्राम में स्थित चन्दन वृक्ष को कोई जलाने के काम में लाता है क्योंकि उसे चन्दन का ज्ञान नहीं है। उसे कोई जब युक्ति-पूर्वक बता देता है कि यह चन्दन है, तब चन्दन का ज्ञान होकर 'विपरीत भावना' की निवृत्ति होती है।

विपरीत-भावना-निवृत्त्यर्थं निदिध्यासनं नाम । श्रवण-मननाभ्यां य एवात्मा विनिश्चितः । इद-मित्थमिति दृढीकृतस्तन्निदिध्यासनम् ।

'विपरीत भावना' की निवृत्ति के लिए 'निदिध्यासन' हुआ। श्रवण-मनन द्वारा आत्मा ने जो निश्चय किया कि यह ऐसा ही है, इस ज्ञान को 'निदिध्यासन' कहते हैं।

तथा मुक्तो यथात्म - ज्ञाने विपरीत - ज्ञानं च निवर्तते, तदा स एव सर्वात्मा प्रत्यक्षो भवति क्षणात् ।।७०

उक्त प्रकार कहने से आत्म-ज्ञान होने पर 'विपरीत ज्ञान' की निवृत्ति हो जाती है। उस समय वह सर्व-भूतात्मा क्षण मात्र में प्रत्यक्ष हो जाता है ।।७०

भुक्त्वा नाना-विधं ग्रासं, गवि चैको यथा रसः । दुग्धादभ्यास-योगेन, नानात्वं भजते यथा ।।७१
तृणेन जायते चैव, रसस्तस्मात् परो रसः । तस्माद् दधिस्ततो हव्यं, तस्मादपि रसोदयः ।।७२
दुग्धत्वाद् दधि-सम्बन्धाद् भेदैः स हि विभज्यते । तथैवायं स एवात्मा, रस - रूपो सनातनः ।।७३

अव्यक्तश्च सु-व्यक्तः, प्रकृत्या क्रियते ध्रुवम् । तस्मात् प्रकृति-योगेन, नाना-विग्रह-योनिषु ।।७४
यो यज्जनिष्यते जातः, काल-भेदादि भज्यते । स जातः स मृतो बद्धः, स मुक्तः स सुखी पुमान् ।।७५
स स्त्री-नपुंसकः सोऽपि, विद्वान् मूर्ख स एव सः । नाना ध्यान-समायोगाज्ज्ञानार्थं भजते प्रभुः ।।७६

जिस प्रकार गो के अनेक-विध ग्रास खाने पर भी एक ही प्रकार का दुग्ध तैयार होता है, दुग्ध से दधि, दधि से घृत, उससे अनेक प्रकार के पदार्थ तैयार होते हैं, उसी प्रकार रस - रूपी एक ही अव्यक्त आत्मा से व्यक्त प्रकृति-योग से अनेक रूप, नाम, मरना, जीना, उत्पन्न होना आदि काल - भेद से विभाग होता है । जैसे वह पैदा हुआ, मरा, जिया, बद्ध, मुक्त, सुखी, दुखी, स्त्री, नपुंसक, विद्वान्, मूर्ख अनेक ध्यान-योग से अनेक-रूप हो जाता है ।।७१-७६

एक एव स एवात्मा, रस-रूपी सनातनः । तस्मात् प्रकृति-योगेन, नान्यथा जायते क्वचित् ।।७७
विना घटत्व-योगेन, प्रत्यक्षो न यथा घटः । इतरौन्द्रिरात्मानोऽपि, नाभेदमुपगच्छति यथा ।।७८
पुरुषे नैव भेदोऽस्ति, विना शक्ति कथं च न । न प्रयोगैर्न वा ध्यानैर्न श्रुत्या न गुरु-क्रमात् ।।७९

रस-रूपी आत्मा प्रकृति-योग के बिना कभी भी व्यक्त नहीं हो सकता । जैसे घटत्व के बिना घट प्रत्यक्ष नहीं होता, उसी प्रकार प्रकृति-ज्ञान के बिना आत्म-ज्ञान नहीं होता । जिस प्रकार बिना शक्ति के पुरुष-ज्ञान नहीं होता, उसी प्रकार जानना चाहिए । प्रयोग, ध्यान-श्रुति, गुरु-वाक्य होते हुए भी प्रकृति से ही ज्ञान होता है ।।७७-७९

प्रकृत्या जायते ब्रह्म, प्रकृत्या लीयते पुमान् । प्रकृत्याऽधिष्ठितं सर्वं, प्रकृत्या वाञ्छितं जगत् ।।८०
प्रकृत्या भेदमाप्नोति, प्रकृत्या लीयते जगत् । तयोः सम - रसं ज्ञानं, वस्तु - तत्त्वं परं पदम् ।।८१

प्रकृति से ब्रह्म उत्पन्न होता है और प्रकृति में ही ब्रह्म का लय होता है । प्रकृति में ही सब अधिष्ठित हैं । प्रकृति से सम्पूर्ण जगत् सञ्चालित है । प्रकृति से भेद-ज्ञान होता है, प्रकृति से हो जगत् लय होता है । प्रकृति-पुरुष का सम-रस-ज्ञान ही वस्तुतः परम पद है ।।८०-८१

तत्-कृतेऽस्मिन् स्वयं ज्ञश्चित्, स्व-स्वरूपः पुमानसौ । निर्विकारः सर्वदैवं, प्रमाण-गोचरः पुमान् ।।८२

ज्ञान होने पर निर्विकार, नित्य-शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव, सर्वात्मा, स्वयम्भू, प्रमाण-गोचर स्वयं व्यक्त हो जाता है ।।८२

व्यक्तो भवति सर्वात्मा, स्वयमेव स्वयं-भुवः । उपायाः सन्ति बहुधा, ज्ञातुं ब्रह्म सनातनम् ।।८३
तथापि प्रकृतेर्योगात्, क्षिप्रं प्रत्यक्षतां लभेत् । सयान्त्रिकाः कु - देशे तु, यथा नावं प्रगृह्य च ।।८४
जना देशं समुत्तीर्य, समुद्रं विशतेऽचिरात् । तत् - तटे नावमादाय, क्षणाद् याति यथा पुनः ।।८५
तस्मात् परम्परा याता, ते हि कारणतां गताः । न साक्षात् कारणं ते हि, साक्षात् प्रकृति कारणम् ।।८६

यद्यपि सनातन ब्रह्म के ज्ञान के लिए शास्त्रों में अनेक उपाय बतलाए हैं, परन्तु प्रकृति - योग से शीघ्र ही प्रत्यक्ष हो जाता है । जिस प्रकार नाव का यात्री मार्ग भूल कर अभीष्ट स्थान से दूर चला जाता है, पुनः उसी मार्ग से लौट कर समुद्र में जिस स्थान से नाव छोड़ी थी, उस स्थान पर पहुँचने से भ्रम दूर हो जाता है और शीघ्र ही गन्तव्य स्थान पर पहुँच जाता है । इसी प्रकार परम्परागत ज्ञान करते हुए ब्रह्म-ज्ञान में प्रकृति ही साक्षात् कारण है ।।८३-८६

स्त्री भावः प्रकृतिर्ज्ञेयः, पुं-भावः पुरुषोत्तमः । ज्ञप्ति - ज्ञेय - विभागेन, ज्ञायतां पुरुषोत्तमैः ।।८७
घट-प्रत्यक्षतायां तु, आलोको व्यञ्जको यथा । तथा च व्यक्ति-विभवो, नैवं व्यञ्जकतां लभेत् ।
साक्षात् कारणमेवैतत्, प्रकृतिं क्वैव निश्चितम् ।।८८

संसार में स्त्री - भाव को 'प्रकृति' जानना चाहिए, पुं - भाव को 'पुरुषोत्तम' जानना चाहिए। ज्ञप्ति-ज्ञेय-विभाग से विद्वानों को समझ लेना चाहिए। जिस प्रकार घट की प्रत्यक्षता में आलोक व्यञ्जक है, उसी प्रकार ब्रह्म की प्रत्यक्षता में प्रकृति को व्यञ्जक तथा साक्षात् कारण निश्चित रूप से जानना चाहिए ।।८७-८८

दिव्य-भावो वीर-भावो, यस्य चित्ते व्यवस्थितः। एकेन जन्मना तस्य, पर-प्रत्यक्षमाप्नुयात् ।।८६
जीवन्मुक्तः स एवात्मा, भोगार्थमर्चते महीं। देवी - पुत्रः स एवात्मा, भैरवः परिकथ्यते ।।६०

जिस साधक के चित्त में 'दिव्य-भाव' अथवा 'वीर-भाव' व्यवस्थित है, उसे एक ही जन्म में परा-शक्ति की प्रत्यक्षता हो जाती है। वह देवी - पुत्र भैरव जीवन्मुक्तावस्था को प्राप्त हुआ शरीर - फल-भोगार्थ ब्रह्माण्ड का अर्चन करता हुआ पर्यटन करता है ।।८६-६०

भाव-त्रयाणां मध्ये तु, द्वौ भावौ सु-प्रतिष्ठितौ। न वक्तव्यौ मुक्ति-मार्गौ, कुल-सारौ कुलोत्तमौ ।।६१

तीनों भावों में 'वीर' और 'दिव्य' ये दो भाव सब प्रकार से प्रतिष्ठित हैं। ये दोनों 'भाव' कुल-धर्म के श्रेष्ठ सार-स्वरूप हैं और मुक्ति के मार्ग इन्हें किसी से नहीं कहना चाहिए ।।६१

कुलाचार-वर्णनम्

अथाचारं प्रवक्ष्यामि, सर्व-सिद्धि-प्रदं महत्। सर्व-भूत-हिते युक्तः, शिव-भक्ति - परायणः ।।६२

अब यहाँ से 'कुलाचार' का वर्णन करूँगा, जो बड़ी-से-बड़ी सिद्धियों का देनेवाला है। साधक को चाहिए कि समस्त प्राणियों के हित में लगा रहे और शिव का भक्ति-परायण रहे ।।६२

परस्यां देवतायां तु, सर्व-कर्म-निवेदकः। वृथा न कालं गमयेत्, द्यूत - क्रीडादिना सुधीः ।।६३

जो-जो कर्म करे, उसे अपने इष्ट-देवता को अर्पण करे, तथा जुवा, खेल - आदि में व्यर्थ काल न बिताए ।।६३

गमयेद् देवता-पूजा-जप-याग-स्तवादिना। गुरोः कृपाऽऽलाप-कथा-स्तोत्रागम-विलोकनैः ।।६४

समय को देवता-पूजा, हवन, जप, स्तोत्र-पाठ, गुरु-ध्यान, वेद-शास्त्र के चिन्तन तथा सत्सङ्ग में ही व्यतीत करे ।।६४

गमयेदनिशं कालं, न वदेत् पर-दूषणम्। प्रत्यक्षे वा परोक्षे वा, प्रत्यहं प्रणमेद् गुरुम् ।।६५

इस प्रकार काल बिताते हुए दूसरे के दोष को कभी न कहे। प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष में श्रीगुरुदेव को नित्य ही प्रणाम करे ।।६५

गुरोरग्रे पृथक्-पूजामौद्धत्यं च परि-त्यजेत्। दीक्षां व्याख्यां प्रभुत्वं च, गुरोरग्रे न कल्पयेत् ।।६६

गुरु के आगे पृथक् पूजा तथा उद्दण्डता नहीं करनी चाहिए। दीक्षा देना, व्याख्या करना, प्रभुता के प्रदर्शन—ये गुरु के समक्ष नहीं करने चाहिए ।।६६

गुरु-शय्यासनं पीठं, पादुकोपानहौ तथा। स्नानोदकं तथा छायां, लङ्घयेन्न कदाचन ।।६७

गुरु की शय्या, आसन, पीठ, खड़ाऊँ, जूता, स्नान करने का जल तथा छाया—इनका लङ्घन कभी नहीं करना चाहिए ।।६७

उत्पादक-ब्रह्म-दात्रोर्गरीयान् मन्त्रदः गुरुः । तस्मान्नमेच्च सततं, पितुरप्यधिकं गुरुम् ।।६८

पैदा करनेवाले 'पिता' तथा ब्रह्म-विद्या देनेवाले 'आचार्य' से भी श्रेष्ठ मन्त्र देनेवाला 'गुरु' होता है, इसलिए 'पिता' से भी अधिक जानकर 'गुरु' को सतत नमन करना चाहिए ।।६८

राग-लोभ-मोह-दम्भ-पैशुन्यानि विवर्जयेत् । कुलाचारं गुरुं देवं, मनसाऽपि न निन्दयेत् ।।६६

राग, लोभ, मोह, दम्भ, पिशुनता इत्यादि को छोड़ दे । कुलाचार, गुरु तथा देवता की निन्दा मन में भी कभी न करे ।।६६

पूजा ध्यानं जपं होमं, यथा-कर्म-चतुष्टयम् । प्रत्यहं साधकः कुर्यात्, स्वयं चेत् सिद्धिमिच्छति ।।१००

पूजा, ध्यान, जप, हवन—यथा-विधि ये चारों कर्म साधक प्रति - दिन करे । यदि स्वयं सिद्धि चाहता है, तो प्रमाद कभी न करे ।।१००

जपस्यान्ते शिवां ध्यायेत्, ध्यानस्यान्ते पुनर्जपेत् । जप-ध्यान-समायुक्तः, शीघ्रं सिद्धयति मन्त्र-वित् ।।१०१

जप के अन्त में भगवती का ध्यान करे, ध्यान करके पुनः जप करे । जप-ध्यान-युक्त मन्त्र-वेत्ता शीघ्र सिद्धि को प्राप्त करता है ।।१०१

अन्य - मन्त्रार्चने श्रद्धा, अन्य-देव-प्रपूजनम् । कुल-स्त्री-वीर-निन्दां च, तस्य द्रव्योपहारिणम् ।।१०२
कुल-रोषं प्रहारं च, वर्जयेन्मति-मान् नरः । शक्ति - मयं जगत् सर्वं, स्वयं तावत् तथा भवेत् ।।१०३

अन्य मन्त्र के अर्चन में श्रद्धा, अन्य देव-पूजन में भक्ति, कुल-स्त्री की निन्दा, वीर-निन्दा तथा वीर साधक का द्रव्य चुराना, कुल - स्त्री पर रोष करना या उस पर प्रहार करना—इन दुर्गुणों को बुद्धिमान् साधक त्याग दे । समस्त जगत् शक्ति - मय है, इसलिए साधक को स्वयं भी वैसा ही होना चाहिए ।।१०२-१०३

चर्व्यं चोष्यं तथा पेयं, भक्ष्यं भोज्यं गृहं सुखम् । सर्वं तु युवती-रूपं, भावयेन्मति-मान् नरः ।।१०४
कुलजां युवतीं वीक्ष्य, नमः कुर्यात् समाहितः ।।१०५
यदि भाग्य - वशेनैव, कुले दृष्टिस्तु जायते । तत्रैव मानसीं पूजां, तदा तासां प्रकल्पयेत् ।।१०६
सम्पूज्य ताभ्यो गन्धाद्यैर्मानसैरुपचारकैः । नमस्कृत्य विधानेन, स्वयमक्षोभितः सुधीः ।।१०७
बालां वा यौवनोन्मत्तां, वृद्धां वा सुन्दरीं तथा । कुत्सितां वा महा - दुष्टां, नमस्कृत्य विभावयेत् ।।१०८
तासां प्रहारं निन्दां च, कौटिल्यमप्रियं तथा । सर्वथा न च कर्त्तव्यमन्यथा सिद्धि - रोध - कृत् ।।१०६

चर्व्य, चोष्य, पेय, भक्ष्य, गृह-सुख आदि सभी की भावना मतिमान् साधक युवती - रूप में ही करे । कुलोत्पन्न युवती को देखकर समाहित चित्त से उसे नमस्कार करे । यदि भाग्य - वश 'कुल' (स्त्री) पर दृष्टि पड़ जाय, तो वहीं उनकी मानसिक पूजा करे । उनके स्वरूप का, सौन्दर्य का, गति का तथा ऐश्वर्यादि समस्त पदार्थों का मानसिक उपचारों द्वारा पूजन करे । चाहे स्त्री बाला हो, युवती हो, वृद्धा हो, सुन्दरी हो, कुरूपा हो या दुष्टा हो—किसी प्रकार की भी स्त्री हो, उसे देख कर अक्षुभित होकर नमस्कार करे । उन्हें मारना, निन्दा करना या उनके साथ कुटिलता, अप्रिय व्यवहार कभी न करे । यह सब कभी भी नहीं करना चाहिए, अन्यथा सिद्धि में बाधक होता है ।।१०४-१०६

स्त्रियो देवाः स्त्रियः प्राणाः, स्त्रिय एव विभूषणं । स्त्री-सङ्गिना सदा भाव्यमन्यथा सिद्धि-रोध-कृत् ।।११०
विपरीत-रसा सा तु, भाविता हृदयोपरि ।।१११

स्त्रियाँ ही देवता हैं, स्त्रियाँ ही प्राण हैं, स्त्रियाँ ही भूषण हैं, साधक को सदा स्त्री - भक्त होना चाहिए, अन्यथा सिद्धि में बाधा होती है । वह (स्त्री) विपरीत भाव-युक्ता हो, तो भी उसे हृदय से सम्मान देना चाहिए ।।११०-१११

तद्धस्त-रचितं भोज्यं, तद्धस्ताद् रचितं जलम् । तद्धस्तावचितं पुष्पं, देवताभ्यो निवेदयेत् ।।११२

स्त्री के हाथ का बनाया हुआ भोजन, स्त्री के हाथ का जल, स्त्री के हाथ से तोड़े हुए पुष्प, देवताओं को समर्पित करे ।।११२

उच्छिष्टं भक्षयेत् स्त्रीणां, ताभ्यो नोच्छिष्टमर्पयेत् ।।११३

स्त्रियों का उच्छिष्ट (जूठा) ग्रहण करे, परन्तु अपना उच्छिष्ट उन्हें न दे ।।११३

न न्यासो योषितां चात्र, न पूजा नापि चिन्तनम् ।।११४

स्त्रियों के लिए न्यास, पूजा, ध्यान आदि की आवश्यकता नहीं है ।।११४

षडङ्ग-न्यासमाचर्य, ध्यात्वा रात्रौ जपेत् कृती । जप-स्थाने महा-शङ्खं, निवेश्योर्ध्वं जपं चरेत् ।।११५

साधक को षडङ्ग न्यास कर जप-स्थान में महा-शङ्ख को अपने सामने स्थापित कर ध्यान-पूर्वक रात्रि में जप करना चाहिए ।।११५

अभिषेके बिना भूते, आचार्यत्वं यदा चरेत् । तावत्-कालं नारकी स्यात्, यावदाभूत-सम्प्लवम् ।।११६

बिना अभिषिक्त हुए जो साधक आचार्य-पद को ग्रहण करता है, वह प्रलय-पर्यन्त नरक - गामी होता है ।।११६

साधके क्षोभमापन्ने, देव्या क्षोभः प्रजायते । तस्माद् यत्नाद् भोग-युक्तो, भवेद् वीर-वरः सुखी ।।११७

भोगेन मोक्षमाप्नोति, भोगेन कुल-साधकम् ।।११८

बिना हेतुकमासाद्य, क्षोभ-युक्तो भवेन्नरः । तस्माद् भुक्त्वा च पीत्वा च, पूजयेत् परमेश्वरीम् ।।११९

हेतु-द्रव्यं बिनाऽऽस्वाद्यन्, न जपेन्न च पूजयेत् । यो जपेच्चण्डिकां देवीं, तस्य दुःखं पदे पदे ।।१२०

साधक में क्षोभ होने से देवी को भी क्षोभ होता है, इसलिए साधक को सर्वदा सुखी तथा भोग-युक्त रहना चाहिए । भोग से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है, भोग से ही कुल की साधना होती है । बिना हेतु-द्रव्य के साधक क्षोभ-युक्त हो जाता है । इसलिए खा-पीकर भगवती का पूजन करना चाहिए । हेतु (मद्य) ग्रहण किए बिना न जप करे, न पूजन करे । जो इसकी अवहेलना कर चण्डिका के मन्त्र का जप करता है, उसे पग-पग पर दुःख भोगना पड़ता है ।।११७-१२०

न क्रम - च्युत - दोषोऽस्ति, नाचार - दोष-दूषणम् । यद्यद् वदति निद्राति, यत् करोति यदिच्छति ।।

तत्-सर्वं कुल-रूपं च, ध्यात्वा च विहरेत् सुधीः ।।१२१

ध्यान-युक्त साधक को क्रम-च्युत-दोष, आचार-दोष नहीं होता । उसका बोलना, सोना, करना, इच्छा करना आदि समस्त 'कुल' (स्त्री) रूप ही है । अतः ध्यान कर स्वतन्त्र-रूप से विचार करे ।।१२१

अन्ते शाक्ताः बहिः शैवाः, सभायां वैष्णवा मताः । नाना-रूप-धराः कौलाः, विचरन्ति मही-तले ।।१२२

एकाकी निर्जने देशे, श्मशाने पर्वते वने । शून्यागारे नदी - तीरे, निःसङ्गो विहरेत् सदा ।।१२३

भीतर से शाक्त, बाहर से शैव, सभा में वैष्णव-वेश—इस प्रकार अनेक रूप धर कर कौल पृथ्वी पर विचरण करते हैं । अकेले निर्जन देश में, श्मशान में, पर्वत पर, वन में, शून्यागार में, नदी के तीर पर निस्सङ्ग होकर सदा विचरण करते हैं ।।१२२-१२३

स्त्रियं गच्छन् स्पृशन् पश्यन्, विशेषान् कुलजां शुभां । ताम्बूलं भक्षयन् मन्त्री, जपेन् मन्त्रं समाहितः ।।१२४

स्त्री को जाते हुए, छूते हुए, देखते हुए, विशेष शुभ देनेवाली कुल - स्त्रियों के दर्शन होने पर साधक ताम्बूल चर्वण करता हुआ समाहित मन से मन्त्र का जप करता है ।।१२४

यत्र कुत्र कुजे वारे, श्मशाने गमने कृते । पूजा - फलं भवेत् तत्र, सप्त - वासर - सन्निभम् ॥१२५
चतुर्दश्यां सकृत् तत्र, पक्ष - पूजा - फलं लभेत् । न कृते नार्चिते स्थाने, पशुरेव न संशयः ॥१२६

मङ्गलवार में यात्रा-समय जहाँ कहीं श्मशान प्राप्त हो, वहाँ पर जप करने से सात दिन का पूजा-फल उसे प्राप्त होता है और यदि चतुर्दशी को ऐसा योग हो, तो एक पक्ष का पूजा-फल साधक को प्राप्त होता है। जो साधक ऐसे स्थान पर पहुँच कर पूजा - जप आदि कर्तव्य कर्म नहीं करता, वह निस्सन्देह पशु ही है, ऐसा जानना चाहिए ॥१२५-१२६

स्नानादि मानसं दिव्यं, मानसः प्रवरो जपः । पूजनं मानसं शौचं, मानसं तर्पणादिकम् ॥१२७
सर्व एव शुभः कालो, नाशुभं विद्यते क्वचित् । न विशेषो दिवा रात्रौ, न सन्ध्यायां महा-निशि ॥१२८

दिव्य मानस-पूजन-तर्पण के लिए सभी काल शुभ ही हैं, अशुभ कहीं भी नहीं है। न तो दिन और रात्रि में कोई विशेष है, न सन्धि में, न महा-निशा में ॥१२७-१२८

वस्त्रासन-स्थान-देह - गेह - स्पर्शादि वारिणा । न शुद्धिं चाचरेदत्र, निर्विकल्पं मनश्चरेत् ॥१२९
नात्र शुद्धेरपेक्षाऽस्ति, न चामेध्यादि-दूषणम् । यत्किञ्चिच्चिन्तयेन्मन्त्री, सर्व-कामार्थ-सिद्धिदम् ॥१३०
गद्य-पद्य-मयी वाणी, सभायां तस्य जायते । तस्य दर्शन - मात्रेण, वादिनो निष्प्रभा गताः ।
राजानोऽपि तद्-दासत्वं, भजन्ते किं परे जनाः ॥१३१

वस्त्र, स्थान, देह, गेह, स्पृश्यास्पृश्य जलादि—किसी में उसे शुद्धि की आवश्यकता नहीं, केवल मन को ही निर्विकल्प करे। यहाँ पर शुद्धि की अपेक्षा नहीं, अमेध्यादि दूषण नहीं। जो कुछ भी साधक चिन्तना करता है, उसकी समस्त कामना पूर्ण होती है तथा उसकी वाणी सभा में गद्य-पद्य-मयी हो जाती है। उसके दर्शन मात्र से विवाद करनेवाला प्रतिभा-हीन हो जाता है। राजा भी उसकी किङ्करता ग्रहण कर लेता है, तो दूसरे मनुष्यों की गणना ही क्या ? ॥१२९-३१

सर्वदा पूजयेद् देवीं, स्नात-कृत - भोजनः ॥१३२

सदैव स्नान-भोजन से निवृत्त होकर ही भगवती का पूजन करना चाहिए ॥१३२

शक्तिः शिवः शिवः शक्तिः, शक्तिर्ब्रह्मा जनार्दनः । शक्तिरिन्द्रो रविः शक्तिः, शक्तिश्चन्द्रो ग्रहा-गणाः ॥१३३
शक्ति पञ्च-महा-भूताः, दिक्-कालाश्च दिगीश्वराः । शक्ति-मयं जगत् सर्वं, न ध्यायति स नारकी ॥१३४

शक्ति ही शिव है, शिव ही शक्ति है, शक्ति ही ब्रह्मा और जनार्दन है, शक्ति ही इन्द्र है, रवि-चन्द्र, समस्त ग्रह-मण्डल, पञ्च-महा-भूत, दिशा, काल, दिगीश्वर आदि सम्पूर्ण जगत् ही शक्ति-मय है। जो ऐसा नहीं देखता, वह नारकी है ॥१३३-३४

महा-निश्यशुचौ देशे, बलिं मन्त्रेण दापयेत् । महा-निशा तु तत्रैव, अर्ध - रात्रि - गतावधि ॥१३५
मुहूर्त्त-द्वय-मानं च, तद् दत्तमक्षयं भवेत् । रात्रावेषा महा-पूजा, कर्त्तव्या वीर-वन्दिते ! ॥१३६
नदी-तीरे सदा कार्या, शासनात् मम सुव्रते ! ॥१३७

महा-निशा में श्मशान में मन्त्र से बलि दे। आधी रात में दो मुहूर्त्त वहाँ जो कर्म किया जाता है, उसका फल अक्षय होता है। यह महा-पूजा, हे देवि, नदी-तट पर ही भोजनादि से निवृत्त होकर रात्रि में ही करनी चाहिए ॥१३५-३७

पृथ्वीं ऋतु-मतीं वीक्ष्य, सहस्रं यदि नित्यशः । तदा वादि-सुसिद्धान्त-हतः क्षिति-तलं व्रजेत् ॥१३८

पृथ्वी (योनि-पीठ) को ऋतु-मती देखकर एक सहस्र जप जो नित्य करता है, वह विरोधी को पराजित करता है और संसार में सर्व-विजेता के रूप में विचरण करता है ॥१३८

पद्मं दृष्ट्वा तथा बिम्बं, खञ्जनं शिखरं तथा । चामरं रवि-बिम्बं च, तिल-पुष्पं सरोरुहम् ।।१३९
त्रिशूलं वीक्ष्य जप्त्वा च, शतशः शुद्ध - भावतः । मुख-प्रसादं सुमुखं, सुलोचन - सुहास्यके ।।१४०
सुकेशं सुगतिं गन्धं, सुरूपं सुखमेव च । लभते च यथा - संख्यं, शृणु पार्वति ! सादरम् ।।१४१

पद्म, सूर्य या चन्द्र-मण्डल, खञ्ज पक्षी, पर्वत-शिखर, चामर, तिल-पुष्प, कमल, त्रिशूल इत्यादि पदार्थों को देखकर जो इष्ट-मन्त्र का सौ बार जप करता है, उसे क्रम से मुख की प्रसन्नता, सौन्दर्य, सुन्दर नेत्र, प्रफुल्लता, सुन्दर केश, सुन्दर गति, गन्ध, सुरूप, सुख आदि पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होते हैं ।।१३९-४१

दिक्काल-नियमो नात्र, स्थित्यादि-नियमो न च । जपे न काल-नियमो, नार्चादिषु बलिष्वपि ।।१४२
स्वेच्छा-नियम उक्तोऽत्र, महा-मन्त्रस्य साधने । कृतार्थं मन्य-मानस्तु, सन्तुष्ट-निज-मानसः ।।१४३

दिशा-काल का कोई नियम नहीं, बैठने-उठने का नियम नहीं--जप, पूजन, बलि आदि में महा-मन्त्र के साधक के लिए स्वेच्छा-नियम ही कहा है । साधक अपने को कृतार्थ मानता हुआ मन को भली-भाँति सन्तुष्ट रक्खे ।।१४२-४३

सुगन्धि-श्वेत - लौहित्य - कुसुमैरर्चयेत् कुलैः । विलेपैर्मरुवकाद्यैः, तुलसी - वर्जितैः शुभैः ।।१४४
नाधर्मो विद्यते किञ्चित्, किन्तु धर्मो महान् भवेत् । कुलान्नं चैव भुञ्जीत, कुलीनेन सह स्वपेत् ।।१४५
इत्याचार - परो धीमान्, जप - पूजा - परायणः । पालकः पर- तत्त्वानां, पर-तत्त्वे प्रलीयते ।
अणिमाद्यष्ट - सिद्धीनामाश्रयः साधको भवेत् ।।१४६

सुन्दर गन्ध से युक्त, श्वेत-रक्त पुष्पों से 'कुल' का पूजन करे । तुलसी को छोड़ मलय चन्दन या मौलश्री का विलेपन करे । इससे अधर्म नहीं होता, किन्तु बड़ा धर्म होता है । कुलान्न ही भोजन करना, कुलीनों के साथ ही सोना साधक को उचित है । इस प्रकार आचरण करता हुआ, जप, पूजा-पाठ में परायण, पर-तत्त्व का चिन्तन करनेवाला बुद्धिमान् साधक इह-लौकिक सुख को पूर्ण भोग कर अन्त में पर-तत्त्व में ही लीन होता है तथा वह अणिमादि अष्ट-सिद्धियों का दाता होता है ।।१४४-४६

समयाचार-वर्णनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि, समयाचारमुत्तमम् । येन हीना न सिद्ध्यन्ति, कुल-चर्याऽनुसारिणः ।।१४७

अब यहाँ से समयाचार का वर्णन करूँगा, जिसके बिना कुलाचारी को सिद्धि नहीं मिलती ।।१४७

उदार-चित्तः सर्वत्र, वैष्णवाचार-तत्परः । पर - निन्दा-सहिष्णुः स्यादुपकार - करः सदा ।।१४८

कौलिक को उदार-चित्त, वैष्णवाचार-तत्पर, उपकार-प्रधान और दूसरे द्वारा की गई निन्दा को सहने में समर्थ होना चाहिए ।।१४८

पर्वते विपिने चैव, निर्जने शून्य - मण्डपे । चतुष्पथे कला - मध्ये, यदि दैवाद् गतिर्भवेत् ।।१४९
क्षणं ध्यात्वा मनुं जप्त्वा, नत्वा गच्छेद्यथा-सुखम् । गृध्रीं वीक्ष्य महा-कालीं, जम्बुकीं यम-दूतिकाम् ।।१५०
कृष्ण - मार्जार - भू - काकौ, श्येनं क्षेमङ्करीं तथा । कुक्कुरं च नमस्कुर्यादिमं मन्त्रं पठन् नरः ।।१५१

यदि भाग्य-वश पर्वत, वन, निर्जन स्थान, एकान्त मन्दिर या चौराहे पर पहुँच जाय और 'कला' का दर्शन हो, तो क्षण भर ध्यान कर मन्त्र का जप करे और प्रणाम करके इच्छानुसार गमन करे । 'महा-काली'-रूपा गृद्धिनी, 'यम-दूती'-रूपा शृगाली या काली बिल्ली, क्षेमङ्करी-रूप बाज या कौए और कुत्ते का दर्शन मिले, तो नीचे लिखे मन्त्र से प्रणाम करे ।।१४९-१५१

'कृशोदरि ! महा-चण्डे, मुक्त-केशि, बलि-प्रिये ! कुलाचार-प्रसन्नास्ये, नमस्ते शङ्कर-प्रिये ! ।।१५२

हे कृशोदरि, हे महा-चण्डे, हे मुक्त-केशि, हे बलि-प्रिये, हे कुलाचार-प्रसन्नास्ये, हे शङ्कर-प्रिये ! तुम्हें प्रणाम है ।।१५२

श्मशानं च शवं दृष्ट्वा, प्रदक्षिणमनु-व्रजन् । प्रणम्यानेन मन्त्रेण, मन्त्री सुखमवाप्नुयात् ।।१५३

श्मशान और शव को देखकर दाहिने भाग में इन्हें करते हुए नमन करे। नीचे लिखे मन्त्र से इनको प्रणाम करने से मन्त्रज्ञ सुखी होता है ।।१५३

'घोर-दंष्ट्रे ! कोटराक्षि, कट-शब्द-प्रकाशिनि ! घोर-घोर-रवास्फाले, नमस्ते चिति-वासिनि !' ।।१५४

'हे घोर-दंष्ट्रे, हे कोटराक्षि, हे कटु-शब्द प्रकाशिनि, हे घोर-घोर-रवास्फाले, हे चिति-वासिनि ! तुम्हें प्रणाम है' ।।१५४

रक्त-वस्त्रं तथा पुष्पं, विलोक्य त्रिपुराऽम्बिकाम् । प्रणमेद् गुरु-वद् भूमाविमं मन्त्रं पठन् नरः ।।१५५

लाल-फूल, लाल-वस्त्र दर्शन करने पर श्रीत्रिपुरा मां का अंश जानकर गुरु के समान उन्हें दण्ड-वत् प्रणाम करके नीचे लिखी स्तुति-पाठ करे ।।१५५

'बन्धूक-पुष्प-सङ्काशे, त्रिपुरे ! भय-नाशिनि ! भाग्योदय-समुत्पन्ने, नमस्ते वीर-वर्णिनि !' ।।१५६

'हे बन्धूक-पुष्प-सङ्काशे, हे त्रिपुरे, हे भय-नाशिनि, हे भाग्योदय करनेवाली, हे वीर - वर्णिनि ! आपको प्रणाम है' ।।१५६

कृष्ण-वस्त्रं तथा पुष्पं, राजानं राज-पुत्रकम् । हस्त्यश्व-रथ-शस्त्राणि, फलकान् वीर-वल्लभाम् ।।१५७

महिषं कुल-देवं च, दृष्ट्वा महिष - मर्दिनीम् । प्रणम्य जय - दुर्गां वा, स च विघ्नैर्न लिप्यते ।।१५८

काला पुष्प, काला वस्त्र, राजा, राज-कुमार, हाथी, घोड़ा, रथ, शस्त्र, सिंहासन, वीर - पत्नी, महिष और कुल-देव का दर्शन होने पर श्रीमहिष-मर्दिनी श्रीदुर्गाजी को प्रणाम करने से विघ्न से रक्षा होती है ।।१५७-५८

'जय देवि ! जगद्धात्रि, त्रिपुराद्यैस्त्रि-दैवतैः । भक्तेभ्यो वरदे ! देवि, महिषघ्नि ! नमोऽस्तु ते' ।।१५९

'हे जगद्धात्रि, त्रिपुरादि-त्रि-दैवत-रूपे, भक्तों को वर देनेवाली देवि ! तुम्हारी जय हो और तुम्हें प्रणाम है' ।।१५९

मद्य-भाण्डं समालोक्य, मत्स्यं मांसं वर-स्त्रियम् । दृष्ट्वा च भैरवीं देवीं, प्रणमेद् विमृशन् मनुम् ।।१६०

मद्य-भाण्ड, मत्स्य, मांस, सुन्दरी स्त्री का दर्शन होने पर निम्न मन्त्र से प्रणाम करे—।।१६०

'घोर-विघ्न-विनाशाय, कुलाचार-समृद्धये । नमामि वरदे ! देवि, मुण्ड-माला-विभूषिते ! ।।१६१

रक्त-धारा-समाकीर्ण-वदने ! त्वां नमाम्यहम् । सर्व-विघ्न-हरे देवि, नमस्ते हर-वल्लभे !' ।।१६२

'भयङ्कर विघ्न को शान्त करने के लिए और कुलाचार की वृद्धि के लिए हे मुण्ड - माला-विभूषिते, वरदे, देवि ! तुम्हें प्रणाम है। हे रक्त-धारा-समाकीर्ण-वदने, सर्व-विघ्न-हरे, हर - वल्लभे, आपको प्रणाम है' ।।१६१-१६२

एतेषां दर्शने चैव, यदि नैव प्रकुर्वते । शक्ति - मन्त्रं पुरस्कृत्य, तेषां सिद्धिर्न जायते ।।१६३

एतेषां मारणोच्चाटं, हिंसनं वागुरादिभिः । क्रियते यदि पापात्मा, देवी-भक्तः कथं भवेत् ? ।।१६४

प्रधानांश-समुद्भूता, एते कुल-जन-प्रियाः । डाकिन्याश्च स्त्रियः सर्वा, दिव्यांशः योषितो यतः ।।१६५

लब्ध-सिद्धि-समायोगाद्, डाकिनी-हिंसनं यदि । अथवा दानवानां च, साधकानां विशेषतः ।

बटुकानां भैरवाणां, तस्य सिद्धिर्न जायते ।।१६६

उक्त प्रकार के दर्शन मिलने पर यदि साधक भावापन्न होकर उक्त प्रकार से प्रणाम नहीं करता, तो शक्ति-मन्त्रों की सिद्धि नहीं होती। उक्त जीवों का मारण, उच्चाटन, हिंसा या बन्धन जो पापात्मा कर ता है, वह देवी-भक्त किस प्रकार हो सकता है ? ये सभी कुल-जन-प्रिय प्रधान अंश से उत्पन्न हैं। डाकिनी और सम्पूर्ण स्त्रियाँ श्री जगदम्बा के अंश-भूत हैं। सिद्धि-प्राप्त साधक भी यदि किसी स्त्री जीव की, साधक की, चाहे वह दानव-प्रवृत्ति का ही हो, वटुक-रूपों तथा भैरव - रूपों की हिंसा करता है, तो उसकी सिद्धि नष्ट हो जाती है ।।१६३-६६

एतत् कर्तुमशक्तो यस्तस्यार्थं स्तवमादिशेत् ।।१६७

उक्त प्रकार प्रणामादि करने में जो असमर्थ हैं, उनके लिए स्तोत्र - पाठ का निर्देश है ।।१६७

त्रिपुरा त्रिपुरेशी च, सुन्दरी पुर - वासिनी। श्रीमालिनी च सिद्धात्मा, महा - त्रिपुर - सुन्दरी ।।१६८
प्रकटाद्यास्तथा गुप्ता, तथा गुप्त - तरा मता। सम्प्रदाय - कुला कौला, रहस्याति - रहस्यगा ।।१६९
परापर - रहस्या च, तथा कामेश्वरी शुभा। भग - मालिनी च क्लिन्ना, भेरुण्डा वह्नि - वासिनी ।।१७०
महा - नित्येश्वरी दूती, त्वरिता कुल - सुन्दरी। नित्या नील - पताका च, विजया सर्व - मङ्गला ।।१७१
ज्वालांशु-मालिनी चित्र-वासिनी शुभगा कुला। पूर्णाख्या च तथा वत्स ! कामेशी मोहिनी तथा ।।१७२
विमला अरुणा देवी, जयिनी कुल - भैरवी। सर्वेश्वरी तथा कौली, वागीशी सर्व - कामिनी ।।१७३
सिद्धेश्वरी तथा चोग्रा, दुर्गा महिष - मर्दिनी। स्वप्नावती शूलिनी च, मातङ्गी सुर - सुन्दरी ।।१७४
महा - काली महोग्रा च, महा - देवी महोदरी। प्राण - विद्या तथैकाक्षी, चैक - पादा महांकुशा ।।१७५
वामा शिवा तथा ज्योत्स्ना, सुरूपा चारु-भाषिणी। त्रिखण्डा त्रिशिवा शौरी, गौरी विल्व-निवासिनी ।।१७६
क्षोभिणी नादिनी भद्रा, ललिता बहु-रूपिणी। सर्व - सम्पत् - करी तारा, भवानी विश्व - वासिनी ।।१७७
त्रोटेश्वरी महा - विद्या, कथितास्तव भैरव ! श्रीविद्या भेद - सहिता, बाला च त्रिपुरा च या।
भुवनेश्वरी चान्न-पूर्णा, पूर्वाम्नाये प्रकीर्तिताः ।।१७८

त्रिपुरा, त्रिपुरेशी, सुन्दरी, पुर-वासिनी, श्रीमालिनी, सिद्धात्मा, महा - त्रिपुर - सुन्दरी, प्रकटा, आद्या, गुप्ता, गुप्त-तरा, परा, सम्प्रदाय-कुला, कौला, रहस्या, अति-रहस्यगा, परापर-रहस्या, कामेश्वरी, शुभा, भग-मालिनी, क्लिन्ना, भेरुण्डा, वह्नि-वासिनी, महा-नित्येश्वरी, दूती, त्वरिता, कुल-सुन्दरी, नित्या, नील-पताका, विजया, सर्व-मङ्गला, ज्वालांशु-मालिनी, चित्र-वासिनी, शुभगा, कुला, पूर्णाख्या, कामेशी, मोहिनी, विमला. अरुणा, जयिनी, कुल-भैरवी, सर्वेश्वरी, कौली, वागीशी, सर्व-कामिनी, सिद्धेश्वरी, उग्रा, दुर्गा, महिष-मर्दिनी, स्वप्नावती, शूलिनी, मातङ्गी, सुर-सुन्दरी, महा-काली, महोग्रा, महा-देवी, महोदरी, प्राण - विद्या, एकाक्षी, एक - पादा, महांकुशा, वामा, शिवा, ज्योत्स्ना, सुरूपा, चारु - भाषिणी, त्रिखण्डा, त्रिशिवा, शौरी, गौरी, विल्व-निवासिनी, क्षोभिणी, नादिनी, भद्रा, ललिता, बहु-रूपिणी, सर्व-सम्पत्-करी, तारा, भवानी, विश्व-वासिनी, त्रोटेश्वरी, महा-विद्या, भेद-सहित श्रीविद्या, बाला तथा त्रिपुरा, भुवनेश्वरी और अन्नपूर्णा पूर्वाम्नाय में कही गई हैं ।।१६८-७८

महा-सरस्वती विद्या, तथा वाग्वादिनी च या। प्रत्यङ्गिरा च भगवन्, पश्चिमाम्नाय-देवताः ।।१७९

महा-सरस्वती विद्या या वाग्-वादिनी और प्रत्यङ्गिरा पश्चिमाम्नाय की देवता हैं ।।१७९

कालिका भेद-सहिता, तारा भेदैश्च संयुता। मातङ्गी भैरवी छिन्ना, तथा धूमावती मता ।।१८०
उत्तराम्नाये कथिताः, शीघ्रं कार्य-फल-प्रदाः ।।१८१

भेद-सहित कालिका तथा भेदों से संयुक्त तारा, मातङ्गी, भैरवी, छिन्न-मस्ता और धूमावती—ये उत्तराम्नाय के देवता हैं, जो शीघ्र कार्य-सिद्धि करनेवाले हैं ।।१८०-८१

समस्त-भेद-सहिता, वगलाख्या च कालिका । द्वा-विंशत्यक्षरी विद्या, दक्षिणाम्नाय-देवताः ।।१८२

भेद-सहित बगला और काली की द्वाविंशत्यक्षरी विद्या दक्षिणाम्नाय की देवता हैं ।।१८२

परा-प्रासाद-मन्त्रस्तु, ऊर्ध्वाम्नायः प्रकीर्तितः । नाग-शक्त्यादयो विद्या, अधराम्नाये प्रकीर्तितः ।।१८३

परा-प्रासाद मन्त्र ऊर्ध्वाम्नाय में प्रसिद्ध है । नाग-शक्ति आदि विद्याएँ अधाम्नाय में हैं ।।१८३

ऊर्ध्वाम्नायोऽधश्चैव, केवलं मोक्षदो भवेत् । धर्मार्थ-काम-मोक्षदं, त्वन्ये आम्नायाः प्रकीर्तिताः ।।१८४

ऊर्ध्वाम्नाय और अधाम्नाय केवल मोक्ष-दायक हैं । धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष देनेवाले दूसरे आम्नाय हैं ।।१८४

षट्-कर्म-फलदा नृणां, सर्वे आम्नायाः कीर्तिताः । उत्तराम्नायः देवेशि ! तेषामाशु-फल-प्रदः ।।१८५

षट्-कर्म-सिद्धि देनेवाले सभी आम्नाय हैं । उनमें उत्तराम्नाय शीघ्र फल देनेवाला है ।।१८५

काली तारा महा - विद्या, षोडशी भुवनेश्वरी । भैरवी छिन्न - मस्ता च, विद्या धूमावती तथा ।।१८६
बगला सिद्धि - विद्या च, मातङ्गी कमलात्मिका । एता दश - महा - विद्या, महा - देवेन कीर्तिताः ।।१८७

काली, तारा, षोडशी—महा- वद्याएँ, भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्नमस्ता, धूमावती—सिद्धि-विद्याएँ और बगला, मातङ्गी तथा कमलात्मिका—ये दश महा - विद्याएँ श्री आदिनाथ शङ्कर द्वारा वर्णित की गई हैं ।।१८६-८७

महा-कालश्च अक्षोभ्यः, कामेश्वर - महेश्वरौ । त्रिपुरा - भैरवश्चैव, आनन्द - भैरवस्तथा ।।१८८
पिप्पलादस्त्रिनयनो, मृत्युञ्जय-नारायणौ । क्रमेण दश-विद्यानां, शिवाश्च समुदीरिताः ।।१८९

महा - काल, अक्षोभ्य, कामेश्वर, महेश्वर, त्रिपुरा - भैरव, आनन्द-भैरव, पिप्पलाद, त्रिनयन, मृत्युञ्जय और नारायण—क्रम से दश-महा-विद्याओं के शिव हैं ।।१८८-८९

उपासकान् महा-देवि ! शृणु चैक-मनाः स्वयम् । मनुश्चन्द्रः कुबेरश्च, मन्मथस्तदनन्तरम् ।।१९०
लोपा-मुद्रा-पतिर्नन्दी, शक्रः स्कन्दः शिवस्तथा । क्रोध-भट्टारकश्चैव, पञ्चमी परि-कीर्तिता ।।१९१
दूर्वासा व्यास-सूर्यौ च, वशिष्ठश्च पराशरः । और्व - वह्निर्यमश्चैव, नैर्ऋतो वरुणस्तथा ।।१९२
वायुर्विष्णुः स्वयम्भूश्च, सौरवो गणपस्तथा । अनिरुद्धो भरद्वाजो, दक्षिणामूर्तिरेव च ।।१९३
वटुको गणपश्चैव, लक्ष्मीर्गङ्गा सरस्वती । धात्री शेषः प्रमत्तश्च, उन्मत्तः कुल - भैरवः ।।१९४
क्षेत्रपालो हनूमांश्च, दक्षो गरुड़ एव च । प्रह्लादः शुकदेवश्च, रामो रावण एव च ।।१९५
कश्यपः कौत्स-कुम्भौ च, जामदग्निर्भृगुस्तथा । वृहस्पतिर्यदु-श्रेष्ठो, दत्तात्रेयो युधिष्ठिरः ।।१९६
अर्जुनो भीमसेनश्च, द्रोणाचार्यो वृषा-कपिः । दुर्योधनस्तथा कुन्ती, सीता च रुक्मिणी तथा ।।१९७
सत्य-भामा द्रौपदी च, उर्वशी च तिलोत्तमा । पुष्प-दन्तो महा-बुद्धो, वाणः कालश्च मन्दरः ।।१९८
कैलाशः क्षीर-सिन्धुश्च, उदधिर्हिमवांस्तथा । भद्रायुः सुरथः शर्भ, ऋषभो वाडवानलः ।।१९९
दधीचि लेमि-मैनाकौ, भुशुण्डी बलि-वामनाः । यादवश्च महा-वीरः, कल्प-वृक्षस्तथैव च ।।२००
नारदो वीर-भद्रश्च, गौड-गोविन्द-शङ्कराः । मीनः कपाली गोरक्षो, ब्रह्मानन्दस्तथैव च ।।२०१
महा-दिव्याश्च वीराश्च, कथिता ब्रह्म-साधकाः । महा-विद्या-प्रसादेन, स्व-स्व-कर्म-समन्विताः ।।२०२

हे महा-देवि ! अब इनके उपासकों को कहते हैं, एकाग्र मन से सुनो । मनु, चन्द्र, कुबेर, कामदेव, लोपामुद्रा के पति अगस्त्य, नन्दी, शक्र, स्कन्द, शिव, क्रोध-भट्टारक, दुर्वासा, व्यास, सूर्य, वशिष्ठ, पराशर,

औवं (मङ्गल), अग्नि, यम, निऋति, वरुण, वायु, विष्णु, स्वयम्भू, शनि, गणप, अनिरुद्ध, भरद्वाज, दक्षिणामूर्ति, वटुक, गणप, लक्ष्मी, गङ्गा, सरस्वती, धात्री, शेष, प्रमत्त, उन्मत्त, कुल - भैरव, क्षेत्रपाल, हनूमान, दक्ष, गरुड़, प्रह्लाद, शुकदेव, राम, रावण, कश्यप, कौत्स, कुम्भ, परशुराम, भृगु, वृहस्पति, कृष्ण, दत्तात्रेय, युधिष्ठिर, अर्जुन, भीमसेन, द्रोणाचार्य, वृषा-कपि, दुर्योधन, कुन्ती, सीता, रुक्मिणी, सत्यभामा, द्रौपदी, उर्वशी, तिलोत्तमा, पुष्प-दन्त, महा-बुद्ध, वाण, काल, मन्दर, कैलाश, क्षीर-समुद्र, उदधि, हिमवान्, भद्रायु, सुरथ, शरभ, ऋषभ, वाडवानल, दधीचि, लोमश, मैनाक, भुशुण्डी, वलि, वामन, महा-वीर, यादव, कल्प - वृक्ष, नारद, वीर - भद्र, गौड़ाचार्य, गोविन्द, शङ्कराचार्य, मीन (मत्स्येन्द्रनाथ), कपाली (चण्ड-कापाली), गोरखनाथ और ब्रह्मानन्द––ये समस्त महा-दिव्य और वीर ब्रह्म-साधक कहे गए हैं, जो महा-विद्या के प्रसाद से ही अपनी-अपनी साधना में सफल हुए हैं ।।१९०-२०२

एतेषां वत्स ! नामानि, नित्यं विद्योप-सेविनाम् । प्रातः-काले शुचिर्भूत्वा, यः पठेत् प्रयतात्मना ।।२०३
पूजायां वा महा-पीठे, प्रसीदामि कुल-प्रिय ! अशुचिर्वा निरालम्बः, सालम्बो वा कुलान्तिके !
नित्य-पूजा-फलं तस्य, ददामि वरमीप्सितम् ।।२०४

हे पुत्र ! नित्य विद्या-सेवी जो साधक उक्त नामों को प्रातः पवित्र होकर पूजा - काल में अथवा महा-पीठ में पाठ करता है, उसके ऊपर मैं परम प्रसन्न होती हूँ । अपवित्र हो या पवित्र, निरालम्ब हो या सावलम्ब, उसे मैं नित्य पूजा-पाठ का फल तथा ईप्सित वर देती हूँ ।।२०३-४

चक्र - सङ्केतकं वत्स ! गुरु - सङ्केतकं तथा । समयाचार - सङ्केतं, न कृत्वा योऽत्र वर्तते ।।२०५
जप-पूजाऽर्चनं होममभिचाराय कल्पते । एतत् स्तोत्रं पठित्वा तु, साङ्गतामानयेद् ध्रुवम् ।।२०६

हे वत्स ! चक्र-सङ्केत, गुरु-सङ्केत, समयाचार-सङ्केत को न जानकर जो इसमें व्यवहार करता है, उसका जप, पूजा, पाठ आदि क्रियाएँ अभिचार के लिए होती हैं, परन्तु जो इस स्तोत्र का पाठ करता है, उसकी समस्त क्रियाओं की सिद्धि निश्चय रूप से हो जाती है ।।२०५-६

।। श्री पूर्णानन्द गिरि परमहंस-विरचित शाक्त-क्रम का द्वितीय अंश पूर्ण हुआ ।।

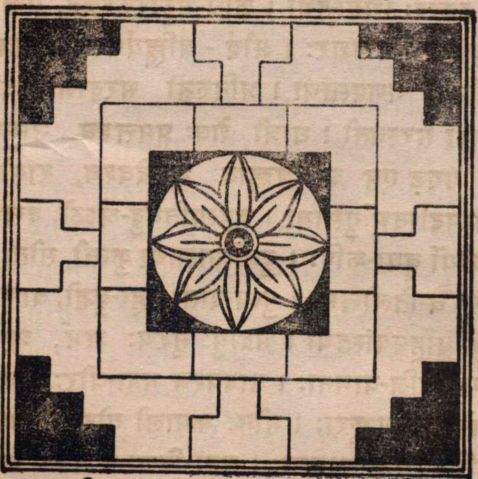

शाक्त-धर्म

अर्थात्

राजाधिराज-योग

'शाक्त-धर्म' की प्रमुख पूजा (चक्र - पूजा) के अन्त में **'एकादश - तत्त्व - शुद्धि'** की अनूठी क्रिया होती है, जो 'राज-योग' के अतिरिक्त और क्या है? वस्तुतः इसी को **'राजाधिराज - योग'** कहते हैं। इस 'राजाधिराज योग' द्वारा एकादश तत्त्वों से अपनी **'कुल - कुण्डलिनी'** के मुख में पराऽमृत का हवन करते ही भाव में परिवर्तन हो जाता है। जो तत्त्व असंस्कृत अवस्था में मनुष्यों की बुद्धि में भ्रमोत्पादक होने का हेतु बन जाता है, वही तत्त्व संस्कृतावस्था में बुद्धि का सहायक बन जाता है। उदाहरण के लिए काल-कूटादि विषों की ओर दृष्टि डालिए। असंस्कृतावस्था में उनको भक्षण करनेवाले मानवों का तत्क्षण ही देहान्त हो जाता है, किन्तु उसी विष का जब आयुर्वेदाचार्य आयुर्वेद द्वारा संस्कार करते हैं, तो वह रसायन बन जाता है और विष जो अब तक प्राण-घातक था, वह अब भयङ्कर रोगों का नाश करके प्राण-दायक बन जाता है। ऐसा ही फल शाक्तों की 'चक्र-पूजा' की **'तत्त्व-शुद्धि'** का भी है।

'प्रथम तत्त्व' जिस वस्तु से हवन होता है, वह हम लोगों के 'स्थूल शरीर' में विद्यमान है। वह 'पार्थिव' तत्त्वात्मक मकार है। उसी के अनुकरण-रूप मकार को, 'परामृत' के साथ 'कुल-कुण्डलिनी' के मुख में हवन करने से, जो प्रभा उत्पन्न हो जाती है, उससे आत्म-तत्त्वात्मक इस 'स्थूल-शरीर' की शुद्धि हो जाती है। अतएव कहा है—**आनन्दं ब्रह्मणो रूपमित्यादि।** 'शुद्धि' के साथ 'परमामृत' को 'कुल-कुण्डलिनी' के मुख में हवन करना ही शाक्त (कुल-योगी) की मुख्य साधना है।

'द्वितीय तत्त्व' में भी जिस पदार्थ से हवन होता है, वह हमारे 'सूक्ष्म - शरीर' में विद्यमान है। वह 'जल'-तत्त्वात्मक मकार है। उसी के अनुकरण-स्वरूप मकार को, 'परामृत' के साथ 'कुल-कुण्डलिनी' के मुख में हवन करने से, जो तेज उत्पन्न होता है, उसी से विद्या-तत्त्वात्मक 'सूक्ष्म - शरीर' की शुद्धि हो जाती है।

'तृतीय तत्त्व' में भी जिस द्रव्य से हवन होता है, वह हमारे 'कारण-शरीर' में उपस्थित है। वह 'वायु'-तत्त्वात्मक मकार है। उसी के अनुकरण-स्वरूप मकार को, 'परामृत' के साथ 'कुल-कुण्डलिनी' के मुख में हवन करने से जो परं-ज्योति उत्पन्न होती है, उससे शिव-तत्त्वात्मक 'कारण-शरीर' विशुद्ध हो जाता है।

इस प्रकार 'पार्थिव'-तत्त्वात्मक, 'जल'-तत्त्वात्मक मकारों को, 'परामृत' के साथ हवन करने से 'प्रकृति - तत्त्व' की शुद्धि सम्पन्न होती है। 'आगम - शास्त्र' में लिखा भी है, **'त्रिभिश्चैव चतुर्थकम्'** एवं पञ्चम में **'आकाश'**-तत्त्वात्मक मकार, जो सकल जीवों की सृष्टि का कारण है, रजो - विन्द्वात्मक मकार है, उसका 'परामृत' के साथ हवन करने से 'पुरुष - तत्त्व' की शुद्धि होती है। इस रजो - विन्द्वात्मक मकार की उद्घाटन - क्रिया को **'कुल - सन्ध्या'** अथवा **'पञ्चम - याग'** भी कहते हैं। 'आगम-शास्त्र' में लिखा भी है—

प्रथमे श्रीगुरोर्ध्यानं, द्वितीये स्वेष्ट - चिन्तनम् । प्राणायामं तृतीये च, चतुर्थे जपमाचरेत् ।।
पञ्चमे तु महेशानि ! कुल - सन्ध्यां समाचरेत् ।

अर्थात् प्रथम में 'श्रीगुरु-महाराज का ध्यान', द्वितीय में अपनी 'इष्ट-देवी का चिन्तन', तृतीय में 'प्राणायाम', चतुर्थ में 'जप' और पञ्चम में 'कुल-सन्ध्या' करनी चाहिए ।

'प्रथम तत्त्व' के हवन के आदि में उपासक का मस्तिष्क ठीक रहना चाहिए, अतएव 'प्रथम तत्त्व' के प्रारम्भ में 'श्रीगुरु-देव का ध्यान' करने के लिए कहा गया है । 'द्वितीय तत्त्व' के होम के प्रारम्भ में, 'इष्ट का चिन्तन' लिखा है । इसका कारण यह है कि स्वेष्ट-देवता-रूपिणी जो अपनी चेतना है, उसी को ठीक विचार-मार्ग में लगाने के लिए स्वेष्ट-देवता का चिन्तन करना नितान्त आवश्यक है । 'तृतीय-तत्त्व' के होम में 'प्राणायाम' करने का तात्पर्य यह है कि, उपासक की 'सुषुम्णा' नाड़ी के बह जाने पर 'कुण्डलिनी-शक्ति' जाग्रत हो उठती है । इस अवस्था में व्यावहारिक कर्म सब निष्फल हो जाते हैं और केवल मुक्ति-साधना-कर्म की सफलता प्राप्त होती है । अतः 'तृतीय तत्त्व' के हवन के आगे 'प्राणायाम' करते हैं । जब 'सुषुम्णा' नाड़ी वह जाती है, तब 'तृतीय-तत्त्व' का हवन किया जाता है । 'चतुर्थ तत्त्व' के प्रारम्भ में 'जप' करना कहा गया है । इसका कारण यह है कि 'सुषुम्णा' नाड़ी की प्रवहन-क्रिया के समय मनन करने से 'मन का वेग' स्थिर हो जाता है । 'पञ्चम तत्त्व - शुद्धि' के आगे 'कुल - सन्ध्या' का विधान है । इसका तात्पर्य अपने को 'काम-कलाऽऽत्मक' बनाना है । 'काम-कला' में 'काम' का अर्थ हमारे पाठक काम-देव न समझें । काम का अर्थ है—'**काम्यते अभिलाषते योगिभिरिति कामः—पर-ब्रह्म**' अर्थात् जिस 'पर - ब्रह्म' को पाने की योगी लोग कामना करते हैं । अतः 'काम - कला' में 'काम' का अर्थ '**पर-ब्रह्म**' है ।

जो लोग 'कुल-सन्ध्या' और 'पञ्चम-याग' की क्रिया करने में असमर्थ हैं, वे लोग हंस में परमहंस की भावना कर उसके अंश छलाक्षर-युक्त ब्रह्माण्ड (गुरु - मुख - गम्य) के साथ 'परमामृत' का हवन कर सकते हैं । 'कुल - सन्ध्या' में जो पदार्थ उपलब्ध होते हैं, उनका संयोग इस अंश में भी अनुकरणीय हो जाता है । 'परमामृत' भी एक मकार है, जो तेजस्तत्त्वात्मक है । प्रत्येक तत्त्व इसके साथ 'कुल-कुण्डलिनी' के मुख में हवन करना चाहिए । जिस प्रकार 'अग्नि' तेजस्तत्त्वात्मक द्रव्य होने से सकल मलों को भस्म कर देता है, उसी प्रकार यह तेजस्तत्त्वात्मक 'परमामृत' भी सकल भावों के विकारों को जला कर भस्म कर देता है ।

'छठी आहुति' से 'ग्यारहवीं आहुति' पर्यन्त अपने शरीरस्थ पञ्च-महा-भूतों में जिन भूतों की प्रबलता चलती है, तद्-भूतात्मक मकार के साथ 'परमामृत' का हवन किया जाता है, क्योंकि—'**विषस्य विषमौषधम्**' अर्थात् विष की दवा विष ही है । जिस तत्त्व का प्राधान्य होता है, उसी तत्त्व का हवन करने से उस तत्त्व की प्रबलता घट जाती है । इस प्रकार हवन करने से 'षष्ठी आहुति' से 'मनस्तत्त्व', 'सप्तमाऽहुति' से 'बुद्धि - तत्त्व', 'अष्टमी आहुति' से अहङ्कार - तत्त्व, 'नवमी आहुति' से 'शक्ति - तत्त्व' 'दशमी' से भैरव-तत्त्व और 'एकादशी आहुति' से 'सर्व-तत्त्वों' की शुद्धि हो जाती है ।

'एकादश-तत्त्व-शुद्धि' के बाद 'शाक्त' (कुल - योगी) 'गुरु' तथा 'इष्ट - देवता' की वन्दना कर निम्न-लिखित भावना अपने मन में करता है-- ***'संसार में जितने भी ऐश्वर्य हैं, वे सब मैंने पूजा में अपनी इष्ट-देवता को समर्पित कर दिए हैं अथवा मैं सर्वदा मन से सकल राजोपचार-पूजा किया करता हूँ । मैं जन्म-मरण के दुःख के परे हूँ तथा नित्य परमानन्द-बोध से मुक्त हूँ । सर्वदा गुरु-चरणों में रत रहनेवाला***

मैं 'भैरव'-स्वरूप शिव हूँ। मैं स्वयं 'मन्त्र'-स्वरूप हूँ। जिसके लिए मन्त्र - जप किया जाता है, वह भी मैं ही हूँ अर्थात् इष्ट-देव भी मैं ही हूँ। मन्त्र-द्रष्टा, मन्त्र-ज्ञाता और मन्त्रानन्दात्मक भी मैं ही हूँ अर्थात् देवता, मन्त्र और मुझमें कोई भेद नहीं है।'

उक्त एकादश 'तत्त्व-शुद्धि' प्रत्येक उपासक को अवश्य करनी चाहिए। इतना अवसर न मिलने पर नौ 'तत्त्व - शुद्धि' करनी योग्य है। यदि इतने का भी समय न प्राप्त हो, तो पञ्च 'तत्त्व - शुद्धि' ही पर्याप्त हो सकती है। यदि इतना भी न बन पड़े, तो चार तत्त्वों की शुद्धि तो अवश्य कर्तव्य है। यदि चतुश्तत्त्व-शोधन किए बिना ही हम भोजन करते हैं, तब पशुओं में और हममें कोई भेद नहीं हो सकता। कहा भी है—

तत्त्व-हीनं कृतं कर्म, जप-कर्म च निष्फलम्। शाम्भवी कुप्यते तेभ्यो, ब्रह्म-हत्या दिने दिने ॥

अर्थात् तत्त्व-हीन कर्म करने पर शाम्भवी का कोप और ब्रह्म - हत्या के पाप की प्राप्ति—दोनों निश्चित हैं। इतना ही नहीं—

चक्रं त्यक्त्वा तु देवेशीं, पूजयेत् तर्पणं विना। चत्वारि तस्य नश्यन्ति, आयुर्विद्या यशो बलम् ॥

अर्थात् जो मनुष्य चक्र त्याग कर जगदम्बा की पूजा बिना तर्पण के करता है, उसकी आयु, विद्या, यश और बल नष्ट हो जाते हैं।

अपने शरीर में किस-किस तत्त्व का प्राधान्य चल रहा है, 'शिव-स्वरोदय' के निम्न वचनों के अनुसार जान लेना चाहिए। यदि क्रूर' कार्य-सिद्धि के लिए 'चक्रार्चन' किया जाता है, तो तत्त्व-शुद्धि के अन्त में पिङ्गला नाड़ी चलाकर तेजस्तत्त्व की प्रधानता रख वीर-भोजन किया जाता है। 'सौम्य' कार्य के लिए इड़ा नाड़ी चलाकर, भोग के लिए जल - तत्त्व का प्राधान्य कर वीर - भोजन किया जाता है। 'निष्काम' क्रिया अथवा मोक्ष-साधन के लिए सुषुम्णा नाड़ी चलाकर आकाश - तत्त्व की प्रधानता रख वीर-भोजन किया जाता है। 'शिव-स्वरोदय' के वचन निम्नलिखित हैं—

'पार्थिव-तत्त्व' मधुर, 'जल-तत्त्व' स्वाद-युक्त और कषाय, 'तेजस्तत्त्व' तीक्ष्ण, 'वायु-तत्त्व' अम्ल और 'आकाश-तत्त्व' कटु (कड़वा) है। 'पृथ्वी-तत्त्व' पीला चौकोर, मधुर, भोग-प्रद प्रवाह में द्वादशांगुल है। 'जल-तत्त्व शुभ्र-वर्ण, स्वाद-युक्त आर्द्र, लाभ-कारी तथा प्रवाह में षोडशांगुल है। 'तेजस-तत्त्व' रक्त-वर्ण, त्रिकोण, तीक्ष्ण, दीप्त और प्रवाह में चतुरंगुल है। 'वायु - तत्त्व' नील - वर्ण, वर्तुलाकार (गोल), स्वाद-युक्त, अम्ल, तिर्यग्-गामो चपल और प्रवाह में अष्टांगुल है। 'आकाश - तत्त्व' सर्व - व्यापी, मोक्ष का देनेवाला, सर्व-कार्यों में निष्फल तथा उसके वर्ण, आकार, स्वाद और प्रवाह अव्यक्त (अप्रकट) हैं।

'वीर-भोजन' की अवस्था में कौलों का निम्नलिखित भाव रहता है—

सहस्रारे गुरुं ध्यायन्, हृदि देवीं तथैव च। जिह्वाग्रे च जपान्न्यासं, शिवोऽहमिति चिन्तयेत् ॥

अर्थात् सहस्र-दल-कमल में गुरु का तथा हृदय-कमल में जगदम्बिका का ध्यान कर जिह्वा से मन्त्र-जप करता हुआ 'शिवोऽहं' का विचार चलता रहता है। इस प्रकार वीर-भोजनावसर में भी कौलिक लोग उपासना में ही रहते हैं।

राजाधिराज-योग के सम्पादन के लिए निशा-काल अत्यन्त उपयोगी है क्योंकि निशा - काल में चित्त की एकाग्रता सरलता से हो जाती है, किन्तु ऊर्ध्वाम्नायी के लिए यह नियम नहीं है कि वह निशीथ में ही चक्रार्चन करे। इसका कारण यह है कि ऊर्ध्वाम्नायी साधकों के मानसिक भाव उच्च स्तर के होते

हैं। अतः वे सर्व-काल में अपनी सुविधा के अनुसार 'चक्रार्चन' और 'राजाधिराज-योग' का अभ्यास कर सकते हैं। उनके लिए 'दिन' और 'निशा'— दोनों समय प्रशस्त हैं।

जब एक विद्या की उपासना करते-करते मन का भाव विकसित हो जाय और जिज्ञासा कुछ आगे बढ़ने को प्रेरित करे, तब द्वितीय विद्या की उपासना करनी चाहिए अर्थात् दूसरे 'आम्नाय' में आरूढ़ होना चाहिए। जब तक प्रथम विद्या में ही मन सन्तुष्ट रहे, तब तक द्वितीय विद्या में कदापि प्रवेश न करे। विद्योपासना के प्रभाव से चित्त-वृत्ति का सुधार हो जाय और 'क्रम' भी पूर्ण हो जाय, तभी यथार्थ में कोई **'शाक्त-साधक'** बन सकता है।

'अहं ब्रह्मास्मि' और **'शिवोऽहं'** जैसे महा-वाक्य केवल मुख से कहते रहने से कोई **'ब्रह्म'** और 'शिव' नहीं बन सकता। उपासना की रीति से, पाशव कल्प से, हठ-योग और वीर तथा दिव्य कल्प से एवं राजाधिराज-योग के अभ्यास से मन के भाव ठीक कर **'शिव'** बनने का प्रयत्न करना चाहिए। 'हठ-योग' और 'राज-योग' तो सत्सङ्ग से सीखे जा सकते हैं, परन्तु अत्यन्त गुप्त **'राजाधिराज-योग'** को, जिसे **'शाम्भवी विद्या'** भी कहते हैं, बिना 'शाक्त'-धर्म के **'कुल-मार्ग'** में प्रवृत्त हुए कोई नहीं जान सकता। अतएव 'आगम' कहते हैं—

वेद-शास्त्र-पुराणानि, सामान्य गणिका इव। इयं तु शाम्भवी विद्या, गुप्ता कुल-वधूरिव॥

अर्थात् वेद-शास्त्र और पुराणादि अन्य दर्शनादि शास्त्र सामान्य गणिकाओं के समान हैं। जो चाहे, वह इनको अपने हाथ में कर सकता है, किन्तु यह **'शाम्भवी विद्या'** कुल-वधू के समान अत्यन्त गुप्त है। इसका हाथ आना तो दूर रहा, दर्शन होना भी अत्यन्त कठिन है।

ब्राह्मण लोग सबके गुरु बनने के अधिकारी हैं अतः ब्राह्मणों को इस मार्ग में प्रवृत्त होना अत्यन्त आवश्यक है। 'कुल-मार्ग' से विमुख ब्राह्मणों को 'कुलमार्गोन्मुख' बनाना और जो ब्राह्मण 'कुल-निष्ठ' हों, उन्हें 'राजाधिराज - योग' की ओर प्रवृत्त करना 'कौल' महा - पुरुषों का परम कर्तव्य है। अदीक्षित को दीक्षित करना अथवा कराना तथा दीक्षितों को 'क्रम' के लिए प्रोत्साहित करना और विधि बताना प्रत्येक उपासक को अपना कर्तव्य समझना चाहिए।

जहाँ भोग है, वहाँ मोक्ष नहीं और जहाँ मोक्ष है, वहाँ भोग नहीं, यह प्रत्यक्ष देखने में आता है क्योंकि जो ऐश्वर्य भोगनेवाला है, वह मोक्ष का नाम भी नहीं लेता और जो मोक्षार्थी है, वह भोगों से कोसों दूर भागता है। संसार में केवल एक **'शाक्त-धर्म'** ही ऐसा है, जिसमें श्री 'त्रिपुर'-सुन्दरी की कृपा से भोग और मोक्ष—दोनों ही उपासकों के कर-कमलों में सर्वदा विद्यमान रहते हैं।

मन्त्र-कोष

भारत के विकसित सनातन धर्म को जगद्-गुरु आदि शङ्कराचार्य ने **'पञ्चायतन'** या पञ्च-देव-शक्तियों के रूप में सु-सङ्गठित किया था। ये पाँच शक्तियाँ हैं--**१. भगवान् गणेश, २. भगवान् सूर्य, ३. भगवान् विष्णु, ४. भगवान् शिव और ५. भगवती शक्ति।**

'मन्त्र-कोष' नामक ग्रन्थ के प्रथम **'पञ्चायतन खण्ड'** में इन पाँच शक्तियों के समस्त उपलब्ध मन्त्रों को केवल संगृहीत ही नहीं किया गया है, इनमें से प्रत्येक देव-शक्ति का प्रामाणिक शास्त्रीय परिचय भी दिया गया है, जो अच्छे-से-अच्छे विद्वानों को भी कदाचित् ही ज्ञात होगा।

भगवान् गणेश का परिचय लगभग डेढ़ पृष्ठों में दिया गया है, किन्तु उससे पाठक को गणेश के सम्बन्ध में सभी ज्ञातव्य वातें मालूम हो जाती हैं। उनके मन्त्रों का संग्रह अक्षर-संख्या के अनुसार किया गया है अर्थात् एकाक्षर, द्वयक्षर, त्र्यक्षर, चतुरक्षर से लेकर ५५ अक्षरोंवाले तक मन्त्र इस ग्रन्थ में सप्रमाण संगृहीत हैं। प्रत्येक मन्त्र का **'उद्धार'** दिया गया है, जिससे उसकी प्रामाणिकता में कोई सन्देह नहीं रह जाता। **'मन्त्रोद्धार'** सांकेतिक भाषा में होता है, जिसे समझने के लिए **'बीज-कोष'** की आवश्यकता पड़ती है। उदाहरण के लिए एकाक्षर गणेश (गणपति) का **'मन्त्रोद्धार'** है : **"पञ्चान्तकं शशि-युक्तं वीजं गणपतेर्विदुः।"**

इस सांकेतिक उद्धार-वाक्य में **'पञ्चान्तक'** का अर्थ है--**'ग'** अक्षर, 'शशि' का अर्थ है--**'चन्द्र-विन्दु' (ँ)।** इस प्रकार गण-पति का **'वीज'** हुआ--**'गं'**। यह गणेश का एक अक्षर का मन्त्र है। स्पष्ट है कि **'पञ्चान्तक', 'शशि'** जैसे सांकेतिक शब्दों का अर्थ जानने के लिए किसी कोष की सहायता आवश्यक है। इस हेतु **'मन्त्र-कोष'** में **'वर्ण-वीज-कोष'** भी प्रस्तुत किया गया है।

यही नहीं, **'बीज'** शब्द से क्या तात्पर्य है, इसे समझाने के लिए **'मन्त्र-कोष'** के प्रारम्भ में ही 'विषय-प्रवेश' के अन्तर्गत **'बीज-मन्त्र और उनकी सार्थकता'** शोर्षक चार पृष्ठों का लेख भी दिया गया है, जिससे **'बीज'** क्या है और वीज-मन्त्रों का क्या अर्थ है, भले प्रकार समझ में आ जाता है।

प्रत्येक **'मन्त्र'** के कुछ विशेष अङ्ग होते हैं। यथा--**१ ऋषि, २ छन्द, ३ देवता, ४ वीज, ५ शक्ति, ६ कीलक।** साथ ही उनका प्रयोग किस उद्देश्य से किया जाता है, इसका भी उल्लेख रहता है। देवता का स्वरूप वताने के लिए **'ध्यान'**-श्लोक भी होता है। इन सभी अङ्गों का स्पष्ट उल्लेख **'मन्त्र-कोष'** में संगृहीत सभी मन्त्रों के सम्बन्ध में किया गया है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक मन्त्र का विस्तृत विधान किस ग्रन्थ में और उसके किस पृष्ठ पर मिलेगा, इसका भी उल्लेख कर दिया गया है।

भगवान् गणेश के ही समान सूर्य, विष्णु, शिव और शक्ति के प्रामाणिक परिचय देने के बाद इन सबके मन्त्रों को मन्त्राक्षर-संख्या के क्रमानुसार ही संगृहीत किया गया है। यही नहीं, इन सभी देव-शक्तियों के अवतारों एवं उनके अस्त्र-शस्त्रों के भी मन्त्र इस विलक्षण **'मन्त्र-कोष'** में संगृहोत मिलते हैं।

भगवान् विष्णु के **केशव, हरि, गोविन्द, नारायण, हृषीकेश, जनार्दन, दामोदर, माधव, वासुदेव, मधुसूदन, लक्ष्मी-वासुदेव, श्रीधर, हरिहर, त्रि-विक्रम** और **सङ्कर्षण**-स्वरूपों के मन्त्र देने के वाद विष्णु के समस्त अवतारों (**१ मत्स्य, २ कूर्म, ३ वराह, ४ नृसिंह, ५ वामन, ६ परशुराम, ७ राम, ८ कृष्ण, ९ बुद्ध और १० कल्कि**) के सभी उपलब्ध मन्त्र एकत्र देखकर चकित रह जाना पड़ता है। यही नहीं, **'अन्य-मन्त्र'** शोर्षक के अन्तर्गत विष्णु भगवान् के अन्य स्वरूपों (**हयग्रीव, परमात्मा, अनन्त, वेद-व्यास, श्रीकर**) एवं उनके दिव्य वाहन 'गरुड़' के भी मन्त्र देने में कोई चूक नहीं की गई है।

(शेष आगे आवरण-पृष्ठ ४ पर)

(आवरण-पृष्ठ ३ का शेष)

'आयुधादि-मन्त्र' के अन्तर्गत भगवान् विष्णु के अस्त्र-शस्त्रों आदि (**शङ्ख, शार्ङ्ग, सुदर्शन, खड्ग, गदा, अंकुश, मुसल, पाश, किरीट, छत्र, चामर, ध्वज, पताका, परशु**) के भी मन्त्र दिए गए हैं।

मूल देवता के घनिष्ठ **'अङ्ग-देवताओं'** को भी इस **'मन्त्र-कोष'** में स्थान दिया गया है। उदाहरण के लिए भगवान् विष्णु से सम्बन्धित **धरती** और उनके अवतार **भगवान् श्री राम** से सम्बन्धित **सीता, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, हनुमान** के और **भगवान् श्रीकृष्ण** से सम्बन्धित **राधा** और **काम-देव** के मन्त्रों का संग्रह जिज्ञासुओं एवं शोधार्थियों के लिए कितना उपयोगी है, यह स्वतः स्पष्ट है।

इसी प्रकार भगवान् शिव का शास्त्रीय परिचय देने के साथ ही **द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों के** नाम और **वे** भारत में कहाँ स्थित हैं, इसका विवरण देने के पश्चात् उनके एकाक्षर से लेकर ६२ अक्षरोंवाले तक सभी उपलब्ध मन्त्र इस **'कोष'** में **'उद्धार'** एवं ऋषि, छन्द, बीज, शक्ति आदि **'विनियोग'** सहित संगृहीत हैं। भगवान् शिव के **सदा-शिव, अर्द्ध-नारीश्वर, दक्षिणा-मूर्ति, मृत्युञ्जय, नील-कण्ठ, चण्डेश्वर, ईशान, वाम-नायक, चण्डोग्र-शूलपाणि, उमा-पति, रुद्र** जैसे विविध स्वरूपों का तो ज्ञान होता ही है, उनके **'पञ्च-वक्त्र-विधान'** से पाठक को यह भी पता चल जाता है कि भगवान् शिव के पूर्व-मुख का नाम **'तत्पुरुष'**, उत्तर-मुख का नाम **'वाम-देव'**, दक्षिण-मुख का नाम **'अघोर'**, पश्चिम का नाम **'सद्योजात'** और ऊर्ध्व-मुख का नाम **'ईशान'** है। साथ ही, इनके मन्त्रों और पूजा-विधान की भी जानकारी मिलती है। अङ्ग-देवताओं के अन्तर्गत **गौरी, गङ्गा, मणि-कर्णिका, नर्मदा, शीतला, बन्दी देवी, स्वयम्वरा, कामदेव** और **रति** तथा **रुद्रात्मक हनुमान** के मन्त्रों का विवरण पाठकों को मुग्ध कर लेता है। भगवान् शिव के प्रख्यात आयुध **'त्रिशूल'** का भी मन्त्र इस 'कोष' से ज्ञात होता है।

यही नहीं, भगवान् शिव से सम्बन्धित विशिष्ट मन्त्र भी इस कोष में संगृहीत हैं।

भगवान् सूर्य के विविध स्वरूपों के सम्बन्ध में कुछ ही विद्वानों को पता होगा। इस **'मन्त्र-कोष'** के द्वारा उनके **मार्तण्ड-भैरव, अर्क, भानु, आदित्य** जैसे रूपों के मन्त्रादि का ज्ञान होने के साथ ही **चन्द्र, मङ्गल** आदि आठ ग्रहों एवं **अग्नि** के भी मन्त्रादि का ज्ञान पाठकों को हो जाता है।

'पञ्चायतन देवताओं' में **'शक्ति'** से आशय **दुर्गा देवी** से है, किन्तु उनके विविध स्वरूपों एवं उनके मन्त्रों का ज्ञान सीमित लोगों को ही होगा। इन सब स्वरूपों के मन्त्र 'मन्त्र-कोष' में संगृहीत हैं।

'मन्त्र-कोष' के दूसरे खण्ड में तन्त्रोक्त दश महा-विद्याओं (**काली, तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्नमस्ता, धूमावती, बगला, मातङ्गी और कमला**) में से प्रत्येक महा-विद्या का प्रामाणिक परिचय देते हुए उनके समस्त उपलब्ध मन्त्रों को संगृहीत किया गया है।

'मन्त्र-कोष' के तीसरे भाग में उन देवताओं के मन्त्र भी संगृहीत कर दिए गए हैं, जो 'पञ्चायतन' और 'दश महा-विद्या' के अन्तर्गत नहीं आते।

निस्सन्देह, अध्यात्म-विद्या के जिज्ञासुओं के लिए यह अत्यन्त उपयोगी और सार-गर्भित शोधात्मक कोष है।

डबल क्राउन आठ पेजी आकार के ३१२ पृष्ठों के इस ग्रन्थ का मूल्य ६५ रुपए मात्र है।

प्राप्ति-स्थान--**कल्याण मन्दिर प्रकाशन, अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग (उ० प्र०)–२११००६**

सम्पादक, प्रकाशक एवं मुद्रक : श्री ऋतशील शर्मा, परा वाणी प्रेस, प्रयाग–२११००६